नमः सर्वज्ञाय

रायचन्द्रजैनशास्त्रमाला

श्रीमद् राजचन्द्रविरचित

पुष्पमाला, मोक्षमाला, भावनाबोध

और फुटकर कवितायें।

अनुवादकर्त्ता और सम्पादक

पं० जगदीशचन्द्र शास्त्री, एम. ए.

प्रथम बार

श्रुतपंचमी, वि. सं. १९९३
ई० सन् १९३७

परमश्रुतप्रभावकमंडलके
ऑ० व्य० सेठ मणिलाल रेवाशंकर जगजीवन जौंहरीने
बम्बईके न्यू भारत मुद्रणालयमे प्रकाशित किया

मूल्य बारह आना

तू किसी भी धर्मको मानता हो, उसका मुझे पक्षपात नहीं। मात्र कहनेका तात्पर्य यह है कि जिस राहसे संसार-मलका नाश हो, उस भक्ति, उस धर्म, और उस सदाचारका तू सेवन करना। (पुष्पमाला १५).

सर्वज्ञभगवान्का कहा हुआ गुप्त तत्त्व प्रमादस्थितिमें आ पड़ा है; उसे प्रकाशित करनेके लिये, तथा पूर्वाचार्योंके गूँथे हुए महान् शास्त्रोंको एकत्र करनेके लिये, पड़े हुए गच्छोंके मतमतांतरको हटानेके लिये, तथा धर्मविद्याको प्रफुल्लित करनेके लिये सदाचरणी श्रीमान् और धीमान् दोनोंको मिलकर एक महान् समाजकी स्थापना करनेकी आवश्यकता है। पवित्र स्याद्वादके तत्त्वोंको प्रसिद्धिमें लानेका जबतक प्रयत्न नहीं होता, तबतक शासनकी उन्नति भी न होगी। (मोक्षमाला पाठ ९९).

व्यास, वाल्मीकि, शंकर, गौतम, पतंजलि, कपिल और युवराजशुद्धोदनने अपने प्रवचनोंमें मार्मिक रीतिसे और सामान्य रीतिसे जो उपदेश किया है, उसका रहस्य नीचेके शब्दोंमें कुछ कुछ आ जाता है—

" अहो प्राणियो! संसाररूपी समुद्र अनंत और अपार है। इसका पार पानेके लिये पुरुषार्थका उपयोग करो! उपयोग करो!" (भावनाबोध पृ. ९८).

प्रकाशक — सेठ मणिलाल, रेवाशंकर जगजीवन जौहरी,
व्य० परमश्रुत प्रभावक मंडल, खाराकुवा, जौहरी बाजार, बम्बई नं. २.
मुद्रक — रघुनाथ दिपाजी देसाई, न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस, ६, केलेवाडी,
गिरगांव, बम्बई नं. ४.

उपोद्घात

इस पुस्तकमे श्रीमद् राजचन्द्रविरचित पुष्पमाला, 'नहि काळ मूके कोइने' और 'धर्मविषे' ये दो कवितायें, तथा मोक्षमाला और भावनाबोधका संग्रह है।

श्रीमद् राजचन्द्रका जन्म संवत् १९२४ (सन् १८६७) में काठियावाड़ प्रान्तके अन्तर्गत मोरबी राज्यमे ववाणीआ नामके ग्राममें हुआ था। इनके पिताका नाम रवजीभाई पंचाण था। राजचन्द्रजीके कुटुम्बका मूलधर्म जैन स्थानकवासी था। इनकी माताका नाम देवबाई था। राजचन्द्रजीके एक भाई, चार बहन, दो पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। ये सब राजचन्द्रजीकी जीवित अवस्थामें मौजूद थे। इस समय केवल उनकी एक बहन और एक पुत्री मौजूद हैं।

राजचन्द्रजीने सं. १९४३ में उन्नीस वर्षकी अवस्थामें गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया। उनकी पत्नीका नाम झबकबाई था। ये मोरबीके रईस रेवाशंकर जगजीवनदासके भाई पोपटलाल जगजीवनदासकी पुत्री थीं।

राजचन्द्रजीने सं. १९४६ में बम्बईमें श्रीयुत रेवाशंकर जगजीवनदासके साझेमें व्यापार करना आरंभ किया। आरंभमें कपड़ा, किराना, अनाज, वगैरह भेजनेकी आड़तका काम रक्खा। बादमे सूरतके झवेरी नगीनचंद झवेरचन्द और दूसरे लोगोंके साथ मोतियोका बहुत बड़ा व्यापार शुरु किया। इन्होंने श्रीयुत प्राणजीवनदास जगजीवनदास और बड़ोदाके श्रीयुत माणेकलाल घेलाभाईके साथ रंगूनमें भी जवाहरातकी पीढ़ी खोली थी।

संवत् १९५५-६ में राजचन्द्रजीने चावलोंका काम शुरु किया। इस बड़े भारी व्यापारमे उन्हें अत्यंत परिश्रम पड़ा, और इससे उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। वे स्वास्थ्यलाभके लिये धरमपुर, अहमदाबाद, वढवाण कैम्प, और राजकोटमें जाकर रहे। अंत समय राजचन्द्रजीको संग्रहणीका रोग हो गया, और इसी बीमारीमें उन्होंने सं. १९५७ (सन् १९०१) में चैत्र वदी ५ को ३३ वर्षकी उम्रमें राजकोटमें देहोत्सर्ग किया। उस समय उनके सब कुटुंबीजन और गुजरात काठियावाड़के बहुतसे मुमुक्षु मौजूद थे।

पुष्पमाला तथा '**नहिं काळ मूके**' आदि दो कविताओंकी रचना राजचन्द्रजीने सोलह वर्षसे भी कम अवस्थामें की है। पुष्पमालामें जापमालाकी तरह १०८ दाने (वचन) गूँथे गये हैं। ये वचन श्रीमंत, बालक, युवा, वृद्ध, धर्माचार्य आदि प्रत्येक वर्गके लोगोंको लक्ष्यमे रखकर लिखे गये हैं। राजचन्द्रजीकी यह इतनी छोटी उम्रमें अति गंभीर और मार्मिक रचना अति आश्चर्यकारक है।

श्रीमद् राजचन्द्रकी दूसरी रचना **मोक्षमाला** है। मोक्षमालाके बालावबोध नामक प्रथम भागकी रचना राजचन्द्रजीने केवल सोलह वरस पाँच महीनेकी अवस्थामे, अपनी जन्मभूमि ववाणीआमें रहकर, कुल तीन दिनमें की थी। राजचन्द्रजीका विचार मोक्षमालाको 'बालावबोध', 'विवेचन' और 'प्रज्ञावबोध'

इन तीन भागोंमें लिखनेका था; परन्तु अन्तके दो भागोंको वे नहीं लिख सके। प्रज्ञावबोध भागकी, अपनी अस्वस्थ अवस्थाके समय केवल संकलनामात्र ही लिखवा सके, जो हिन्दीके बड़े 'श्रीमद् राजचन्द्र' में पृष्ठ ७९८–९ पर दी गई है।

श्रीमद् राजचन्द्र स्वय मोक्षमालाके विषयमें लिखते हैं—"यह पुस्तक भाषाज्ञानकी पुस्तकोंकी तरह पठन करनेकी नहीं, किन्तु मनन करनेकी है। उसमें जैनमार्गको यथार्थ समझानेका प्रयत्न किया है। इसमें जिनोक्तमार्गसे कुछ भी न्यूनाधिक नहीं कहा। जिससे वीतराग मार्गपर आबालवृद्धकी रुचि हो, उसका स्वरूप समझमें आवे, उसके बीजका हृदयमें रोपण हो, इस हेतुसे उसकी बालावबोध-रूप योजना की है। इसमें जिनेश्वरके सुंदर मार्गसे बाहरका एक भी अधिक वचन रखनेका प्रयत्न नहीं किया। जैसा अनुभवमें आया और कालभेद देखा, वैसे ही मध्यस्थतासे यह पुस्तक लिखी है।"

मोक्षमालाकी प्रथम आवृत्ति, मोक्षमालाके लिखे जानेके दो वर्ष पश्चात् सं. १९४४ में प्रकाशित हुई थी। सं. १९५८ में इसकी द्वितीय आवृत्ति निकली। इस आवृत्तिमें स्वयं राजचन्द्रजीने शब्द और वाक्यरचनामें कुछ हेरफेर कराया था। मोक्षमालाकी यह प्रथम आवृत्ति द्वितीय आवृत्तिमें किये हुए संशोधनोंके साथ अभी हालमें श्रीयुत् हेमचन्द टोकरशी मेहताने 'श्रीमद् राजचन्द्र' के गुजराती संस्करणमें पुनः प्रकाशित की है। इसके पश्चात् सं. १९६२ में परमश्रुतप्रभावक मंडलकी ओरसे श्रीयुत मनसुखलाल कीरतचंदद्वारा संशोधित मोक्षमालाकी तृतीय आवृत्ति निकली। इस संस्करणमें संशोधकने बहुत सी जगह मात्र भाषाशैलीमें कुछ संशोधन-परिवर्त्तन किया था। यहाँ मोक्षमालाकी इसी तृतीय आवृत्तिका हिन्दी अनुवाद दिया गया है। मोक्षमालाका यह सर्वप्रथम हिन्दी अनुवाद है। श्रीमद् राजचन्द्रने मोक्षमालाकी प्रथम आवृत्तिकी प्रस्तावनामें जो शब्द लिखे थे वे यहाँ दिये जाते हैं:—

"[शिक्षणपद्धति और मुखमुद्रा

यह एक स्याद्वाद तत्त्वावबोध वृक्षका बीज है। इस ग्रन्थमें तत्त्वप्राप्तिकी जिज्ञासा उत्पन्न करनेकी कुछ अंशमें भी शक्ति मौजूद है, यह मैं समभावसे कहता हूँ।

पाठक और वाचक वर्गको मुख्य अनुरोध यह है कि शिक्षापाठोंका पाठ करनेकी अपेक्षा जैसे बने वैसे, उनका मनन करना चाहिये, उनके तात्पर्यका अनुभव करना चाहिये, जिनकी समझमें न आता हो, उन्हें ज्ञाता शिक्षक अथवा मुनियोंसे समझना चाहिये; और यह साधन न हो तो उन पाठोंको पाँच सात बार बाँच जाना चाहिये। एक पाठको बाँच जानेके पश्चात् आधी घड़ी उसपर विचार कर अंतःकरणसे पूँछना चाहिये कि इसका क्या तात्पर्य मिला? उस तात्पर्यमेंसे हेय, ज्ञेय और उपादेय क्या है? ऐसा करनेसे समस्त ग्रंथ समझमें आ सकेगा। हृदय कोमल होगा विचारशक्ति विकसित होगी, और जैन तत्त्वपर उत्तम श्रद्धा होगी। यह ग्रंथ कुछ पढ़नेके लिये नहीं परन्तु मनन करनेके लिये है। इसमें अर्थरूप शिक्षाकी योजना की है। वह योजना 'बालावबोध' रूप है। इसके 'विवेचन' और 'प्रज्ञावबोध' भाग भिन्न हैं। यह इनमेंका एक भाग है; फिर भी यह सामान्य तत्त्वरूप है।

जिन्हें अपनी भाषाका अच्छा ज्ञान है, और जो नवतत्त्व तथा सामान्य प्रकरण-ग्रंथोंको समझते हैं, उन्हें यह ग्रंथ विशेष बोधदायक होगा। इतना तो अवश्य अनुरोध है कि छोटे बालकोंको इन शिक्षापाठोंका तात्पर्य विधिसहित समझाना चाहिये।

पाठशालाके विद्यार्थियोंको शिक्षापाठ कंठस्थ कराने और बारंबार समझाने चाहिये। जिन जिन ग्रंथोकी इसके लिये सहायता लेनी योग्य हो वह लेनी चाहिये। एक दो बार पुस्तकको पूर्ण पढ़ लेनेके पश्चात् फिर उल्टी चलाना चाहिये।

इस पुस्तककी ओर, मैं समझता हूँ कि सुज्ञ लोग कटाक्ष दृष्टिसे न देखेंगे। बहुत गहरे उतरनेसे यह मोक्षमाला मोक्षकी कारणभूत होगी। इसमे मध्यस्थतासे तत्त्वज्ञान और शीलके बोध करनेका उद्देश है।

इस पुस्तकको प्रसिद्ध करनेका मुख्य हेतु, उदित होते हुए जो बालयुवक अविवेकयुक्त विद्या प्राप्त कर आत्मसिद्धिसे भ्रष्ट होते है, उस भ्रष्टताको रोकनेका भी है।

मनमाना उत्तेजन न होनेसे, लोगोंकी कैसी मान्यता होगी,' इसके विचार किये बिना ही यह साहस किया है, मैं समझता हूँ कि वह फलदायक होगा। इसे पाठशालाओंमें पाठकोंको भेटरूप देनेके लिये, आनन्दित होनेके लिये और जैनशालाओंमें अवश्य उपयोग करनेके लिये मेरा अनुरोध है; तो ही पारमार्थिक हेतु पूर्ण होगा।]"

राजचन्द्रजीकी तीसरी रचना **भावनाबोध** है। इसमें अनित्य, अशरण आदि भावनाओंका दस चित्रोंमें वर्णन किया गया है। यह रचना भी श्रीमद्ने १७ वर्षकी अवस्थामें की थी। मोक्षमालाके छपनेमें विलंब होनेके कारण ग्राहकोंकी आकुलता दूर करनेके लिये, भावनाबोधकी रचना कर यह ग्रंथ ग्राहकोंको उपहारस्वरूप दिया गया था। भावनाबोधकी प्रथम आवृत्तिको हेमचन्द टोकरशी महेताने 'श्रीमद् राजचन्द्र'के उक्त संस्करणमें पुनः प्रकाशित किया है। भावनाबोधकी द्वितीय आवृत्ति श्रीयुत मनसुखलाल कीरतचन्द द्वारा संशोधित होकर परमश्रुतप्रभावक मंडलकी ओरसे 'श्रीमद् राजचन्द्र' पुस्तकके चौथे संस्करणमे प्रकाशित हुई थी। यहाँ यह उसीका सर्वप्रथम हिन्दी अनुवाद है।

जुबिलीबाग, तारदेव,
बम्बई
९–६–३७

जगदीशचन्द्र जैन

श्रीमद् राजचंद्र.

वर्ष १९ वाँ.

वि. सं. १९४३.

श्रीमद् राजचन्द्र

१६वें वर्षसे पहले

१

पुष्पमाला

ॐ सत्

१ रात्रि व्यतीत हुई, प्रभात हुआ, निद्रासे मुक्त हुए। भाव-निद्रा हटानेका प्रयत्न करना।

२ व्यतीत रात्रि और गई ज़िन्दगीपर दृष्टि डाल जाओ।

३ सफल हुए वक्तके लिये आनंद मानो, और आजका दिन भी सफल करो। निष्फल हुए दिनके लिये पश्चात्ताप करके निष्फलताको विस्मृत करो।

४ क्षण क्षण जाते हुए अनंतकाल व्यतीत हुआ तो भी सिद्धि नहीं हुई।

५ सफलताजनक एक भी काम तेरेसे यदि न बना हो तो फिर फिर शरमा।

६ अघटित कृत्य हुए हो तो शरमा कर मन, वचन और कायाके योगसे उन्हे न करनेकी प्रतिज्ञा ले।

७ यदि तू स्वतंत्र हो तो संसार-समागममे अपने आजके दिनके नीचे प्रमाणसे भाग बना।

१ पहर—भक्ति-कर्तव्य
१ पहर—धर्म-कर्तव्य
१ पहर—आहार-प्रयोजन
१ पहर—विद्या-प्रयोजन
२ पहर—निद्रा
२ पहर—संसार-प्रयोजन
८

८ यदि तू त्यागी हो तो त्वचाके विना वनिताका स्वरूप विचारकर ससारकी ओर दृष्टि करना।

९ यदि तुझे धर्मका अस्तित्व अनुकूल न आता हो तो जो नीचे कहता हूँ उसे विचार जाना।

तू जिस स्थितिको भोगता है वह किस प्रमाणसे?
आगामी कालकी वात तू क्यो नही जान सकता?
तू जिसकी इच्छा करता है वह क्यों नहीं मिलता?
चित्र-विचित्रताका क्या प्रयोजन है?

१० यदि तुझे अस्तित्व प्रमाणभूत लगता हो और उसके मूलतत्त्वकी आशका हो तो नीचे कहता हूँ।

११ सर्व प्राणियोंमे समदृष्टि,—

१२ अथवा किसी प्राणीको जीवितव्य रहित नहीं करना, शक्तिसे अधिक उनसे काम नहीं लेना।

१३ अथवा सत्पुरुष जिस रस्तेसे चले वह।

१४ मूलतत्त्वमें कहीं भी भेद नहीं, मात्र दृष्टिमें भेद है, यह मानकर आशय समझ पवित्र धर्ममे प्रवर्त्तन करना।

१५ तू किसी भी धर्मको मानता हो, उसका मुझे पक्षपात नहीं, मात्र कहनेका तात्पर्य यह है कि जिस राहसे संसार-मलका नाश हो उस भक्ति, उस धर्म और उस सदाचारको तू सेवन करना।

१६ कितना भी परतत्र हो तो भी मनसे पवित्रताको विस्मरण किये विना आजका दिन रमणीय करना।

१७ आज यदि तू दुष्कृतमें प्रेरित होता हो तो मरणको याद कर।

१८ अपने दुःख-सुखके प्रसंगोंकी सूची, आज किसीको दुःख देनेके लिये तत्पर हो तो स्मरण कर।

१९ राजा अथवा रंक कोई भी हो, परन्तु इस विचारका विचार कर सदाचारकी ओर आना कि इस कायाका पुद्गल थोड़े वक्तके लिये मात्र साढ़े तीन हाथ भूमि माँगनेवाला है।

२० तू राजा है तो फिकर नहीं, परन्तु प्रमाद न कर। कारण कि नीचसे नीच, अधमसे अधम, व्यभिचारका, गर्भपातका, निर्वंशका, चाडालका, कसाईका और वेश्या आदिका कण तू खाता है। तो फिर?

२१ प्रजाके दुख, अन्याय और कर इनकी जॉच करके आज कम कर। तू भी हे राजन्! कालके घर आया हुआ पाहुना है।

२२ वकील हो तो इससे आधे विचारको मनन कर जाना।

२३ श्रीमत हो तो पैसेके उपयोगको विचारना। उपार्जन करनेका कारण आज ढूँढ़कर कहना।

२४ धान्य आदिमें व्यापारसे होनेवाली असख्य हिंसाको स्मरणकर न्यायसपन्न व्यापारमें आज अपना चित्त खींच।

२५ यदि तू कसाई हो तो अपने जीवके सुखका विचार कर आजके दिनमें प्रवेश कर।

२६ यदि तू समझदार बालक हो तो विद्याकी ओर और आज्ञाकी ओर दृष्टि कर।

२७ यदि तू युवा हो तो उद्यम और ब्रह्मचर्यकी ओर दृष्टि कर।

२८ यदि तू वृद्ध हो तो मौतकी तरफ़ दृष्टि करके आजके दिनमें प्रवेश कर।

२९ यदि तू स्त्री हो तो अपने पतिके ओरकी धर्मकरणीको याद कर, दोष हुए हों तो उनकी क्षमा मॉग और कुटुम्बकी ओर दृष्टि कर।

३० यदि तू कवि हो तो असंभवित प्रशसाको स्मरण कर आजके दिनमें प्रवेश कर।

३१ यदि तू कृपण हो तो,—(अपूर्ण)

३२ यदि तू सत्तामे मस्त हो तो नेपोलियन बोनापार्टको दोनों स्थितिसे स्मरण कर।

३३ कल कोई कृत्य अपूर्ण रहा हो तो पूर्ण करनेका सुविचार कर आजके दिनमें प्रवेश कर।

३४ आज किसी कृत्यके आरम करनेका विचार हो तो विवेकसे समय शक्ति और परिणामको विचार कर आजके दिनमें प्रवेश करना।

३५ पग रखनेमे पाप है, देखनेमे जहर है, और सिरपर मरण खड़ा है; यह विचारकर आजके दिनमे प्रवेश कर।

३६ अघोर कर्म करनेमे आज तुझे पड़ना हो तो राजपुत्र हो, तो भी भिक्षाचरी मान्य कर आजके दिनमे प्रवेश करना।

३७ भाग्यशाली हो तो उसके आनंदमे दूसरोंको भाग्यशाली बनाना, परन्तु दुर्भाग्यशाली हो तो अन्यका बुरा करनेसे रुक कर आजके दिनमे प्रवेश करना।

३८ धर्माचार्य हो तो अपने अनाचारकी ओर कटाक्ष दृष्टि करके आजके दिनमें प्रवेश करना।

३९ अनुचर हो तो प्रियसे प्रिय शरीरके निभानेवाले अपने अधिराजकी नमकहलाली चाहकर आजके दिनमे प्रवेश करना।

४० दुराचारी हो तो अपनी आरोग्यता, भय, परतंत्रता, स्थिति और सुख इनको विचार कर आजके दिनमे प्रवेश करना।

४१ दुखी हो तो आजीविका (आजकी) जितनी आशा रखकर आजके दिनमे प्रवेश करना।

४२ धर्मकरणीका अवश्य वक्त निकालकर आजकी व्यवहार-सिद्धिमे तू प्रवेश करना।

४३ कदाचित् प्रथम प्रवेशमे अनुकूलता न हो तो भी रोज जाते हुए दिनका स्वरूप विचार कर आज कभी भी उस पवित्र वस्तुका मनन करना।

४४ आहार, विहार, निहारके संबंधमे अपनी प्रक्रिया जॉच करके आजके दिनमें प्रवेश करना।

४५ तू कारीगर हो तो आलस और शक्तिके दुरुपयोगका विचार करके आजके दिनमें प्रवेश करना।

४६ तू चाहे जो धंधा करता हो, परन्तु आजीविकाके लिये अन्यायसंपन्न द्रव्यका उपार्जन नहीं करना।

४७ यह स्मरण किये बाद शौचक्रियायुक्त होकर भगवद्भक्तिमे लीन होकर क्षमा मॉग।

४८ संसार-प्रयोजनमे यदि तू अपने हितके वास्ते किसी समुदायका अहित कर डालता हो तो अटकना।

४९ जुल्मीको, कामीको, अनाड़ीको उत्तेजन देते हो तो अटकना।

५० कमसे कम आधा पहर भी धर्म-कर्तव्य और विद्या-सपत्तिमे लगाना।

५१ जिन्दगी छोटी है और लंबी जंजाल है, इसलिये जंजालको छोटी कर, तो सुखरूपसे जिन्दगी लम्बी मालूम होगी।

५२ स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, लक्ष्मी इत्यादि सभी सुख तेरे घर हों तो भी इस सुखमे गौणतासे दुख है ऐसा समझकर आजके दिनमे प्रवेश कर।

५३ पवित्रताका मूल सदाचार है।

५४ मनके दुरंगी हो जानेको रोकनेके लिये,—(अपूर्ण)

५५ वचनोंके शात मधुर, कोमल, सत्य और शौच बोलनेकी सामान्य प्रतिज्ञा लेकर आजके दिनमे प्रवेश करना।

५६ काया मल-मूत्रका अस्तित्व है, इसलिये मैं यह क्या अयोग्य प्रयोजन करके आनंद मानता हूँ? ऐसा आज विचारना।

५७ तेरे हाथसे आज किसीकी आजीविका टूटती हो तो,—(अपूर्ण)

५८ आहार-क्रियामें अब तूने प्रवेश किया। मिताहारी अकबर सर्वोत्तम बादशाह गिना गया।

५९ यदि आज दिनमें तेरा सोनेका मन हो तो उस समय ईश्वरभक्तिपरायण हो अथवा सत्-शास्त्रका लाभ ले लेना।

६० मैं समझता हूँ कि ऐसा होना दुर्घट है तो भी अभ्यास सबका उपाय है।

६१ चला आता हुआ बैर आज निर्मूल किया जाय तो उत्तम, नहीं तो उसकी सावधानी रखना।

६२ इसी तरह नया बैर नहीं बढ़ाना, कारण कि बैर करके कितने कालका सुख भोगना है? यह विचार तत्त्वज्ञानी करते हैं।

६३ महारंभी—हिंसायुक्त—व्यापारमें आज पड़ना पड़ता हो तो अटकना।

६४ बहुत लक्ष्मी मिलनेपर भी आज अन्यायसे किसीका जीव जाता हो तो अटकना।

६५ वक्त अमूल्य है, यह बात विचार कर आजके दिनकी २१६००० विपलोंका उपयोग करना।

६६ वास्तविक सुख मात्र विरागमें है, इसलिये जंजाल-मोहिनीसे आज अभ्यंतर-मोहिनी नहीं बढ़ाना।

६७ अवकाशका दिन हो तो पहले कही हुई स्वतंत्रतानुसार चलना।

६८ किसी प्रकारका निष्पाप विनोद अथवा अन्य कोई निष्पाप साधन आजकी आनंदनीयताके लिये ढूँढ़ना।

६९ सुयोजक कृत्य करनेमें प्रेरित होना हो तो विलंब करनेका आजका दिन नहीं, कारण कि आज जैसा मंगलदायक दिन दूसरा नहीं।

७० अधिकारी हो तो भी प्रजा-हित भूलना नहीं। कारण कि जिसका (राजाका) तू नमक खाता है, वह भी प्रजाका सन्मानित नौकर है।

७१ व्यवहारिक-प्रयोजनमें भी उपयोगपूर्वक विवेकी रहनेकी सत्प्रतिज्ञा लेकर आजके दिनमें लगना।

७२ सायंकाल होनेके पीछे विशेष शान्ति लेना।

७३ आजके दिनमें इतनी वस्तुओंको बाधा न आवे, तभी वास्तविक विचक्षणता गिनी जा सकती है—१ आरोग्यता २ महत्ता ३ पवित्रता ४ फरज।

७४ यदि आज तुझसे कोई महान् काम होता हो तो अपने सर्व सुखका बलिदान कर देना।

७५ करज नीच रज (क+रज) है, करज यमके हाथसे उत्पन्न हुई वस्तु है, (कर+ज) कर यह राक्षसी राजाका जुल्मी कर वसूल करने वाला है। यह हो तो आज उतारना और नया करज करते हुए अटकना।

७६ दिनके कृत्यका हिसाब अब देख जाना।

७७ सुबह स्मृति कराई है, तो भी कुछ अयोग्य हुआ हो तो पश्चात्ताप कर और शिक्षा ले।

७८ कोई परोपकार, दान, लाभ अथवा अन्यका हित करके आया हो तो आनंद मान कर निरभिमानी रह।

७९ जाने अजाने भी विपरीत हुआ हो तो अब उससे अटकना।

८० व्यवहारके नियम रखना और अवकाशमें संसारकी निवृत्ति खोज करना।

८१ आज जिस प्रकार उत्तम दिन भोगा, वैसे अपनी जिन्दगी भोगनेके लिये तू आनंदित हो तो ही यह० ।—(अपूर्ण)

८२ आज जिस पलमे तू मेरी कथा मनन करता है, उसीको अपनी आयुष्य समझकर सद्वृत्तिमे प्रेरित हो ।

८३ सत्पुरुष **विदुर**के कहे अनुसार आज ऐसा कृत्य करना कि रातमें सुखसे सो सके ।

८४ आजका दिन सुनहरी है, पवित्र है—कृतकृत्य होनेके योग्य है, यह सत्पुरुषोने कहा है, इसलिये मान्य कर ।

८५ आजके दिनमे जैसे बने तैसे स्वपत्नीमे विषयासक्त भी कम रहना ।

८६ आत्मिक और शारिरिक शक्तिकी दिव्यताका वह मूल है, यह ज्ञानियोका अनुभवसिद्ध वचन है।

८७ तमाखू सूँघने जैसा छोटा व्यसन भी हो तो आज पूर्ण कर ।—(०) नया व्यसन करनेसे अटक ।

८८ देश, काल, मित्र इन सबका विचार सब मनुष्योको इस प्रभातमे स्वशक्ति समान करना उचित है ।

८९ आज कितने सत्पुरुषोका समागम हुआ, आज वास्तविक आनंदस्वरूप क्या हुआ ? यह चिंतवन विरले पुरुष करते हैं ।

९० आज तू चाहे जैसे भयंकर परन्तु उत्तम कृत्यमे तत्पर हो तो नाहिम्मत नहीं होना ।

९१ शुद्ध, सच्चिदानन्द, करुणामय परमेश्वरकी भक्ति यह आजके तेरे सत्कृत्यका जीवन है ।

९२ तेरा, तेरे कुटुम्बका, मित्रका, पुत्रका, पत्नीका, माता पिताका, गुरुका, विद्वान्का, सत्पुरुषका यथाशक्ति हित, सन्मान, विनय और लाभका कर्तव्य हुआ हो तो आजके दिनकी वह सुगध है।

९३ जिसके घर यह दिन क्लेश विना, स्वच्छतासे, शौचतासे, ऐक्यसे, संतोषसे, सौम्यतासे, स्नेहसे, सभ्यतासे और सुखसे बीतेगा उसके घर पवित्रताका वास है ।

९४ कुशल और आज्ञाकारी पुत्र, आज्ञावलम्बी धर्मयुक्त अनुचर, सद्गुणी सुन्दरी, मेलवाला कुटुम्ब, सत्पुरुषके तुल्य अपनी दशा, जिस पुरुषकी होगी उसका आजका दिन हम सबको वंदनीय है ।

९५ इन सब लक्षणोसे युक्त होनेके लिये जो पुरुष विचक्षणतासे प्रयत्न करता है, उसका दिन हमको माननीय है ।

९६ इससे उलटा वर्त्तन जहाँ मच रहा है, वह घर हमारी कटाक्ष दृष्टिकी रेखा है ।

९७ भले ही अपनी आजीविका जितना तू प्राप्त करता हो परन्तु निरुपाधिमय हो तो उपाधिमय राज-सुख चाहकर अपने आजके दिनको अपवित्र नहीं करना ।

९८ किसीने तुझे कडुआ वचन कहा हो तो उस वक्तमे सहनशीलता—निरुपयोगी भी, (अपूर्ण)

९९ दिनकी भूलके लिये रातमे हँसना, परन्तु वैसा हँसना फिरसे न हो यह लक्षमें रखना।

१०० आज कुछ बुद्धि-प्रभाव बढ़ाया हो, आत्मिक शक्ति उज्ज्वल की हो, पवित्र कृत्यकी वृद्धि की हो तो वह,— (अपूर्ण)

१०१ अयोग्य रीतिसे आज अपनी किसी शक्तिका उपयोग नहीं करना,—मर्यादा-लोपनसे करना पड़े तो पापभीरु रहना ।

१०२ सरलता धर्मका बीजस्वरूप है। प्रज्ञासे सरलता सेवन की हो तो आजका दिन सर्वोत्तम है।

१०३ बहन, राजपत्नी हो अथवा दीनजनपत्नी हो, परन्तु मुझे उसकी कोई दरकार नहीं। मर्यादासे चलनेवालीकी मैं तो क्या किन्तु पवित्र ज्ञानियोंने भी प्रशंसा की है।

१०४ सद्गुणसे जो तुम्हारे ऊपर जगत्का प्रशस्त मोह होगा तो हे बहन, तुम्हें मैं वंदन करता हूँ।

१०५ बहुमान, नम्रभाव, विशुद्ध अंतःकरणसे परमात्माके गुणोंका चिंतवन-श्रवण-मनन, कीर्तन, पूजा-अर्चा इनकी ज्ञानी पुरुषोंने प्रशंसा की है, इसलिये आजका दिन शोभित करना।

१०६ सत्शीलवान सुखी है। दुराचारी दुखी है। यह बात यदि मान्य न हो तो अभीसे तुम लक्ष रखकर इस बातको विचार कर देखो।

१०७ इन सबोंका सहज उपाय आज कह देता हूँ कि दोषको पहचान कर दोषको दूर करना।

१०८ लम्बी, छोटी अथवा क्रमानुक्रम किसी भी स्वरूपसे यह मेरी कही हुई पवित्रताके पुष्पोंसे गूँथी हुई माला प्रभातके वक्तमें, सायंकालमें अथवा अन्य अनुकूल निवृत्तिमें विचारनेसे मंगलदायक होगी। विशेष क्या कहूँ?

२

काल किसीको नहीं छोड़ता

जिनके गलेमें मोतियोंकी मूल्यवान मालायें शोभती थीं, जिनकी कठ-कांति हीरेके शुभ हारसे अत्यन्त दैदीप्यमान थी, जो आभूषणोंसे शोभित होते थे, वे भी मरणको देखकर भाग गये। हे मनुष्यो, जानो और मनमें समझो कि काल किसीको नहीं छोड़ता ॥ १ ॥

जो मणिमय मुकुट सिरपर धारण करके कानोंमें कुण्डल पहनते थे, और जो हाथोंमें सोनेके कडे पहनकर शरीरको सजानेमें किसी भी प्रकारकी कमी नहीं रखते थे, ऐसे पृथ्वीपति भी अपना भान खोकर पल भरमें भूतलपर गिरे। हे मनुष्यो, जानो और मनमें समझो कि काल किसीको नहीं छोडता ॥२॥

जो दसो उँगलियोंमें माणिक्यजडित मागलिक मुद्रा पहनते थे, जो बहुत शौकके साथ बारीक

काळ कोईने नहि मूके

हरिगीत.

मोती तणी माळा गळामा मूल्यवंती मलकती,
हीरा तणा शुभ हारथी बहु कठकाति झळकती,
आभूषणोथी ओपता भाग्या मरणने जोइने,
जन जाणीए मन मानीए नव काळ मूके कोइने ॥ १ ॥
मणिमय मुगट माथे धरीने कर्ण कुडळ नाखता,
काचन कडा करमा धरी कशीए कचास न राखता,
पळमा पड्या पृथ्वीपति ए भान भूतळ खोईने,
जन जाणीए मन मानीए नव काल मूके कोईने ॥ २ ॥
दश आंगळीमा मागळिक मुद्रा जडित माणिक्यथी,
जे परम प्रेमे पे'रता पोंची कळा बारीकथी,

नक्सीवाली पोंची धारण करते थे, वे भी मुद्रा आदि सब कुछ छोड़कर मुँह धोकर चल दिये, हे मनुष्यो; जानो और मनमे समझो कि काल किसीको नहीं छोड़ता ॥ ३ ॥

जो मूँछे वांकीकर अलबेला बनकर मूँछोंपर नींबू रखते थे, जिनके कटे हुए सुन्दर केश हर किसीके मनको हरते थे, वे भी संकटमे पड़कर सबको छोड़कर चले गये, हे मनुष्यो, जानो और मनमे समझो कि काल किसीको नहीं छोड़ता ॥ ४ ॥

जो अपने प्रतापसे छहो खंडका अधिराज बना हुआ था, और ब्रह्माण्डमे बलवान होकर बड़ा भारी राजा कहलाता था, ऐसा चतुर चक्रवर्ती भी यहाँसे इस तरह गया कि मानो उसका कोई अस्तित्व ही नहीं था, हे मनुष्यो, जानो और मनमे समझो कि काल किसीको नही छोड़ता ॥ ५ ॥

जो राजनीतिनिपुणतामे न्यायवाले थे, जिनके उलटे डाले हुए पासे भी सदा सीधे ही पड़ते थे, ऐसे भाग्यशाली पुरुष भी सब खटपटे छोड़कर भाग गये। हे मनुष्यो, जानो और मनमें समझो कि काल किसीको नहीं छोड़ता ॥ ६ ॥

जो तलवार चलानेमे बहादुर थे, अपनी टेकपर मरनेवाले थे, सब प्रकारसे परिपूर्ण थे, जो हाथसे हाथीको मारकर केसरीके समान दिखाई देते थे, ऐसे सुभटवीर भी अंतमे रोते ही रह गये। हे मनुष्यो, जानो और मनमे समझो कि काल किसीको नही छोड़ता ॥ ७ ॥

ए वेढ वींटी सर्व छोडी चालिया मुख धोईने,
जन जाणीए मन मानीए नव काळ मूके कोईने ॥ ३ ॥

मुछ वाकडी करी फाकडा थई लींबु धरता ते परे,
कापेल राखी कातरा हरकोईना हैया हरे,
ए साकडीमा आविया छटक्या तजी सहु सोईने,
जन जाणीए मन मानीए नव काळ मूके कोईने ॥ ४ ॥

छो खडना अधिराज जे चडे करीने नीपज्या,
ब्रह्माडमा बळवान थइने भूप भारे ऊपज्या,
ए चतुर चक्री चालिया होता नहोता होईने,
जन जाणीए मन मानीए नव काळ मूके कोईने ॥ ५ ॥

जे राजनीतिनिपुणतामा न्यायवता नीवड्या,
अवळा कर्ये जेना बधा सवळा सदा पासा पड्या,
ए भाग्यशाळी भागिया ते खटपटो सौ खोईने,
जन जाणीए मन मानीए नव काळ मूके कोईने ॥ ६ ॥

तरवार ब्हादुर टेक धारी पूर्णतामा पेखिया,
हाथी हणे हाथे करी ए केसरी सम देखिया,
एवा भला भडवीर ते अते रहेला रोईने,
जन जाणीए मन मानीए नव काळ मूके कोईने ॥ ७ ॥

३

धर्मविषयक

जिसप्रकार दिनकरके विना दिन, शशिके विना शर्वरी, प्रजापतिके विना पुरकी प्रजा, सुरसके विना कविता, सलिलके विना सरिता, भर्ताके विना भामिनी सारहीन दिखाई देते हैं, उसी तरह, रायचन्द्र वीर कहते हैं, कि सद्धर्मको धारण किये विना मनुष्य महान् कुकर्मी कहा जाता है ॥ १ ॥

धर्म विना धन, धाम और धान्यको धूलके समान समझो, धर्म विना धरणीमें मनुष्य तिरस्कारको प्राप्त होता है, धर्म विना धीमतोंकी धारणाये धोखा खाती हैं, धर्म विना धारण किया हुआ धैर्य धुँवेके समान धुँधाता है, धर्म विना राजा लोग ठगाये जाते है (?), धर्म विना ध्यानीका ध्यान ढोंग समझा जाता है, इसलिये सुधर्मकी धवल धुरधताको धारण करो धारण करो, प्रत्येक धाम धर्मसे धन्य धन्य माना जाता है ॥२॥

प्रेमपूर्वक अपने हाथसे मोह और मानके दूर करनेको, दुर्जनताके नाश करनेको और जालके फन्दको तोड़नेको, सकल सिद्धातकी सहायतासे कुमतिके काटनेको, सुमतिके स्थापित करनेको और ममत्वके मापनेको; भली प्रकारसे महामोक्षके भोगनेको, जगदीशके जाननेको, और अजन्मताके प्राप्त करनेको, तथा अलौकिक, अनुपम सुखका अनुभव करनेको यथार्थ अध्यवसायसे धर्मको धारण करो ॥ ३ ॥

धर्म विषे.

कवित्त.

दिनकर विना जेवो, दिननो देखाव दीसे,
शशि विना जेवी रीते, शर्वरी सुहाय छे,
प्रजापति विना जेवी, प्रजा पुरतणी पेखो,
सुरस विनानी जेवी, कविता कहाय छे,
सलिल विहीन जेवी, सरीतानी शोभा अने,
भर्त्तार विहीन जेवी, भामिनी भळाय छे,
वदे रायचंद वीर, सद्धर्मने धार्या विना,
मानवी महान तेम, कुकर्मी कळाय छे ॥ १ ॥
धर्म विना धन धाम, धान्य धुळधाणी धारो,
धर्म विना धरणीमा, धिक्कता धराय छे,
धर्म विना धीमतनी, धारणाओ धोखो धरे,
धर्म विना धर्यु धैर्य, धुम्र थै धमाय छे,
धर्म विना धराधर, धुताशे, न धामधुमे,
धर्म विना ध्यानी ध्यान, ढोंग ढगे धाय छे,
धारो धारो धवळ, सुधर्मनी धुरधरता,
धन्य धन्य धामे धामे, धर्मथी धराय छे ॥ २ ॥
मोह मान मोडवाने, फेलपणु फोडवाने,
जाळफद तोडवाने, हेते निज हाथथी,
कुमतिने कापवाने, सुमतिने स्थापवाने,
ममत्वने मापवाने, सकल सिद्धातथी,
महा मोक्ष माणवाने, जगदीश जाणवाने,
अजन्मता आणवाने, वळी भली भातथी,
अलौकिक अनुपम, सुख अनुभववाने,
धर्म धारणाने धारो, खरेखरी खातथी ॥ ३ ॥

धर्मके विना प्रीति नहीं, धर्मके विना रीति नहीं, धर्मके विना हित नही, यह मैं हितकी बात कहता हूं; धर्मके विना टेक नही, धर्मके विना प्रामाणिकता नहीं, धर्मके विना ऐक्य नही, धर्म रामका धाम है; धर्मके विना ध्यान नही, धर्मके विना ज्ञान नहीं, धर्मके विना सच्चा भान नहीं, इसके विना जीना किस कामका है ? धर्मके विना तान नहीं, धर्मके विना प्रतिष्ठा नही, और धर्मके विना किसी भी वचनका गुणगान नहीं हो सकता ॥ ४ ॥

सुख देनेवाली सम्पत्ति हो, मानका मद हो, क्षेम क्षेमके उद्गारोसे वधाई मिलती हो, यह सब किसी कामका नही; जवानीका जोर हो, ऐशका उत्साह हो. दौलतका दौर हो, यह सब केवल नामका सुख है; वनिताका विलास हो, प्रौढ़ताका प्रकाश हो, दक्षके समान दास हो, धामका सुख हो, परन्तु रायचन्द्र कहते है कि सद्धर्मको विना धारण किये यह सब सुख दो ही कौड़ीका समझना चाहिये ॥५॥

जिसे चतुर लोग प्रीतिसे चाहकर चित्तमे चिन्तामणि रत्न मानते है, जिसे प्रेमसे पडित लोग पारसमणि मानते है, जिसे कवि लोग कल्याणकारी कल्पतरु कहते है, जिसे साधु लोग शुभ क्षेमसे सुधाका सागर मानते है, ऐसे धर्मको, यदि उमंगसे आत्माका उद्धार चाहते हो, तो निर्मल होनेके लिये नीति नियमसे नमन करो। रायचन्द्र वीर कहते है कि इस प्रकार धर्मका रूप जानकर धर्मवृत्तिमे ध्यान रक्खो और वहमसे लक्षच्युत न होओ ॥ ६ ॥

धर्म विना प्रीत नहीं, धर्म विना रीत नहीं,
धर्म विना हित नहीं, कथुं जन कामनुं,
धर्म विना टेक नहीं, धर्म विना नेक नहीं,
धर्म विना ऐक्य नहीं, धर्म धाम रामनुं,
धर्म विना ध्यान नहीं, धर्म विना ज्ञान नहीं,
धर्म विना भान नहीं, जीव्युं कोना कामनुं ?
धर्म विना तान नहीं, धर्म विना सान नहीं,
धर्म विना गान नहीं, वचन तमामनुं ॥ ४ ॥

साह्यबी सुखद होय, मानतणो मद होय,
खमा खमा खुद होय, ते ते कशा कामनुं,
जुवानीनुं जोर होय, एशनो अंकोर होय,
दोलतनो दोर होय, ए ते सुख नामनुं,
वनिता विलास होय, प्रौढ़ता प्रकाश होय,
दक्ष जेवा दास होय, होय सुख धामनु,
वदे रायचंद एम, सद्धर्मने धार्यो विना,
जाणी लेजे सुख एतो, बेएज बदामनुं ! ॥ ५ ॥

चातुरो चोंपेथी चाही चिंतामणी चित्त गणे,
पंडितो प्रमाणे छे पारसमणी प्रेमथी,
कवियो कल्याणकारी कल्पतरु कथे जेने,
सुधानो सागर कथे, साधु शुभ क्षेमथी,
आत्मना उद्धारने उमंगथी अनुसरो जो,
निर्मळ थवाने काजे, नमो नीति नेमथी,
वदे रायचद वीर, एवुं धर्मरूप जाणी,
"धर्मवृत्ति ध्यान धरो, विलखो न वे'मथी" ॥ ६ ॥

ॐ

श्रीमोक्षमाला

"जिसने आत्मा जान ली उसने सब कुछ जान लिया"

(निर्ग्रंथप्रवचन)

१ वाचकको अनुरोध

वाचक! यह पुस्तक आज तुम्हारे हस्त-कमलमे आती है। इसे ध्यानपूर्वक बाँचना; इसमें कहे हुए विषयोंको विवेकसे विचारना, और परमार्थको हृदयमे धारण करना। ऐसा करोगे तो तुम नीति, विवेक, ध्यान, ज्ञान, सद्गुण और आत्म-शाति पा सकोगे।

तुम जानते होगे कि बहुतसे अज्ञान मनुष्य न पढ़ने योग्य पुस्तके पढकर अपना अमूल्य समय वृथा खो देते है। इससे वे कुमार्ग पर चढ़ जाते है, इस लोकमे अपकीर्ति पाते हैं, और परलोकमें नीच गतिमें जाते हैं।

भाषा-ज्ञानकी पुस्तकोंकी तरह यह पुस्तक पठन करनेकी नहीं, परन्तु मनन करनेकी है। इससे इस भव और परभव दोनोंमें तुम्हारा हित होगा। भगवान्‌के कहे हुए वचनोका इसमें उपदेश किया गया है।

तुम इस पुस्तकका विनय और विवेकसे उपयोग करना। विनय और विवेक ये धर्मके मूल हेतु है।

तुमसे दूसरा एक यह भी अनुरोध है कि जिनको पढना न आता हो, और उनकी इच्छा हो, तो यह पुस्तक अनुक्रमसे उन्हें पढ़कर सुनाना।

तुम्हें इस पुस्तकमें जो कुछ समझमे न आवे, उसे सुविचक्षण पुरुषोसे समझ लेना योग्य है।

तुम्हारी आत्माका इससे हित हो, तुम्हें ज्ञान, शाति और आनन्द मिले; तुम परोपकारी, दयालु, क्षमावान, विवेकी और बुद्धिशाली बनो, अर्हत् भगवान्‌से यह शुभ याचना करके यह पाठ पूर्ण करता हूँ।

२ सर्वमान्य धर्म

जो धर्मका तत्त्व मुझसे पूँछा है, उसे तुझे स्नेहपूर्वक सुनाता हूँ। वह धर्म-तत्त्व सकल सिद्धातका सार है, सर्वमान्य है, और सबको हितकारी है ॥ १ ॥

भगवान्‌ने भाषणमें कहा है कि दयाके समान दूसरा धर्म नहीं है। दोषोको नष्ट करनेके लिये अभयदानके साथ प्राणियोंको सतोष प्रदान करो ॥ २ ॥

धर्मतत्त्व जो पूछ्यु मने तो संभळावुं स्नेहे तने,
जे सिद्धात सकळनो सार सर्वमान्य सहुने हितकार ॥ १ ॥
भाख्यु भाषणमा भगवान, धर्म न बीजो दया समान,
अभयदान साथे सतोष, द्यो प्राणिने दळवा दोष ॥ २ ॥

सत्य, शील और सब प्रकारके दान, दयाके होनेपर ही प्रमाण माने जाते है । जिसप्रकार सूर्यके बिना किरणे दिखाई नहीं देतीं, उसी प्रकार दयाके न होनेपर सत्य, शील और दानमेंसे एक भी गुण नहीं रहता ॥ ३ ॥

जहॉ पुष्पकी एक पॅखडीको भी क्लेश होता है, वहॉ प्रवृत्ति करनेकी जिनवरकी आज्ञा नही । सब जीवोंके सुखकी इच्छा करना, यही महावीरकी मुख्य शिक्षा है ॥ ४ ॥

यह उपदेश सब दर्शनोमे है । यह एकात है, इसका कोई अपवाद नही है । सब प्रकारसे जिनभगवानका यही उपदेश है कि विरोध रहित दया ही निर्मल दया है ॥ ५ ॥

यह ससारसे पार करनेवाला सुंदर मार्ग है, इसे उत्साहसे धारण करके संसारको पार करना चाहिये । यह सकल धर्मका शुभ मूल है, इसके बिना धर्म सदा प्रतिकूल रहता है ॥ ६ ॥

जो मनुष्य इसे तत्त्वरूपसे पहचानते है, वे शाश्वत सुखको प्राप्त करते हैं । राजचन्द्र कहते है कि शान्तिनाथ भगवान् करुणासे सिद्ध हुए है, यह प्रसिद्ध है ॥ ७ ॥

३ कर्मका चमत्कार

मै तुम्हे बहुतसी सामान्य विचित्रताये कहता हूॅ । इनपर विचार करोगे तो तुमको परभवकी श्रद्धा दृढ होगी ।

एक जीव सुंदर पलंगपर पुष्पशय्यामे शयन करता है और एकको फटीहुई गूदड़ी भी नहीं मिलती। एक भॉति भॉतिके भोजनोसे तृप्त रहता है और एकको काली ज्वारके भी लाले पड़ते हैं । एक अगणित लक्ष्मीका उपभोग करता है और एक फूटी बादामके लिये घर घर भटकता फिरता है । एक मधुर वचनोसे मनुष्यका मन हरता है और एक अवाचक जैसा होकर रहता है। एक सुंदर वस्त्रालंकारसे विभूषित होकर फिरता है और एकको प्रखर शीतकालमे फटा हुआ कपड़ा भी ओढ़नेको नहीं मिलता। कोई रोगी है और कोई प्रबल है। कोई बुद्धिशाली है और कोई जड़ है। कोई मनोहर नयनवाला है और कोई अधा है । कोई लूला-लॅगड़ा है और किसीके हाथ और पैर रमणीय है । कोई कीर्तिमान है और कोई अपयश भोगता है । कोई लाखो अनुचरोपर हुक्म चलाता है और कोई लाखोके ताने सहन करता है। किसीको देखकर आनन्द होता है और किसीको देखकर वमन होता है । कोई सम्पूर्ण इन्द्रियोवाला है और कोई अपूर्ण इन्द्रियोंवाला है। किसीको दीन-दुनियाका लेश भी भान नहीं और किसीके दुखका पार भी नहीं ।

सत्य शीलने सघळा दान, दया होइने रह्या प्रमाण,
दया नहीं तो ए नहीं एक, विना सूर्य किरण नहीं देख ॥ ३ ॥
पुष्पपाखडी ज्या दूभाय जिनवरनी त्या नहीं आज्ञाय,
सर्व जीवनु ईच्छो सुख, महावीरकी शिक्षा मुख्य ॥ ४ ॥
सर्व दर्शने ए उपदेश, ए एकाते, नहीं विशेष,
सर्व प्रकारे जिननो बोध, दया दया निर्मळ अविरोध ॥ ५ ॥
ए भवतारक सुंदर राह, धरिये तरिये करी उत्साह,
धर्म सकळनु यह शुभ मूळ, ए वण धर्म सदा प्रतिकूळ ॥ ६ ॥
तत्त्वरूपथी ए ओळखे, ते जन प्होंचे शाश्वत सुखे,
शातिनाथ भगवान प्रसिद्ध, राजचन्द्र करुणाए सिद्ध ॥ ७ ॥

कोई गर्भाधानमें आते ही मरणको प्राप्त हो जाता है। कोई जन्म लेते ही तुरत मर जाता है। कोई मरा हुआ पैदा होता है और कोई सौ वर्षका वृद्ध होकर मरता है।

किसीका मुख, भाषा और स्थिति एकसी नहीं। मूर्ख राज्यगद्दीपर क्षेम क्षेमके उद्गारोंसे बधाई दिया जाता है और समर्थ विद्वान् धक्का खाते हैं।

इस प्रकार समस्त जगत्की विचित्रता भिन्न भिन्न प्रकारसे तुम देखते हो। क्या इसके ऊपरसे तुम्हें कोई विचार आता है? मैंने जो कहा है यदि उसके ऊपरसे तुम्हें विचार आता हो, तो कहो कि यह विचित्रता किस कारणसे होती है?

अपने बाँधे हुए शुभाशुभ कर्मसे। कर्मसे समस्त ससारमे भ्रमण करना पड़ता है। परभव नहीं माननेवाले स्वयं इन विचारोंको किस कारणसे करते हैं, इसपर यथार्थ विचार करें, तो वे भी इस सिद्धातको मान्य रक्खें।

४ मानवदेह

जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, विद्वान् इस मानवदेहको दूसरी सब देहोंसे उत्तम कहते है। उत्तम कहनेके कुछ कारणोंको हम यहाँ कहेंगे।

यह संसार बहुत दुःखसे भरा हुआ है। इसमेंसे ज्ञानी तैरकर पार पानेका प्रयत्न करते हैं। मोक्षको साधकर वे अनत सुखमें विराजमान होते हैं। यह मोक्ष दूसरी किसी देहसे नहीं मिलती। देव, तिर्यंच और नरक इनमेंसे किसी भी गतिसे मोक्ष नहीं; केवल मानवदेहसे ही मोक्ष है।

अब तुम कहोगे, कि सब मानवियोंको मोक्ष क्यों नहीं होता? उसका उत्तर यह है कि जो मानवपना समझते हैं, वे ससार-शोकसे पार हो जाते हैं। जिनमें विवेक-बुद्धि उदय हुई हो, और उससे सत्यासत्यके निर्णयको समझकर, जो परम तत्त्व-ज्ञान तथा उत्तम चारित्ररूप सद्धर्मका सेवन करके अनुपम मोक्षको पाते है, उनके देहधारीपनेको विद्वान् मानवपना कहते हैं। मनुष्यके शरीरकी बनावटके ऊपरसे विद्वान् उसे मनुष्य नहीं कहते, परन्तु उसके विवेकके कारण उसे मनुष्य कहते हैं। जिसके दो हाथ, दो पैर, दो ऑख, दो कान, एक मुख, दो होठ, और एक नाक हो उसे मनुष्य कहना, ऐसा हमें नहीं समझना चाहिये। यदि ऐसा समझें, तो फिर बदरको भी मनुष्य गिनना चाहिये। उसने भी इस तरह हाथ, पैर आदि सब कुछ प्राप्त किया है। विशेषरूपसे उसके एक पूँछ भी है, तो क्या उसको महामनुष्य कहना चाहिये? नहीं, नहीं। जो मानवपना समझता है वही मानव कहला सकता है।

ज्ञानी लोग कहते हैं, कि यह भव बहुत दुर्लभ है, अति पुण्यके प्रभावसे यह देह मिलती है, इस लिये इससे शीघ्रतासे आत्मसिद्धि कर लेना चाहिये। अयमतकुमार, गजसुकुमार जैसे छोटे बालकोंने भी मानवपनेको समझनेसे मोक्ष प्राप्त की। मनुष्यमें जो विशेष शक्ति है, उस शक्तिसे वह मदोन्मत्त हाथी जैसे प्राणीको भी वशमें कर लेता है। इस शक्तिसे यदि वह अपने मनरूपी हाथीको वश कर ले, तो कितना कल्याण हो!

किसी भी अन्य देहमें पूर्ण सद्विवेकका उदय नहीं होता, और मोक्षके राज-मार्गमें प्रवेश नहीं हो सकता। इस लिये हमे मिले हुए इस बहुत दुर्लभ मानवदेहको सफल कर लेना आवश्यक है।

बहुतसे मूर्ख दुराचारमे, अज्ञानमें, विषयमे और अनेक प्रकारके मदमे इस मानव-देहको वृथा गुमाते है, अमूल्य कौस्तुभको खो बैठते है। ये नामके मानव गिने जा सकते है, बाकीके तो वानररूप ही है।

मौतकी पलको, निश्चयसे हम नहीं जान सकते। इस लिये जैसे बने वैसे धर्ममे त्वरासे सावधान होना चाहिये।

५ अनाथी मुनि

(१)

अनेक प्रकारकी ऋद्धिवाला मगध देशका श्रेणिक नामक राजा अश्वक्रीडाके लिये मंडिकुक्ष नामके वनमे निकल पडा। वनकी विचित्रता मनोहारिणी थी। वहाँ नाना प्रकारके वृक्ष खड़े थे, नाना प्रकारकी कोमल वेले घटाटोप फैली हुई थीं। नाना प्रकारके पक्षी आनंदसे उनका सेवन कर रहे थे, नाना प्रकारके पक्षियोके मधुर गान वहाँ सुनाई पड़ते थे, नाना प्रकारके फूलोसे वह वन छाया हुआ था, नाना प्रकारके जलके झरने वहाँ वहते थे। संक्षेपमे, यह वन नंदनवन जैसा लगता था। इस वनमे एक वृक्षके नीचे महासमाधिवंत किन्तु सुकुमार और सुखोचित मुनिको उस श्रेणिकने वैठे हुए देखा। इसका रूप देखकर उस राजाको अत्यन्त आनन्द हुआ। उसके उपमारहित रूपसे विस्मित होकर वह मन ही मन उसकी प्रशंसा करने लगा। इस मुनिका कैसा अद्भुत वर्ण है! इसका कैसा मनोहर रूप है! इसकी कैसी अद्भुत सौम्यता है! यह कैसी विस्मयकारक क्षमाका धारक है! इसके अंगसे वैराग्यका कैसा उत्तम प्रकाश निकाल रहा है! इसकी निर्लोभता कैसी दीखती है! यह संयति कैसी निर्भय नम्रता धारण किये हुए है! यह भोगसे कैसा विरक्त है! इस प्रकार चिंतवन करते करते, आनन्दित होते होते, स्तुति करते करते, धीरे धीरे चलते हुए, प्रदक्षिणा देकर उस मुनिको वंदन कर न अति समीप और न अति दूर वह श्रेणिक वैठा। वादमे दोनो हाथोको जोड़ कर विनयसे उसने उस मुनिसे पूछा, "हे आर्य! आप प्रशंसा करने योग्य तरुण हैं। भोगविलासके लिये आपकी वय अनुकूल है। संसारमे नाना प्रकारके सुख है। ऋतु ऋतुके काम-भोग, जल संबंधी विलास, तथा मनोहारिणी स्त्रियोके मुख-वचनके मधुर श्रवण होनेपर भी इन सबका त्याग करके मुनित्वमे आप महाउद्यम कर रहे हैं, इसका क्या कारण है, यह मुझे अनुग्रह करके कहिये।" राजाके ऐसे वचन सुनकर मुनिने कहा—"हे राजन्! मै अनाथ था। मुझे अपूर्व वस्तुका प्राप्त करानेवाला, योग-क्षेमका करनेवाला, मुझपर अनुकंपा लानेवाला, करुणासे परम-सुखको देनेवाला कोई मेरा मित्र नहीं हुआ। यह कारण मेरे अनाथीपनेका था।"

६ अनाथी मुनि

(२)

श्रेणिक मुनिके भाषणसे स्मित हास्य करके वोला, "आप महाऋद्धिवतका नाथ क्यो न होगा? यदि कोई आपका नाथ नहीं है तो मै होता हूँ। हे भयत्राण! आप भोगोंको भोगें। हे संयति! मित्र, ज्ञातिसे दुर्लभ इस अपने मनुष्य भवको सफल करें।" अनाथीने कहा—"अरे श्रेणिक राजा! परन्तु तू तो स्वयं अनाथ है, तो मेरा नाथ क्या होगा? निर्धन धनाढ्य कहाँसे बना सकता है? अबुध बुद्धि-दान कहाँसे कर सकता है? अज्ञ विद्वत्ता कहाँसे दे सकता है? वंध्या संतान कहाँसे

दे सकती है ? जब तू स्वय अनाथ है तो मेरा नाथ कैसे होगा ? " मुनिके वचनसे राजा अति आकुल और अति विस्मित हुआ । जिस वचनका कभी भी श्रवण नहीं हुआ था, उस वचनके यतिके मुखसे श्रवण होनेसे वह शकित हुआ और बोला—"मै अनेक प्रकारके अश्वोका भोगी हूं; अनेक प्रकारके मदोन्मत्त हाथियोंका स्वामी हूँ, अनेक प्रकारकी सेना मेरे आधीन है; नगर, ग्राम, अतःपुर और चतुष्पादकी मेरे कोई न्यूनता नही है; मनुष्य सबधी सब प्रकारके भोग मैंने प्राप्त किये है; अनुचर मेरी आज्ञाको भली भांति पालते हैं। इस प्रकार राजाके योग्य सब प्रकारकी सपत्ति मेरे घर है और अनेक मनवांछित वस्तुये मेरे समीप रहती है। इस तरह महान् होनेपर भी मै अनाथ क्यों हूँ ? कहीं हे भगवन् ! आप मृषा न बोलते हों।" मुनिने कहा, "राजन् ! मेरे कहनेको तू न्यायपूर्वक नहीं समझा। अब मै जैसे अनाथ हुआ, और जैसे मैंने ससारका त्याग किया वह तुझे कहता हूँ। उसे एकाग्र और सावधान चित्तसे सुन। सुननेके बाद तू अपनी शकाके सत्यासत्यका निर्णय करना:—

"कौशाम्बी नामकी अति प्राचीन और विविध प्रकारकी भव्यतासे भरपूर एक सुदर नगरी है। वहाँ ऋद्धिसे परिपूर्ण धन सचय नामका मेरा पिता रहता था। हे महाराज ! यौवनके प्रथम भागमें मेरी आँखे अति वेदनासे घिर गईं और समस्त शरीरमें अग्नि जलने लगी। शस्त्रसे भी अतिशय तीक्ष्ण यह रोग वैरीकी तरह मेरे ऊपर कोपायमान हुआ। मेरा मस्तक इस आँखकी असह्य वेदनासे दुखने लगा। वज्रके प्रहार जैसी, दूसरोंको भी रौद्र भय उपजानेवाली इस दारुण वेदनासे मैं अत्यत शोकमें था। वैद्यक-शास्त्रमें निपुण बहुतसे वैद्यराज मेरी इस वेदनाको दूर करनेके लिये आये, और उन्होंने अनेक औषध-उपचार किये, परन्तु सब वृथा गये। ये महानिपुण गिने जानेवाले वैद्यराज मुझे उस रोगसे मुक्त न कर सके। हे राजन् ! यही मेरा अनाथपना था। मेरी आँखकी वेदनाको दूर करनेके लिये मेरे पिता सब धन देने लगे, परन्तु उससे भी मेरी वह वेदना दूर नहीं हुई। हे राजन् ! यही मेरा अनाथपना था। मेरी माता पुत्रके शोकसे अति दुःखार्त थी, परन्तु वह भी मुझे रोगसे न छुटा सकी। हे राजन् ! यही मेरा अनाथपना था। एक पेटसे जन्मे हुए मेरे ज्येष्ठ और कनिष्ठ भाईयोंने अपनेसे बनता परिश्रम किया परन्तु मेरी वह वेदना दूर न हुई। हे राजन् ! यही मेरा अनाथपना था। एक पेटसे जन्मी हुई मेरी ज्येष्ठा और कनिष्ठा भगिनियोंसे भी मेरा वह दुःख दूर नहीं हुआ। हे महाराज ! यही मेरा अनाथपना था। मेरी स्त्री जो पतिव्रता, मेरे ऊपर अनुरक्त और प्रेमवती थी वह अपने आँसुओसे मेरे हृदयको द्रवित करती थी, उसके अन्न पानी देनेपर भी और नानाप्रकारके उबटन, चुवा आदि सुगधित पदार्थ, तथा अनेक प्रकारके फूल चदन आदिके जाने अजाने विलेपन किये जानेपर भी, मै उस विलेपनसे अपने रोगको शान्त नहीं कर सका। क्षणभर भी अलग न रहनेवाली स्त्री भी मेरे रोगको नहीं दूर कर सकी। हे महाराज ! यही मेरा अनाथपना था। इस तरह किसीके प्रेमसे, किसीकी औषधिसे, किसीके विलापसे और किसीके परिश्रमसे यह रोग शान्त न हुआ। इस समय पुनः पुनः मै असह्य वेदना भोग रहा था। बादमें मुझे प्रपची संसारसे खेद हुआ। एक बार यदि इस महा विडम्बनामय वेदनासे मुक्त हो जाऊँ, तो खंती, दंती और निरारंभी प्रव्रज्याको धारण करूँ, ऐसा विचार करके मैं सो गया। जब रात व्यतीत हुई, उस समय हे महाराज ! मेरी वह

वेदना क्षय हो गई, और मै निरोग हो गया। माता, पिता, स्वजन, बांधव आदिको पूँछकर प्रभातमे मैने महाक्षमावंत इन्द्रियोका निग्रह करनेवाले, और आरम्भोपाधिसे रहित अनगारपनेको धारण किया।

७ अनाथी मुनि
(३)

हे श्रेणिक राजा! तबसे मै आत्मा-परात्माका नाथ हुआ। अब मै सब प्रकारके जीवोका नाथ हूँ। तुझे जो शंका हुई थी वह अब दूर हो गई होगी। इस प्रकार समस्त जगत्—चक्रवर्ती पर्यंत—अशरण और अनाथ है। जहाँ उपाधि है वहाँ अनाथता है। इस लिये जो मै कहता हूँ उस कथनका तू मनन करना। निश्चय मानो कि अपनी आत्मा ही दुःखकी भरी हुई वैतरणीका कर्ता है; अपना आत्मा ही क्रूर शाल्मलि वृक्षके दुःखका उपजाने वाला है; अपना आत्मा ही वांछित वस्तुरूपी दूधकी देनेवाला कामधेनु-सुखका उपजानेवाला है; अपना आत्मा ही नंदनवनके समान आनदकारी है; अपना आत्मा ही कर्मका करनेवाला है, अपना आत्मा ही उस कर्मका टालनेवाला है, अपना आत्मा ही दुखोपार्जन और अपना आत्मा ही और सुखोपार्जन करनेवाला है, अपना आत्मा ही मित्र, और अपना आत्मा ही बैरी है; अपना आत्मा ही कनिष्ठ आचारमे स्थित, और अपना आत्मा ही निर्मल आचारमे स्थित रहता है।

इस प्रकार श्रेणिकको उस अनाथी मुनिने आत्माके प्रकाश करनेवाले उपदेशको दिया। श्रेणिक राजाको बहुत संतोष हुआ। वह दोनो हाथोको जोड़ कर इस प्रकार बोला—“हे भगवन्! आपने मुझे भली भाँति उपदेश किया, आपने यथार्थ अनाथपना कह बताया। महर्षि! आप सनाथ, आप सबाधव और आप सधर्म है। आप सब अनाथोके नाथ है। हे पवित्र संयति! मै आपसे क्षमा माँगता हूँ। आपकी ज्ञानपूर्ण शिक्षासे मुझे लाभ हुआ है। हे महाभाग्यवन्त! धर्मध्यानमे विघ्न करनेवाले भोगोके भोगनेका मैंने आपको जो आमत्रण दिया, इस अपने अपराधकी मस्तक नमाकर मै क्षमा माँगता हूँ।” इस प्रकारसे स्तुति करके राजपुरुषकेसरी श्रेणिक विनयसे प्रदक्षिणा करके अपने स्थानको गया।

महातपोधन, महामुनि, महाप्रज्ञावंत, महायशवत, महानिर्ग्रंथ और महाश्रुत अनाथी मुनिने मगध देशके श्रेणिक राजाको अपने बीते हुए चरित्रसे जो उपदेश दिया है, वह सचमुच अशरण भावना सिद्ध करता है। महामुनि अनाथीसे भोगी हुई वेदनाके समान अथवा इससे भी अत्यन्त विशेष वेदनाको अनंत आत्माओको भोगते हुए हम देखते हैं, यह कैसा विचारणीय है! संसारमे अशरणता और अनंत अनाथता छाई हुई है। उसका त्याग उत्तम तत्त्वज्ञान और परम शीलके सेवन करनेसे ही होता है। यही मुक्तिका कारण है। जैसे संसारमे रहता हुआ अनाथी अनाथ था उसी तरह प्रत्येक आत्मा तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके विना सदैव अनाथ ही है। सनाथ होनेके लिये सद्देव, सद्धर्म और सद्गुरुको जानना और पहचानना आवश्यक है।

८ सद्देवतत्त्व

तीन तत्त्वोको हमे अवश्य जानना चाहिये। जब तक इन तत्त्वोके सबधमे अज्ञानता रहती है तब तक आत्माका हित नही होता। ये तीन तत्त्व सद्देव, सद्धर्म, और सद्गुरु हैं। इस पाठमें हम सद्देवका स्वरूप संक्षेपमे कहेगे।

चक्रवर्ती राजाधिराज अथवा राजपुत्र होनेपर भी जो संसारको एकात अनंत शोकका कारण मानकर उसका त्याग करते हैं, जो पूर्ण दया, शाति, क्षमा, वीतरागता और आत्म-समृद्धिसे त्रिविध तापका लय करते है; जो महा उग्र तप और ध्यानके द्वारा आत्म-विशोधन करके कर्मोंके समूहको जला डालते हैं; जिन्हें चद्र और शखसे भी अत्यत उज्ज्वल शुक्लध्यान प्राप्त होता है, जो सब प्रकारकी निद्राका क्षय करते है, जो संसारमे मुख्य गिने जानेवाले ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय इन चार कर्मोंको भस्मीभूत करके केवलज्ञान और केवलदर्शन सहित अपने स्वरूपसे विहार करते हैं; जो चार अघाति कर्मोंके रहने तक यथाख्यातचारित्ररूप उत्तम शीलका सेवन करते है; जो कर्म-ग्रीष्मसे अकुलाये हुए पामर प्राणियोंको परमशाति प्राप्त करानेके लिये शुद्ध सारभूत तत्त्वका निष्कारण करुणासे मेघधारा-वाणीसे उपदेश करते है, जिनके किसी भी समय किंचित् मात्र भी ससारी वैभव विलासका स्वप्नाश भी बाकी नहीं रहा; जो घनघाति कर्म क्षय करनेके पहले अपनी छद्मस्थता जानकर श्रीमुख-वाणीसे उपदेश नहीं करते, जो पॉच प्रकारका अंतराय, हास्य, रति, अरति, भय, जुगुप्सा, शोक, मिथ्यात्व, अज्ञान, अप्रत्याख्यान, राग, द्वेष, निद्रा, और काम इन अठारह दूषणोंसे रहित हैं; जो सच्चिदानन्द स्वरूपसे विराजमान हैं, जिनके महाउद्योतकर बारह गुण प्रगट होते हैं, जिनके जन्म, मरण और अनत ससार नष्ट हो गया है, उनको निर्ग्रंथ आगममें सद्देव कहा है। इन दोषोंसे रहित शुद्ध आत्मस्वरूपको प्राप्त करनेके कारण वे पूजनीय परमेश्वर कहे जाने योग्य हैं। ऊपर कहे हुए अठारह दोषोंमेंसे यदि एक भी दोष हो तो सद्देवका स्वरूप नहीं घटता। इस परमतत्त्वको महान् पुरुषोंसे विशेषरूपसे जानना आवश्यक है।

९ सद्धर्मतत्त्व

अनादि कालसे कर्म-जालके बधनसे यह आत्मा ससारमे भटका करता है। क्षण मात्र भी उसे सच्चा [illegible] मिलता। यह अधोगतिका सेवन किया करता है। अधोगतिमें पडती हुई आत्माको रोककर [illegible] देता है उसका नाम धर्म कहा जाता है, और यही सत्य सुखका उपाय है। इस धर्म तत्त्वके [illegible] भगवानने भिन्न भिन्न भेद कहे हैं। उनमें मुख्य भेद दो हैं:—व्यवहारधर्म और निश्चयधर्म।

[illegible] धर्ममें दया मुख्य है। सत्य आदि बाकीके चार महाव्रत भी दयाकी रक्षाके लिये हैं। [illegible] भेद हैं—द्रव्यदया, भावदया, स्वदया, परदया, स्वरूपदया, अनुबंधदया, व्यवहारदया, [illegible]दया।

[illegible] दया—प्रत्येक कामको यत्नपूर्वक जीवोंकी रक्षा करके करना 'द्रव्यदया' है।

[illegible] भावदया—दूसरे जीवको दुर्गतिमे जाते देखकर अनुकपा बुद्धिसे उपदेश देना 'भावदया' है।

[illegible] दया—[illegible] आत्मा अनादि कालसे मिथ्यात्वसे ग्रसित है, तत्त्वको नहीं पाता, [illegible], इस प्रकार चिन्तन कर धर्ममे प्रवेश करना 'स्वदया' है।

[illegible] दया—[illegible] कायके जीवोंकी रक्षा करना 'परदया' है।

[illegible] दया—[illegible] स्वरूप विचार करना 'स्वरूपदया' है।

[illegible] —[illegible] गुरुका शिष्यको कडवे वचनोंसे उपदेश देना, यद्यपि यह [illegible] परिणाममें करुणाका कारण है—इसका नाम 'अनुबंधदया' है।

सातवीं व्यवहारदया—उपयोगपूर्वक और विधिपूर्वक दया पालनेका नाम 'व्यवहारदया' है।

आठवी निश्चयदया—शुद्ध साध्य उपयोगमे एकता भाव और अभेद उपयोगका होना 'निश्चयदया' है।

इस आठ प्रकारकी दयाको लेकर भगवान्ने व्यवहारधर्म कहा है। इसमे सब जीवोके सुख, सतोष और अभयदान ये सब विचारपूर्वक देखनेसे आ जाते है।

दूसरा निश्चयधर्म—अपने स्वरूपकी भ्रमणा दूर करनी, आत्माको आत्मभावसे पहचानना, 'यह संसार मेरा नहीं, मै इससे भिन्न, परम असंग, सिद्ध सदृश शुद्ध आत्मा हूँ' इस तरह आत्म-स्वभावमे प्रवृत्ति करना 'निश्चयधर्म' है।

जहॉ किसी प्राणीको दुःख, अहित अथवा असंतोष होता है, वहॉ दया नहीं; और जहॉ दया नहीं वहॉ धर्म नहीं। अर्हत भगवान्के कहे हुए धर्मतत्त्वसे सब प्राणी भय रहित होते हैं।

१० सद्गुरुतत्त्व

(१)

पिता—पुत्र! तू जिस शालामे पढने जाता है उस शालाका शिक्षक कौन है?

पुत्र—पिताजी! एक विद्वान् और समझदार ब्राह्मण है।

पिता—उसकी वाणी, चालचलन आदि कैसे है?

पुत्र—उसकी वाणी बहुत मधुर है। वह किसीको अविवेकसे नही बुलाता, और बहुत गंभीर है, जिस समय वह बोलता है, उस समय मानो उसके मुखसे फूल झरते है। वह किसीका अपमान नही करता; और जिससे हम योग्य नीतिको समझ सकें, ऐसी हमे शिक्षा देता है।

पिता—तू वहॉ किस कारणसे जाता है, सो मुझे कह।

पुत्र—आप ऐसा क्यो कहते हैं, पिताजी! मैं संसारमे विचक्षण होनेके लिये पद्धतियोंको समझूँ और व्यवहारनीतिको सीखूँ, इसलिये आप मुझे वहॉ भेजते हैं।

पिता—तेरा शिक्षक यदि दुराचारी अथवा ऐसा ही होता तो?

पुत्र—तब तो बहुत बुरा होता। हमे अविवेक और कुवचन बोलना आता। व्यवहारनीति तो फिर सिखलाता ही कौन?

पिता—देख पुत्र! इसके ऊपरसे मै अब तुझे एक उत्तम शिक्षा कहता हूँ। जैसे संसारमे पड़नेके लिये व्यवहारनीति सीखनेकी आवश्यकता है, वैसे ही परभवके लिये धर्मतत्त्व और धर्मनीतिमे प्रवेश करनेकी आवश्यकता है। जैसे यह व्यवहारनीति सदाचारी शिक्षकसे उत्तम प्रकारसे मिल सकती है, वैसे ही परभवमे श्रेयस्कर धर्मनीति उत्तम गुरुसे ही मिल सकती है। व्यवहारनीतिके शिक्षक और धर्मनीतिके शिक्षकमे बहुत भेद है। बिल्लोरके टुकड़ेके समान व्यवहार-शिक्षक है, और अमूल्य कौस्तुभके समान आत्मधर्म-शिक्षक है।

पुत्र—सिरछत्र! आपका कहना योग्य है। धर्मके शिक्षककी सम्पूर्ण आवश्यकता है। आपने बार बार संसारके अनंत दुःखोके संबंधमें मुझसे कहा है। संसारसे पार पानेके लिये धर्म ही सहायभूत है। इसलिये धर्म कैसे गुरुसे प्राप्त करनेसे श्रेयस्कर हो सकता है, यह मुझसे कृपा करके कहिये।

११ सद्गुरुतत्त्व
(२)

पिता—पुत्र ! गुरु तीन प्रकारके कहे जाते हैं:—काष्ठस्वरूप, कागज़स्वरूप और पत्थरस्वरूप। काष्ठस्वरूप गुरु सर्वोत्तम हैं। क्योंकि संसाररूपी समुद्रको काष्ठस्वरूप गुरु ही पार होते हैं, और दूसरोंको पार कर सकते हैं। कागज़स्वरूप गुरु मध्यम है। ये ससार-समुद्रको स्वय नहीं पार कर सकते, परन्तु कुछ पुण्य उपार्जन कर सकते हैं। ये दूसरेको नहीं पार कर सकते। पत्थरस्वरूप गुरु स्वयं डूबते हैं, और दूसरोंको भी डुबाते हैं। काष्ठस्वरूप गुरु केवल जिनेश्वर भगवान्‌के ही शासनमे हैं। बाकी दोनों प्रकारके गुरु कर्मावरणकी वृद्धि करनेवाले हैं। हम सब उत्तम वस्तुको चाहते हैं, और उत्तमसे उत्तम वस्तुएं मिल भी सकती हैं। गुरु यदि उत्तम हो तो वह भव-समुद्रमें नाविकरूप होकर सद्धर्म-नावमें बैठाकर पार पहुँचा सकता है। तत्त्वज्ञानके भेद, स्वस्वरूपभेद, लोकालोक विचार, संसार-स्वरूप यह सब उत्तम गुरुके विना नहीं मिल सकता। अब तुम्हें प्रश्न करनेकी इच्छा होगी कि ऐसे गुरुके कौन कौनसे लक्षण हैं ? सो कहता हूँ। जो जिनेश्वर भगवान्‌की कही हुई आज्ञाको जानें, उसको यथार्थरूपसे पालें, और दूसरेको उपदेश करें, कचन और कामिनीके सर्वथा त्यागी हों, विशुद्ध आहार-जल लेते हों, बाईस प्रकारके परीपह सहन करते हों, क्षात, दात, निरारभी और जितेन्द्रिय हों, सैद्धान्तिक-ज्ञानमे निमग्न रहते हो, केवल धर्मके लिये ही शरीरका निर्वाह करते हो, निर्ग्रंथ-पंथको पालते हुए कायर न होते हों, सींक तक भी विना दिये न लेते हों, सब प्रकारके रात्रि भोजनके त्यागी हों, समभावी हों, और वीतरागतासे सत्योपदेशक हों, सक्षेपमे, उन्हें काष्ठस्वरूप सद्गुरु जानना चाहिये। पुत्र ! गुरुके आचार और ज्ञानके संबंधमे आगममें बहुत विवेकपूर्वक वर्णन किया गया है। ज्यों ज्यों तू आगे विचार करना सीखता जायगा, त्यो त्यों पीछे मै तुझे इन विशेष तत्त्वोंका उपदेश करता जाऊँगा।

पुत्र—पिताजी, आपने मुझे सक्षेपमे ही बहुत उपयोगी और कल्याणमय उपदेश दिया है। मैं इसका निरन्तर मनन करता रहूँगा।

१२ उत्तम गृहस्थ

ससारमे रहने पर भी उत्तम श्रावक गृहस्थाश्रमके द्वारा आत्म-कल्याणका साधन करते है, उनका गृहस्थाश्रम भी प्रशसनीय है।

ये उत्तम पुरुष सामायिक, क्षमापना, चोविहार प्रत्याख्यान इत्यादि यम नियमोंका सेवन करते हैं।

पर-पत्नीकी ओर मा-बहिनकी दृष्टि रखते हैं।

सत्पात्रको यथाशक्ति दान देते हैं।

शात, मधुर और कोमल भाषा बोलते हैं।

सत् शास्त्रोंका मनन करते हैं।

यथाशक्ति जीविकामें भी माया-कपट इत्यादि नहीं करते।

स्त्री, पुत्र, माता, पिता, मुनि और गुरु इन सबका यथायोग्य सन्मान करते है।

मा बापको धर्मका उपदेश देते हैं।

यत्नसे घरकी स्वच्छता, भोजन पकाना, शयन इत्यादि कराते हैं।
स्वयं विचक्षणतासे आचरण करते हुए स्त्री और पुत्रको विनयी और धर्मात्मा बनाते है।
कुटुम्बमे ऐक्यकी वृद्धि करते है।
आये हुए अतिथिका यथायोग्य सन्मान करते है।
याचकको क्षुधातुर नहीं रखते।
सत्पुरुषोका समागम, और उनका उपदेश धारण करते है।
निरंतर मर्यादासे और संतोषयुक्त रहते है।
यथाशक्ति घरमे शास्त्र-संचय रखते है।
अल्प आरंभसे व्यवहार चलाते है।

ऐसा गृहस्थावास उत्तम गतिका कारण होता है, ऐसा ज्ञानी लोग कहते हैं।

१३ जिनेश्वरकी भक्ति

(१)

जिज्ञासु—विचक्षण सत्य ! कोई शंकरकी, कोई ब्रह्माकी, कोई विष्णुकी, कोई सूर्यकी, कोई अग्निकी, कोई भवानीकी, कोई पैगम्बरकी और कोई क्राइस्टकी भक्ति करता है। ये लोग इनकी भक्ति करके क्या आशा रखते होंगे ?

सत्य—प्रिय जिज्ञासु ! ये भक्त लोग मोक्ष प्राप्त करनेकी परम आशासे इन देवोको भजते है।

जिज्ञासु—तो कहिये, क्या आपका मत है कि इससे वे उत्तम गति पा सकेगे ?

सत्य—इनकी भक्ति करनेसे वे मोक्ष पा सकेगे, ऐसा मै नहीं कह सकता। जिनको ये लोग परमेश्वर कहते हैं उन्होने कोई मोक्षको नहीं पाया, तो ये फिर उपासकको मोक्ष कहाँसे दे सकते हैं ? शंकर वगैरह कर्मोका क्षय नहीं कर सके, और वे दूषणोसे युक्त हैं, इस कारण वे पूजने योग्य नहीं।

जिज्ञासु—ये दूषण कौन कौनसे हैं, यह कहिये।

सत्य—अज्ञान, निद्रा, मिथ्यात्व, राग, द्वेष, अविरति, भय, शोक, जुगुप्सा, दानातराय, लाभातराय, वीर्यांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, काम, हास्य, रति और अरति इन अठारह दूषणोंमेसे यदि एक भी दूषण हो तो भी वे अपूज्य है। एक समर्थ पंडितने भी कहा है कि 'मै परमेश्वर हूँ' इस प्रकार मिथ्या रीतिसे मनानेवाले पुरुष स्वयं अपने आपको ठगते हैं। क्योकि पासमे स्त्री होनेसे वे विषयी ठहरते हैं, शस्त्र धारण किये हुए होनेसे वे द्वेषी ठहरते है, जपमाला धारण करनेसे उनके चित्तका व्यग्रपना सूचित होता है, 'मेरी शरणमे आ, मै सब पापोको हर लूँगा' ऐसा कहनेवाला अभिमानी और नास्तिक ठहरता है। ऐसी दशामे फिर दूसरेको वे कैसे पार कर सकते हैं ? तथा बहुतसे अवतार लेनेके कारण परमेश्वर कहलाते हैं, तो इससे सिद्ध होता है कि उन्हे किसी कर्मका भोगना अभी बाकी है।

जिज्ञासु—भाई ! तो पूज्य कौन है, और किसकी भक्ति करनी चाहिये, जिससे आत्मा स्वशक्तिका प्रकाश करे ?

सत्य—शुद्ध, सच्चिदानन्दस्वरूप, जीवन-सिद्ध भगवान्, तथा सर्वदूपण रहित, कर्ममल-हीन, मुक्त, वीतराग, सकलभयसे रहित, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, जिनेश्वर भगवानकी भक्तिसे आत्मशक्ति प्रकट होती है।

जिज्ञासु—क्या यह मानना ठीक है कि इनकी भक्ति करनेसे हमें ये मोक्ष देते हैं?

सत्य—भाई जिज्ञासु! वे अनत ज्ञानी भगवान् तो वीतरागी और निर्विकार हैं। उन्हें हमें स्तुति-निन्दाका कुछ भी फल देनेका प्रयोजन नहीं। हमारी आत्मा अज्ञानी और मोहांध होकर जिस कर्म-दलसे घिरी हुई है, उस कर्म-दलको दूर करनेके लिये अनुपम पुरुपार्थकी आवश्यकता है। सब कर्म-दलको क्षयकर अनतज्ञान, अनतदर्शन, अनंतचारित्र, अनतवीर्य और स्वस्वरूपमय हुए जिनेश्वरका स्वरूप आत्माकी निश्चयनयसे ऋद्धि होनेसे उस भगवानका स्मरण, चिंतवन, ध्यान, और भक्ति यह पुरुपार्थ प्रदान करता है; विकारसे आत्माको विरक्त करता है, तथा शॉति और निर्जरा देता हैं। जैसे तलवार हाथमे लेनेसे शौर्यवृत्ति और भॉंग पीनेसे नशा उत्पन्न होता है, वैसे ही इनके गुणोंका चिंतवन करनेसे आत्मा स्वस्वरूपानदकी श्रेणी चढ़ता जाता है। दर्पण देखनेसे जैसे मुखकी आकृतिका भान होता है, वैसे ही सिद्ध अथवा जिनेश्वरके स्वरूपके चिंतवनरूप दर्पणसे आत्म-स्वरूपका भान होता है।

१४ जिनेश्वरकी भक्ति

(२)

जिज्ञासु—आर्य सत्य! सिद्धस्वरूपको प्राप्त जिनेश्वर तो सभी पूज्य हैं, तो फिर नामसे भक्ति करनेकी क्या आवश्यकता है?

सत्य—हॉ, अवश्य है। अनंत सिद्धस्वरूपका ध्यान करते हुए शुद्धस्वरूपका विचार होना यह कार्य है। परन्तु उन्होंने जिसके द्वारा उस स्वरूपको प्राप्त किया वह कारण कौनसा है, इसका विचार करनेपर उनके उग्रतप, महान् वैराग्य, अनंत दया और महान् ध्यान इन सबका स्मरण होता है, तथा अपने अर्हत् तीर्थंकर-पदमें वे जिस नामसे विहार करते थे, उस नामसे उनके पवित्र आचार और पवित्र चरित्रका अतःकरणमें उदय होता है। यह उदय परिणाममें महा लाभदायक है। उदाहरणके लिये, महावीरका पवित्र नाम स्मरण करनेसे वे कौन थे, कब हुए, उन्होने किस प्रकारसे सिद्धि पायी इत्यादि चरित्रोंकी स्मृति होती है। इससे हमारे वैराग्य, विवेक इत्यादिका उदय होता है।

जिज्ञासु—परन्तु 'लोगस्स' में तो चौवीस जिनेश्वरके नामोंका सूचन किया है, इसका क्या हेतु है, यह मुझे समझाइये।

सत्य—इसका यही हेतु है, कि इस कालमें इस क्षेत्रमें होनेवाले चौबीस जिनेश्वरोंके नामोंके और उनके चरित्रोंके स्मरण करनेसे शुद्ध तत्त्वका लाभ होता है। वीतरागीका चरित्र वैराग्यका उपदेश करता है। अनंत चौबीसीमेंके अनतनाम सिद्धस्वरूपमें समग्र आ जाते है। वर्तमान कालके चौबीस तीर्थंकरोंके नाम इस कालमें लेनेसे कालकी स्थितिका बहुत सूक्ष्म ज्ञान भी स्मृतिमे आता है। जैसे इनके नाम इस कालमें लिये जाते है, वैसे ही चौबीसी चौबीसीका नाम काल और चौबीसी बदलनेपर लिये जाते हैं, इसलिये अमुक नाम लेनेमें कोई हेतु नहीं है। परन्तु उनके गुणोके पुरुपार्थकी स्मृतिके लिये वर्तमान चौबीसीकी स्मृति करना यह तत्त्व है। उनका जन्म, विहार, उपदेश यह सब नाम निक्षेपसे जाना जा सकता है। इससे

हमारी आत्मा प्रकाश पाती है। सर्प जैसे बांसरीके शब्दसे जागृत होता है, वैसे ही आत्मा अपनी सत्य ऋद्धि सुननेसे मोह-निद्रासे जागृत होती है।

जिज्ञासु—मुझे आपने जिनेश्वरकी भक्ति करनेके संबंधमें बहुत उत्तम कारण बताया। जिनेश्वरकी भक्ति कुछ फलदायक नहीं, आधुनिक शिक्षासे मेरी जो यह आस्था हो गई थी, वह नाश हो गई। जिनेश्वर भगवान्‌की भक्ति अवश्य करना चाहिये, यह मै मान्य रखता हूँ।

सत्य—जिनेश्वर भगवान्‌की भक्तिसे अनुपम लाभ है। इसके महान् कारण हैं। उनके परम उपकारके कारण भी उनकी भक्ति अवश्य करनी चाहिये। तथा उनके पुरुषार्थका स्मरण होनेसे भी शुभ वृत्तियोका उदय होता है। जैसे जैसे श्रीजिनके स्वरूपमे वृत्ति लय होती है, वैसे वैसे परम शाति प्रवाहित होती है। इस प्रकार जिनभक्तिके कारणोको यहाँ संक्षेपमे कहा है, उन्हे आत्मार्थियोको विशेषरूपसे मनन करना चाहिये।

१९ भक्तिका उपदेश

जिसकी शुभ शीतलतामय छाया है, जिसमे मनवाछित फलोकी पक्ति लगी है, ऐसी कल्पवृक्ष-रूपी जिनभक्तिका आश्रय लो, और भगवान्‌की भक्ति करके भवके अंतको प्राप्त करो ॥ १ ॥

इससे आनन्दमय अपना आत्मस्वरूप प्रगट होता है, और मनका समस्त संताप मिट जाता है, तथा विना दामोके ही कर्मोंकी अत्यन्त निर्जरा होती है, इसलिये भगवान्‌की भक्ति करके भवके अंतको प्राप्त करो ॥ २ ॥

इससे सदा समभावी परिणामोकी प्राप्ति होगी, अत्यंत जड़ और अधोगतिमे लेजानेवाले जन्मका नाश होगा, तथा यह शुभ मंगलमय है, इसकी पूर्णरूपसे इच्छा करो, और भगवान्‌की भक्ति करके भवके अंतको प्राप्त करो ॥ ३ ॥

शुभ भावोके द्वारा मनको शुद्ध करो, नवकार महामंत्रका स्मरण करो, इसके समान और दूसरी कोई वस्तु नही है, इसलिये भगवान्‌की भक्ति करके भवके अंतको प्राप्त करो ॥ ४ ॥

इससे सम्पूर्णरूपसे राग-कथाका क्षय करोगे, और यथार्थ रूपसे शुभतत्त्वोको धारण करोगे। **रा**जचन्द्र कहते हैं कि भगवद्भक्तिसे अनंत प्रपंचको दहन करो, और भगवान्‌की भक्तिसे भवके अंतको प्राप्त करो ॥ ५ ॥

भक्तिनो उपदेश

तोटक छंद

शुभ शीतलतामय छाय रही, मनवाछित ज्या फलपाक्ति कही,
जिनभक्ति ग्रहो तरुकल्प अहो, भजिने भगवत भवत लहो ॥ १ ॥
निज आत्मस्वरूप मुदा प्रगटे, मन ताप उताप तमाम मटे,
अति निर्जरता वण दाम ग्रहो, भजिने भगवत भवंत लहो ॥ २ ॥
समभावि सदा परिणाम थशे, जडमद अधोगति जन्म जशे;
शुभ मगल आ परिपूर्ण चहो, भजिने भगवंत भवत लहो ॥ ३ ॥
शुभ भाववडे मन शुद्ध करो, नवकार महापदने समरो,
नहि एह समान सुमंत्र कहो, भजिने भगवत भवंत लहो ॥ ४ ॥
करशो क्षय केवल राग-कथा धरशो शुभ तत्त्वस्वरूप यथा,
नृपचन्द्र प्रपंच अनंत दहो, भजिने भगवत भवंत लहो ॥ ५ ॥

१६ वास्तविक महत्ता

बहुतसे लोग लक्ष्मीसे महत्ता मानते हैं, बहुतसे महान् कुटुम्बसे महत्ता मानते हैं, बहुतसे पुत्रसे महत्ता मानते है, तथा बहुतसे अधिकारसे महत्ता मानते हैं। परन्तु यह उनका मानना विवेकसे विचार करनेपर मिथ्या सिद्ध होता है। ये लोग जिसमे महत्ता ठहराते हैं उसमे महत्ता नहीं, परन्तु लघुता है। लक्ष्मीसे ससारमे खान, पान, मान, अनुचरोंपर आज्ञा और वैभव ये सब मिलते है, और यह महत्ता है, ऐसा तुम मानते होगे। परन्तु इतनेसे इसकी महत्ता नहीं माननी चाहिये। लक्ष्मी अनेक पापोंसे पैदा होती है। यह आनेपर पीछे अभिमान, बेहोशी, और मूढ़ता पैदा करती है। कुटुम्ब-समुदायकी महत्ता पानेके लिये उसका पालन-पोषण करना पड़ता है। उससे पाप और दुःख सहन करना पडता है। हमे उपाधिसे पाप करके इसका उदर भरना पड़ता है। पुत्रसे कोई शाश्वत नाम नहीं रहता। इसके लिये भी अनेक प्रकारके पाप और उपाधि सहनी पड़ती हैं। तो भी इससे अपना क्या मंगल होता है? अधिकारसे परतंत्रता और अमलमद आता है, और इससे जुल्म, अनीति, रिश्वत और अन्याय करने पडते है, अथवा होते हैं। फिर कहो इसमें क्या महत्ता है? केवल पापजन्य कर्मकी। पापी कर्मसे आत्माकी नीच गति होती है। जहाँ नीच गति है वहाँ महत्ता नहीं, परन्तु लघुता है।

आत्माकी महत्ता तो सत्य वचन, दया, क्षमा, परोपकार, और समतामें है। लक्ष्मी इत्यादि तो कर्म-महत्ता है। ऐसा होनेपर भी चतुर पुरुष लक्ष्मीका दान देते हैं, उत्तम विद्याशालायें स्थापित करके परदुःख-भंजन करते हैं। एक विवाहित स्त्रीमे ही सम्पूर्ण वृत्तिको रोककर परस्त्रीकी तरफ पुत्री-भावसे देखते है। कुटुम्बके द्वारा किसी समुदायका हित करते हैं। पुत्र होनेसे उसको संसारका भार देकर स्वयं धर्म प्रवेश -मार्गमें करते हैं। अधिकारके द्वारा विचक्षणतासे आचरण कर राजा और प्रजा दोनोंका हित करके धर्मनीतिका प्रकाश करते हैं। ऐसा करनेसे बहुतसी महत्तायें प्राप्त होती हैं सही, तो भी ये महत्तायें निश्चित नहीं है। मरणका भय सिरपर खड़ा है, और धारणायें धरी रह जाती है। संसारका कुछ मोह ही ऐसा है कि जिससे किये हुए संकल्प अथवा विवेक हृदयमेसे निकल जाते हैं। इससे हमे यह निःसशय समझना चाहिये, कि सत्यवचन, दया, क्षमा, ब्रह्मचर्य और समता जैसी आत्ममहत्ता और कहींपर भी नहीं है। शुद्ध पाँच महाव्रतधारी भिक्षुकने जो ऋद्धि और महत्ता प्राप्त की है, वह ब्रह्मदत्त जैसे चक्रवर्तीने भी लक्ष्मी, कुटुम्ब, पुत्र अथवा अधिकारसे नहीं प्राप्त की, ऐसी मेरी मान्यता है।

१७ वाहुवल

वाहुवल अर्थात् " अपनी भुजाका बल "—यह अर्थ यहाँ नहीं करना चाहिये। क्योंकि वाहुवल नामके महापुरुषका यह एक छोटासा अद्भुत चरित्र है।

सर्वसंगका परित्याग करके भगवान् ऋषभदेवजी भरत और वाहुवल नामके अपने दो पुत्रोंको राज सौंपकर विहार करते थे। उस समय भरतेश्वर चक्रवर्ती हुए। आयुधशालामें चक्रकी उत्पत्ति होनेके पश्चात् प्रत्येक राजधानीपर उन्होंने अपनी आम्नाय स्थापित की, और छह खंडकी प्रभुता प्राप्त की। अकेले वाहुवलने ही इस प्रभुताको स्वीकार नहीं की। इससे परिणाममें भरतेश्वर और वाहुवलमें युद्ध हुआ। बहुत समयतक भरतेश्वर और वाहुवल इन दोनोंमेसे एक भी नहीं हटा। तब क्रोधावेशमें भरतने अन्तमें वाहुवलपर चक्र छोड़ा। एक वीर्यसे उत्पन्न हुए भाईपर चक्र प्रभाव नहीं कर सकता।

इस नियमसे वह चक्र फिर कर पछि भरतेश्वरके हाथमे आया। भरतके चक्र छोड़नेसे बाहुबलको बहुत क्रोध आया। उन्होने महाबलवत्तर मुष्टि चलाई। तत्काल ही वहाॅ उनकी भावनाका स्वरूप बदला। उन्होंने विचार किया कि मै यह बहुत निंदनीय काम कर रहा हूॅ, इसका परिणाम कितना दुःखदायक है! भले ही भरतेश्वर राज्य भोगे। व्यर्थ ही परस्परका नाश क्यो करना चाहिये? यह मुष्टि मारनी योग्य नही है, परन्तु उठाई तो अब पीछे हटाना भी योग्य नहीं। यह विचारकर उन्होने पंचमुष्टि-केशलोच किया, और वहांसे मुनि-भावसे चल पड़े। उन्होने जहाॅ भगवान् आदीश्वर अठानवें दीक्षित पुत्रोसे और आर्य, आर्या सहित विहार करते थे, वहा जानेकी इच्छा की। परन्तु मनमे मान आया कि यदि वहा मैं जाऊँगा तो अपनेसे छोटे अठानवे भाईयोको वंदन करना पड़ेगा। इसलिये वहाॅ तो जाना योग्य नहीं। इस प्रकार मानवृत्तिसे वनमे वे एकाग्र ध्यानमे अवस्थित हो गये। धीरे धीरे बारह मास बीत गये। महातपसे बाहुबलकी काया अस्थिपंजरावशेष रह गई। वे सूखे हुए वृक्ष जैसे दीखने लगे, परन्तु जबतक मानका अंकुर उनके अंतःकरणसे नहीं हटा, तबतक उन्होने सिद्धि नही पायी। ब्राह्मी और सुंदरीने आकर उनको उपदेश किया:—"आर्यवीर! अब मदोन्मत्त हाथीपरसे उतरो, इससे तो बहुत सहन करना पड़ा," उनके इन वचनोसे बाहुबल विचारमें पड़े। विचारते विचारते उन्हे भान हुआ कि "सत्य है, मै मानरूपी मदोन्मत्त हाथीपरसे अभी कहाॅ उतरा हूॅ? अब इसपरसे उतरना ही मगलकारक है।" ऐसा विचारकर उन्होने वंदन करनेके लिये पैर उठाया, कि उन्होने अनुपम दिव्य कैवल्य कमलाको पाया।

वाचक! देखो, मान यह कैसी दुरित वस्तु है।

१८ चारगति

जीव सातावेदनीय और असातावेदनीयका वेदन करता हुआ शुभाशुभ कर्मका फल भोगनेके लिये इस संसार वनमे चार गतियोमे भटका करता है। तो इन चार गतियोंको अवश्य जानना चाहिये।

१ नरकगति—महाआरभ, मदिरापान, मासभक्षण इत्यादि तीव्र हिंसाके करनेवाले जीव अघोर नरकमे पड़ते है। वहाॅ लेश भी साता, विश्राम अथवा सुख नही। वहाॅ महा अंधकार व्याप्त है, अंग-छेदन सहन करना पड़ता है, अग्निमे जलना पड़ता है, और छुरेकी धार जैसा जल पीना पडता है। वहाॅ अनत दुःखके द्वारा प्राणियोको संक्लेश, असाता और बिलबिलाहट सहन करने पड़ते है। ऐसे दुःखोको केवलज्ञानी भी नहीं कह सकते। अहो! इन दुःखोको अनंत बार इस आत्माने भोगा है।

२ तिर्यचगति—छल, झूठ, प्रपच इत्यादिकके कारण जीव सिंह, बाघ, हाथी, मृग, गाय, भैंस, बैल इत्यादि तिर्यचके शरीरको धारण करता है। इस तिर्यच गतिमे भूख, प्यास, ताप, वध, बंधन, ताड़न, भारवहन इत्यादि दुःखोको सहन करता है।

३ मनुष्यगति—खाद्य, अखाद्यके विषयमे विवेक रहित होता है, लज्जाहीन होकर माता और पुत्रीके साथ काम-गमन करनेमे जिसे पापापापका भान नही, जो निरंतर मासभक्षण, चोरी, परस्त्री-गमन वगैरह महा पातक किया करता है, यह तो मानो अनार्य देशका अनार्य मनुष्य है। आर्य देशमे भी क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य आदि मतिहीन, दरिद्री, अज्ञान और रोगसे पीड़ित मनुष्य है और मान, अपमान इत्यादि अनेक प्रकारके दुःख भोग रहे हैं।

देवगति—परस्पर वैर, ईर्ष्या, क्लेश, शोक, मत्सर, काम, मद, क्षुधा, आदिसे देवलोग भी आयु व्यतीत कर रहे है। यह देवगति है।

इस प्रकार चारों गतियोंका स्वरूप सामान्य रूपसे कहा। इन चारों गतियोंमे मनुष्यगति सबसे श्रेष्ठ और दुर्लभ है, आत्माका परमहित—मोक्ष इस गतिसे प्राप्त होता है। इस मनुष्यगतिमें भी बहुतसे दु.ख और आत्मकल्याण करनेमे अतराय आते हैं।

एक तरुण सुकुमारको रोमरोममे अत्यंत तप्त लाल सूए चुभानेसे जो असह्य वेदना होती है उससे आठगुनी वेदना जीव गर्भस्थानमें रहते हुए प्राप्त करता है। यह जीव लगभग नव महीना मल, मूत्र, खून, पीप आदिमें दिनरात मूर्च्छागत स्थितिमे वेदना भोग भोगकर जन्म पाता है। गर्भस्थानकी वेदनासे अनंतगुनी वेदना जन्मके समय होती है। तत्पश्चात् बाल्यावस्था प्राप्त होती है। यह अवस्था मल मूत्र, धूल और नग्नावस्थामें अनसमझीसे रो भटककर पूर्ण होती है। इसके बाद युवावस्था आती है। इस समय धन उपार्जन करनेके लिये नाना प्रकारके पापोमे पड़ना पड़ता है। जहाँसे उत्पन्न हुआ है, वहींपर अर्थात् विषय-विकारमे वृत्ति जाती है। उन्माद, आलस्य, अभिमान, निंद्य-दृष्टि, संयोग, वियोग, इस प्रकार घटमालमे युवा वय चली जाती है। फिर वृद्धावस्था आ जाती है। शरीर काँपने लगता है, मुखसे लार बहने लगती है, त्वचापर सिकुडन पड़ जाती है; सूँघने, सुनने, और देखनेकी शक्तियाँ बिलकुल मंद पड़ जाती है; केश धवल होकर खिरने लगते हैं; चलनेकी शक्ति नहीं रहती; हाथमें लकड़ी लेकर लड़खडाते हुए चलना पड़ता है; अथवा जीवन पर्यंत खाटपर ही पड़ा रहना पड़ता है; श्वास, खासी, इत्यादि रोग आकर घेर लेते हैं; और थोड़े कालमें काल आकर कवलित कर जाता है। इस देहमेंसे जीव चल निकलता है। कायाका होना न होनेके समान हो जाता है। मरण समयमें भी कितनी अधिक वेदना होती है? चारों गतियोमें श्रेष्ठ मनुष्य देहमें भी कितने अधिक दु·ख भरे हुए है। ऐसा होते हुए भी ऊपर कहे अनुसार काल अनुक्रमसे आता हो यह बात भी नहीं। वह चाहे जब आकर ले जाता है। इसीलिये विचक्षण पुरुष प्रमादके बिना आत्मकल्याणकी आराधना करते हैं।

१९ संसारकी चार उपमायें

(१)

ससारको तत्त्वज्ञानी एक महासमुद्रकी भी उपमा देते है। संसार रूपी समुद्र अनंत और अपार है। अहो प्राणियों! इससे पार होनेके लिये पुरुषार्थका उपयोग करो! उपयोग करो! इस प्रकार उनके अनेक स्थानोपर वचन हैं। संसारको समुद्रकी उपमा उचित भी है। समुद्रमें जैसे लहरे उठा करती हैं, वैसे ही संसारमे विषयरूपी अनेक लहरें उठती हैं। जैसे जल ऊपरसे सपाट दिखाई देता है, वैसे ही संसार भी सरल दीख पड़ता है। जैसे समुद्र कहीं बहुत गहरा है, और कहीं भँवरोंमें डाल देता है, वैसे ही संसार काम विषय प्रपंच आदिमें बहुत गहरा है और वह मोहरूपी भँवरोंमें डाल देता हैं। जैसे थोड़ा जल रहते हुए भी समुद्रमे खड़े रहनेसे कीचड़में धँस जाते हैं, वैसे ही संसारके लेशभर प्रसंगमें भी वह तृष्णारूपी कीचड़में फँसा देता है। जैसे समुद्र नाना प्रकारकी चट्टानों और तूफ़ानोंसे नाव अथवा जहाजको जोखम पहुँचाता है, वैसे ही संसार स्त्रीरूपी चट्टानें और कामरूपी तूफ़ानसे आत्माको जोखम पहुँचाता है। जैसे समुद्रका अगाध जल शीतल दिखाई देनेपर भी उसमें बड़वानल अग्नि वास करती है, वैसे ही संसारमें माया-

रूपी अग्नि जला ही करती है। जैसे समुद्र चौमासेमें अधिक जल पाकर गहरा उतर जाता है, वैसे ही संसार पापरूपी जल पाकर गहरा हो जाता है, अर्थात् वह मज़बूत जड़ जमाता जाता है।

२ संसारको दूसरी उपमा अग्निकी लागू होती है। जैसे अग्निसे महातापकी उत्पत्ति होती है, वैसे ही ससारसे भी त्रिविध तापकी उत्पत्ति होती है। जैसे अग्निसे जला हुआ जीव महा विलविलाहट करता है, वैसे ही संसारसे जला हुआ जीव अनंत दुःखरूप नरकसे असह्य विलविलाहट करता है। जैसे अग्नि सब वस्तुओंको भक्षण कर जाती है, वैसे ही अपने मुखमे पड़े हुएको संसार भक्षण कर जाता है। जिस प्रकार अग्निमे ज्यो ज्यो घी और ईधन होमे जाते है, त्यो त्यो वह वृद्धि पाती है; उसी प्रकार संसाररूप अग्निमे तीव्र मोहरूप घी और विषयरूप ईधनके होम करनेसे वह वृद्धि पाती है।

३ ससारको तीसरी उपमा अंधकारकी लागू होती है। जैसे अंधकारमे रस्सी सर्पका भान कराती है, वैसे ही संसार सत्यको असत्यरूप बताता है। जैसे अंधकारमे प्राणी इधर उधर भटककर विपत्ति भोगते है, वैसे ही ससारमे बेसुध होकर अनंत आत्माये चतुर्गतिमें इधर उधर भटकती फिरती है। जैसे अंधकारमे कॉच और हीरेका ज्ञान नहीं होता, वैसे ही संसाररूपी अधकारमे विवेक और अविवेकका ज्ञान नही होता। जैसे अंधकारमे प्राणी आँखोके होनेपर भी अधे बन जाते है, वैसे ही शक्तिके होनेपर भी संसारमे प्राणी मोहाध बन जाते है। जैसे अंधकारमे उल्लू आदिका उपद्रव बढ़ जाता है, वैसे ही ससारमे लोभ, माया आदिका उपद्रव बढ़ जाता है। इस तरह अनेक प्रकारसे देखनेपर संसार अधकार-रूप ही मालूम होता है।

२० संसारकी चार उपमायें

(२)

४ संसारको चौथी उपमा शकट-चक्र अर्थात् गाड़ीके पहियोकी लागू होती है। जैसे चलता हुआ शकट-चक्र फिरता रहता है, वैसे ही प्रवेश होनेपर संसार फिरता रहता है। जैसे शकट-चक्र धुरेके विना नही चल सकता, वैसे ही संसार मिथ्यात्वरूपी धुरेके विना नहीं चल सकता। जैसे शकट-चक्र आरोसे टिका रहता है, वैसे ही संसार-शकट प्रमाद आदि आरोसे टिका हुआ है। इस तरह अनेक प्रकारसे शकट-चक्रकी उपमा भी संसारको दी जा सकती है।

इसप्रकार संसारको जितनी अधो उपमाये दी जा सके उतनी ही थोड़ी है। मुख्य रूपसे ये चार उपमाये हमने जान ली, अब इसमेसे हमें तत्त्व लेना योग्य है:—

१ जैसे सागर मज़बूत नाव और जानकार नाविकसे तैरकर पार किया जाता है, वैसे ही सद्धर्मरूपी नाव और सद्गुरुरूपी नाविकसे संसार-सागर पार किया जा सकता है। जैसे सागरमे विचक्षण पुरुषोने निर्विघ्न रास्तेको ढूँढ़कर निकाला है, वैसे ही जिनेश्वर भगवान्ने तत्त्वज्ञानरूप निर्विघ्न उत्तम रास्ता बनाया है।

२ जैसे अग्नि सबको भक्षण कर जाती है, परन्तु पानीसे बुझ जाती है, वैसे ही वैराग्य-जलसे संसार-अग्नि बुझ सकती है।

३ जैसे अंधकारमे दीपक ले जानेसे प्रकाश होनेसे हम पदार्थोंको देख सकते है, वैसे ही तत्त्वज्ञानरूपी न बुझनेवाला दीपक संसाररूपी अंधकारमे प्रकाश करके सत्य वस्तुको बताता है।

४ जैसे शकट-चक्र बैलके विना नहीं चल सकता, वैसे ही संसार-चक्र राग और द्वेषके विना नहीं चल सकता।

इस प्रकार इस संसार-रोगके निवारणके प्रतीकारको उपमाद्वारा अनुपान आदिके साथ कहा है। इसे आत्महितैषियोंको निरंतर मनन करना और दूसरोंको उपदेश देना चाहिये।

२१ बारह भावना

वैराग्य और ऐसे ही अन्य आत्म-हितैषी विषयोंकी सुदृढ़ता होनेके लिये तत्त्वज्ञानियोंने बारह भावनाओंका चिंतवन करनेके लिये कहा है।

१ शरीर, वैभव, लक्ष्मी, कुटुंब, परिवार आदि सब विनाशी है। जीवका मूलधर्म अविनाशी है, ऐसे चिंतवन करना पहली 'अनित्यभावना' है।

२ संसारमें मरणके समय जीवको शरण रखनेवाला कोई नहीं, केवल एक शुभ धर्मकी शरण ही सत्य है, ऐसा चिंतवन करना दूसरी 'अशरणभावना' है।

३ "इस आत्माने संसार-समुद्रमें पर्यटन करते हुए सम्पूर्ण भवोंको भोगा है। इस संसाररूपी जंजीरसे मैं कब छूटूँगा। यह संसार मेरा नहीं, मैं मोक्षमयी हूँ," ऐसा चिंतवन करना तीसरी 'संसारभावना' है।

४ "यह मेरा आत्मा अकेला है, यह अकेला आया है, अकेला ही जायगा, और अपने किये हुए कर्मोंको अकेला ही भोगेगा," ऐसा चिंतवन करना चौथी 'एकत्वभावना' है।

५ इस संसारमें कोई किसीका नहीं, ऐसा चिंतवन करना पाँचवी 'अन्यत्वभावना' है।

६ "यह शरीर अपवित्र है, मल-मूत्रकी खान है, रोग और जराके रहनेका धाम है, इस शरीरसे मैं न्यारा हूँ," ऐसा चिंतवन करना छट्ठी 'अशुचिभावना' है।

७ राग, द्वेष, अज्ञान, मिथ्यात्व इत्यादि सब आश्रवके कारण है, ऐसा चिंतवन करना सातवीं 'आश्रवभावना' है।

८ जीव, ज्ञान और ध्यानमें प्रवृत्त होकर नये कर्मोंको नहीं बाँधता, ऐसा चिंतवन करना आठवीं 'संवरभावना' है।

९ ज्ञानसहित क्रिया करना निर्जराका कारण है, ऐसा चिंतवन करना नौवीं 'निर्जराभावना' है।

१० लोकके स्वरूपकी उत्पत्ति, स्थिति, और विनाशका स्वरूप विचारना, वह दसवीं 'लोकस्वरूपभावना' है।

११ संसारमें भटकते हुए आत्माको सम्यग्ज्ञानकी प्रसादी प्राप्त होना दुर्लभ है, अथवा सम्यग्ज्ञान प्राप्त भी हुआ तो चारित्र—सर्व विरतिपरिणामरूप धर्म—का पाना दुर्लभ है, ऐसा चिंतवन करना ग्यारहवीं 'बोधिदुर्लभभावना' है।

१२ धर्मके उपदेशक तथा शुद्ध शास्त्रके बोधक गुरु, और उनके उपदेशका श्रवण मिलना दुर्लभ है, ऐसा चिंतवन करना बारहवीं 'धर्मदुर्लभभावना' है।

इन बारह भावनाओंको मननपूर्वक निरंतर विचारनेसे सत्पुरुषोंने उत्तम पदको पाया है, पाते हैं, और पायेंगे।

२२ कामदेव श्रावक

महावीर भगवान्‌के समयमे बारह व्रतोको विमल भावसे धारण करनेवाला, विवेकी और निर्ग्रंथवचनानुरक्त कामदेव नामका एक श्रावक, उनका शिष्य था। एक बार सुधर्माकी सभामे इंद्रने कामदेवकी धर्ममे अचलताकी प्रशंसा की। इतनेमे वहॉ जो एक तुच्छ बुद्धिवाला देव बैठा हुआ था, उसने कामदेवकी इस सुदृढताके प्रति अविश्वास प्रगट किया, और कहा कि जबतक परीषह नही पड़ती, तभी तक सभी सहनशील और धर्ममे दृढ़ दीखते है। मै अपनी इस बातको कामदेवको चलायमान करके सत्य करके दिखा सकता हूँ। धर्मदृढ कामदेव उस समय कायोत्सर्गमे लीन था। प्रथम ही देवताने विक्रियासे हाथीका रूप धारण किया, और कामदेवको खूब ही खूँदा, परन्तु कामदेव अचल रहा। अब देवताने मूसल जैसा अंग बना करके काले वर्णका सर्प होकर भयंकर फुँकार मारी, तो भी कामदेव कायोत्सर्गसे लेशमात्र भी चलायमान नही हुआ। तत्पश्चात् देवताने अट्टहास्य करते हुए राक्षसका शरीर धारण करके अनेक प्रकारके उपसर्ग किये, तो भी कामदेव कायोत्सर्गसे न डिगा। उसने सिंह वगैरहके अनेक भयंकर रूप बनाये, तो भी कामदेवके कायोत्सर्गमे लेशभर भी हीनता नहीं आयी। इस प्रकार वह देवता रातके चारो पहर उपद्रव करता रहा, परन्तु वह अपनी धारणामे सफल नही हुआ। इसके बाद उस देवने अवधिज्ञानके उपयोगसे देखा, तो कामदेवको मेरुके शिखरकी तरह अडोल पाया। वह देवता कामदेवकी अद्भुत निश्चलता जानकर उसको विनय भावसे प्रणाम करके अपने दोपोकी क्षमा मॉगकर अपने स्थानको चला गया।

कामदेव श्रावककी धर्म-दृढ़ता यह शिक्षा देती है, कि सत्य धर्म और सत्य प्रतिज्ञामें परम दृढ रहना चाहिये, और कायोत्सर्ग आदिको जैसे बने तैसे एकाग्र चित्तसे और सुदृढ़तासे निर्दोष करना चाहिये। चल-विचल भावसे किया हुआ कायोत्सर्ग आदि बहुत दोष युक्त होता है। पाई जितने द्रव्यके लाभके लिये धर्मकी सौगंध खानेवालोकी धर्ममें दृढ़ता कहॉसे रह सकती है? और रह सकती हो, तो कैसी रहेगी, यह विचारते हुए खेद होता है।

२३ सत्य

सामान्य रूपसे यह कहा भी जाता है, कि सत्य इस जगत्‌का आधार है, अथवा यह जगत् सत्यके आधारपर ठहरा हुआ है। इस कथनसे यह शिक्षा मिलती है, कि धर्म, नीति, राज और व्यवहार ये सब सत्यके द्वारा चल रहे है, और यदि ये चारों न हो तो जगत्‌का रूप कितना भयंकर हो जाय? इसलिये सत्य जगत्‌का आधार है, यह कहना कोई अतिशयोक्ति जैसा अथवा न मानने योग्य नही।

वसुराजाका एक शब्दका असत्य बोलना कितना दुःखदायक हुआ था, इस प्रसगपर विचार करनेके लिये हम यहॉ कुछ कहेंगे।

राजा वसु, नारद और पर्वत इन तीनोने एक गुरुके पास विद्या पढी थी। पर्वत अध्यापकका पुत्र था। अध्यापकका मरण हुआ। इसलिये पर्वत अपनी मॉ सहित वसु राजाके दरबारमे आकर रहने लगा। एक रातको पर्वतकी मॉ पासमें बैठी थी, तथा पर्वत और नारद शास्त्राभ्यास कर रहे थे। उस समय पर्वतने “अजैर्यष्टव्यं” ऐसा एक वाक्य बोला। नारदने पर्वतसे पूछा, “अज किसे कहते है?”

पर्वतने कहा, " अज अर्थात् बकरा "। नारद बोला, " हम तीनों जने जिस समय तेरे पिताके पास पढ़ते थे, उस समय तेरे पिताने तो 'अज' का अर्थ तीन वर्षके 'व्रीहि' बताया था, अब तू विपरीत अर्थ क्यों करता है? इस प्रकार परस्पर वचनोंका विवाद बढ़ा । तब पर्वतने कहा, " जो हमें वसुराजा कह दे, वह ठीक है।" इस बातको नारदने स्वीकार की, और जो जीते, उसके लिये एक शर्त लगाई। पर्वतकी माँ जो पासमें ही बैठी थी, उसने यह सब सुना। 'अज' का अर्थ 'व्रीहि' उसे भी याद था। परन्तु शर्तमें उसका पुत्र हारेगा, इस भयसे पर्वतकी माँ रातमें राजाके पास गई और पूँछा,—" राजन्! 'अज' का क्या अर्थ है?" वसुराजाने सवंधपूर्वक कहा, " अजका अर्थ व्रीहि होता है"। तब पर्वतकी माँने राजासे कहा, " मेरे पुत्रने अजका अर्थ 'बकरा' कह दिया है, इस-लिये आपको उसका पक्ष लेना पड़ेगा। वे लोग आपसे पूँछनेके लिये आवेंगे।" वसुराजा बोला, " मैं असत्य कैसे कहूँगा, मुझसे यह न हो सकेगा।" पर्वतकी माँने कहा, " परन्तु यदि आप मेरे पुत्रका पक्ष न लेंगे, तो मैं आपको हत्याका पाप दूँगी।" राजा विचारमें पड गया, कि सत्यके कारण ही मैं मणिमय सिंहासनपर अधर बैठा हूँ, लोक-समुदायका न्याय करता हूँ, और लोग भी यही जानते हैं, कि राजा सत्य गुणसे सिंहासनपर अंतरीक्ष बैठता है। अब क्या करना चाहिये? यदि पर्वतका पक्ष न लूँ, तो ब्राह्मणी मरती है, और यह मेरे गुरुकी स्त्री है। अन्तमें लाचार होकर राजाने ब्राह्मणीसे कहा, " तुम बेखटके जाओ, मैं पर्वतका पक्ष लूँगा।" इस प्रकार निश्चय कराकर पर्वतकी माँ घर आयी। प्रभातमें नारद, पर्वत और उसकी माँ विवाद करते हुए राजाके पास आये। राजा अनजान होकर पूँछने लगा कि क्या बात है, पर्वत? पर्वतने कहा, " राजाधिराज! अजका क्या अर्थ है, सो कहिये।" राजाने नारदसे पूछा, " तुम इसका क्या अर्थ करते हो?" नारदने कहा, 'अज' का अर्थ तीन वर्षका 'व्रीहि' होता है। तुम्हें क्या याद नहीं आता? वसुराजा बोला, 'अज' का अर्थ 'बकरा' है 'व्रीहि' नहीं। इतना कहते ही देवताने सिंहासनसे उछालकर वसुको नीचे गिरा दिया। वसु काल-परिणाम पाकर नरकमें गया।

इसके ऊपरसे यह मुख्य शिक्षा मिलती है, कि सामान्य मनुष्योंको सत्य, और राजाको न्यायमें अपक्षपात और सत्य दोनों ग्रहण करने योग्य है।

भगवान्ने जो पाँच महाव्रत कहे हैं, उनमेंसे प्रथम महाव्रतकी रक्षाके लिये बाकीके चार व्रत वाड़रूप हैं, और उनमें भी पहली वाड सत्य महाव्रत है। इस सत्यके अनेक भेदोंको सिद्धांतसे श्रवण करना आवश्यक है।

२४ सत्संग

सत्संग सब सुखोंका मूल है। सत्संगका लाभ मिलते ही उसके प्रभावसे वांछित सिद्धि हो ही जाती है। अधिकसे अधिक भी पवित्र होनेके लिये सत्संग श्रेष्ठ साधन है। सत्संगकी एक घड़ी जितना लाभ देती है, उतना कुसंगके करोड़ों वर्षभी लाभ नहीं दे सकते। वे अधोगतिमय महापाप कराते हैं, और आत्माको मलिन करते हैं। सत्संगका सामान्य अर्थ उत्तम लोगोंका सहवास करना होता है। जैसे जहाँ अच्छी हवा नहीं आती, वहाँ रोगकी वृद्धि होती है, वैसे ही जहाँ सत्संग नहीं, वहाँ आत्म-रोग बढ़ता

है। जैसे दुर्गंधसे घबड़ाकर हम नाकमे वस्त्र लगा लेते है, वैसे ही कुसगका सहवास बंद करना आवश्यक है। संसार भी एक प्रकारका संग है, और वह अनंत कुसगरूप तथा दुःखदायक होनेसे त्यागने योग्य है। चाहे जिस तरहका सहवास हो परन्तु जिससे आत्म-सिद्धि न हो, वह सत्संग नही। जो आत्मापर सत्यका रग चढावे, वह संत्सग है, और जो मोक्षका मार्ग बतावे वह मैत्री है। उत्तम शास्त्रमे निरंतर एकाग्र रहना भी सत्सग है। सत्पुरुषोका समागम भी सत्सग है। जैसे मलिन वस्त्र साबुन तथा जलसे साफ हो जाता है, वैसे ही शास्त्र-बोध और सत्पुरुषोका समागम आत्माकी मलिनताको हटाकर शुद्धता प्रदान करते हैं। जिसके साथ हमेशा परिचय रहकर राग, रग, गान, तान और स्वादिष्ट भोजन सेवन किये जाते हों, वह तुम्हे चाहे कितना भी प्रिय हो, तो भी निश्चय मानो कि वह सत्संग नही, परन्तु कुसंग है। सत्सगसे प्राप्त हुआ एक वचन भी अमूल्य लाभ देता है। तत्त्वज्ञानियोका यह मुख्य उपदेश है, कि सर्व संगका परित्याग करके अतरगमे रहनेवाले सब विकारोसे विरक्त रहकर एकातका सेवन करो। उसमे सत्संगका माहात्म्य आ जाता है। सम्पूर्ण एकांत तो ध्यानमे रहना अथवा योगाभ्यासमे रहना है। परन्तु जिसमेसे एक ही प्रकारकी वृत्तिका प्रवाह निकलता हो, ऐसा समस्वभावीका समागम, भावसे एक ही रूप होनेसे बहुत मनुष्योके होने पर भी, और परस्परका सहवास होनेपर भी, एकान्तरूप ही है; और ऐसा एकान्त तो मात्र सत-समागममे ही है। कदाचित् कोई ऐसा सोचेगा, कि जहाँ विषयीमडल एकत्रित होता है, वहाँ समभाव और एक सरखी वृत्ति होनेसे उसे भी एकात क्यो नहीं कहना चाहिये? इसका समाधान तत्काल हो जाता है, कि ये लोग एक स्वभावके नहीं होते। उनमे परस्पर स्वार्थबुद्धि और मायाका अनुसंधान होता है, और जहाँ इन दो कारणोसे समागम होता है, वहाँ एक-स्वभाव अथवा निर्दोषता नही होती। निर्दोष और समस्वभावीका समागम तो परस्पर शान्त मुनीश्वरोका है, तथा वह धर्मध्यानसे प्रशस्त अल्पारभी पुरुषोका भी कुछ अशमे है। जहाँ केवल स्वार्थ और माया-कपट ही रहता है, वहा समस्वभावता नहीं, और वह सत्संग भी नहीं। सत्संगसे जो सुख और आनन्द मिलता है, वह अत्यन्त स्तुतिपात्र है। जहाँ शास्त्रोके सुंदर प्रश्नोत्तर हो, जहाँ उत्तम ज्ञान और ध्यानकी सुकथा हो, जहाँ सत्पुरुषोके चरित्रोंपर विचार बनते हो, जहाँ तत्त्वज्ञानके तरगकी लहरे छूटती हो, जहाँ सरल स्वभावसे सिद्धांत-विचारकी चर्चा होती हो, जहाँ मोक्ष विषयक कथनपर खूब विवेचन होता हो, ऐसा सत्संग मिलना महा दुर्लभ है। यदि कोई यह कहे, कि क्या सत्संग मडलमे कोई मायावी नहीं होता? तो इसका समाधान यह है, कि जहाँ माया और स्वार्थ होता है, वहाँ सत्संग ही नहीं होता। राजहंसकी सभाका कौआ यदि ऊपरसे देखनेमे कदाचित् न पहचाना जाय, तो स्वरसे अवश्य पहचाना जायगा। यदि वह मौन रहे, तो मुखकी मुद्रासे पहचाना जायगा। परन्तु वह कभी छिपा न रहेगा। इसीप्रकार मायावी लोग सत्संगमे स्वार्थके लिये जाकर क्या करेगे? वहाँ पेट भरनेकी बात तो होती नही। यदि वे दो घडी वहाँ जाकर विश्रांति लेते हो, तो खुशीसे ले जिससे रंग लगे, नहीं तो दूसरी बार उनका आगमन नहीं होता। जिस प्रकार जमीनपर नही तैरा जाता, उसी तरह सत्संगसे डूबा नही जाता। ऐसी सत्संगमे चमत्कृति है। निरतर ऐसे निर्दोष समागममे मायाको लेकर आवे भी कौन? कोई ही दुर्भागी, और वह भी असंभव है।

सत्सग यह आत्माकी परम हितकारी औषध है।

२५ परिग्रहका मर्यादित करना

जिस प्राणीको परिग्रहकी मर्यादा नहीं, वह प्राणी सुखी नहीं। उसे जितना भी मिल जाय वह थोड़ा ही है। क्योंकि जितना उसे मिलता जाता है उतनेसे विशेष प्राप्त करनेकी उसकी इच्छा होती जाती है। परिग्रहकी प्रबलतामें जो कुछ मिला हो, उसका भी सुख नहीं भोगा जाता, परन्तु जो हो वह भी कदाचित् चला जाता है। परिग्रहसे निरंतर चल-विचल परिणाम और पाप-भावना रहती है। अकस्मात् ऐसी पाप-भावनामें यदि आयु पूर्ण हो, तो वह बहुधा अधोगतिका कारण हो जाता है। सम्पूर्ण परिग्रह तो मुनीश्वर ही त्याग सकते हैं। परन्तु गृहस्थ भी इसकी कुछ मर्यादा कर सकते हैं। मर्यादा होनेके उपरांत परिग्रहकी उत्पत्ति ही नहीं रहती। तथा इसके कारण विशेष भावना भी बहुधा नहीं होती, और जो मिला है, उसमें संतोष रखनेकी आदत पड़ जाती है। इससे काल सुखमें व्यतीत होता है। न जाने लक्ष्मी आदिमें कैसी विचित्रता है, कि जैसे जैसे उसका लाभ होता जाता है, वैसे वैसे लोभकी वृद्धि होती जाती है। धर्मसंबंधी कितना ही ज्ञान होनेपर और धर्मकी दृढ़ता होनेपर भी परिग्रहके पाशमें पड़े हुए पुरुष कोई विरले ही छूट सकते हैं। वृत्ति इसमें ही लटकी रहती है। परन्तु यह वृत्ति किसी कालमें सुखदायक अथवा आत्महितैषी नहीं हुई। जिसने इसकी मर्यादा थोड़ी नहीं की वह बहुत दुःखका भागी हुआ है।

छह खंडोंको जीतकर आज्ञा चलानेवाला राजाधिराज चक्रवर्ती कहलाता है। इन समर्थ चक्रवर्तियोंमें सुभूम नामक एक चक्रवर्ती हो गया है। यह छह खंडोंके जीतनेके कारण चक्रवर्ती माना गया। परन्तु इतनेमें उसकी मनोवांछा तृप्त न हुई, अब भी वह तरसता ही रहा। इसलिये इसने धातकी खंडके छह खंडोंको जीतनेका निश्चय किया। सब चक्रवर्ती छह खंडोंको जीतते हैं, और मैं भी इतने ही जीतूं, उसमें क्या महत्ता है? बारह खंडोंके जीतनेसे मैं चिरकाल तक प्रसिद्ध रहूंगा, और समर्थ आज्ञा जीवनपर्यंत इन खंडोंपर चला सकूंगा। इस विचारसे उसने समुद्रमें चर्मरत्न छोड़ा। उसके ऊपर सब सैन्य आदिका आधार था। चर्मरत्नके एक हजार देवता सेवक होते हैं। उनमें प्रथम एकने विचारा, कि न जाने इसमेंसे कितने वर्षमें छुटकारा होगा, इसलिये अपनी देवांगनासे तो मिल आऊं। ऐसा विचार कर वह चला गया। इसी विचारसे दूसरा देवता गया, फिर तीसरा गया। ऐसे करते करते हजारके हजार देवता चले गये। अब चर्मरत्न डूब गया। अश्व, गज और सब सेनाके साथ सुभूम चक्रवर्ती भी डूब गया। पाप और पाप भावनामें ही मरकर वह चक्रवर्ती अनंत दुःखसे भरे हुए सातवें तमतमप्रभा नरकमें जाकर पड़ा। देखो! छह खंडका आधिपत्य तो भोगना एक ओर रहा, परन्तु अकस्मात् और भयंकर रीतिसे परिग्रहकी प्रीतिसे इस चक्रवर्तीकी मृत्यु हुई, तो फिर दूसरोंके लिये तो कहना ही क्या? परिग्रह यह पापका मूल है, पापका पिता है, और अन्य एकादश व्रतोंको महादोष देना इसका स्वभाव है। इसलिये आत्महितैषियोंको जैसे बने वैसे इसका त्याग करके मर्यादापूर्वक आचरण करना चाहिये।

२६ तत्त्व समझना

बहुतसे शास्त्रोंके वचन मुखपाठ हों, ऐसे पुरुष बहुत मिल सकते हैं। परन्तु जिन्होंने थोड़े वचनों-

पर प्रौढ और विवेकपूर्वक विचार कर शास्त्र जितना ज्ञान हृदयंगम किया हो, ऐसे पुरुष मिलने दुर्लभ है। तत्त्वको पहुँच जाना कोई छोटी बात नही, यह कूदकर समुद्रके उलॉघ जानेके समान है।

अर्थ शब्दके लक्ष्मी, तत्त्व, और शब्द, इस तरह बहुतसे अर्थ होते है। परन्तु यहॉ अर्थ अर्थात् 'तत्त्व' इस विषयपर कहना है। जो निर्ग्रथ प्रवचनमे आये हुए पवित्र वचनोको कंठस्थ करते है, वे अपने उत्साहके बलसे सत्फलका उपार्जन करते हैं। परन्तु जिन्होने उसका मर्म पाया है, उनको तो इससे सुख, आनंद, विवेक और अन्तमे महान् फलकी प्राप्ति होती है। अपढ पुरुष जितना सुंदर अक्षर और खेची हुई मिथ्या लकीर इन दोनोके भेदको जानता है, उतना ही मुखपाठी अन्य ग्रथोंके विचार और निर्ग्रथ प्रवचनको भेदरूप मानता है। क्योकि उसने अर्थपूर्वक निर्ग्रथ वचनामृतको धारण नही किया, और उसपर यथार्थ तत्त्व-विचार नहीं किया। यद्यपि तत्त्व-विचार करनेमे समर्थ बुद्धि-प्रभावकी आवश्यकता है, तो भी कुछ विचार जरूर कर सकता है। पत्थर पिघलता नहीं, फिर भी पानीसे भीग जाता है। इसीतरह जिसने वचनामृत कंठस्थ किया हो, वह अर्थ सहित हो तो बहुत उपयोगी हो सकता है। नही तो तोतेवाला राम नाम। तोतेको कोई परिचयमे आकर राम नाम कहना भले ही सिखला दे, परन्तु तोतेकी बला जाने, कि राम अनारको कहते है, या अंगूरको। सामान्य अर्थके समझे विना ऐसा होता है। कच्छी वैश्योका एक दृष्टांत कहा जाता है। वह हास्ययुक्त कुछ अवश्य है, परन्तु इससे उत्तम शिक्षा मिल सकती है। इसलिये इसे यहाँ कहता हूँ। कच्छके किसी गॉवमे श्रावक-धर्मको पालते हुए रायशी, देवशी और खेतशी नामके तीन ओसवाल रहते थे। वे नियमित रीतिसे संध्याकाल और प्रभातमे प्रतिक्रमण करते थे। प्रभातमे रायशी और संध्याकालमे देवशी प्रतिक्रमण कराते थे। रात्रिका प्रतिक्रमण रायशी कराता था। रात्रिके संबंधसे 'रायशी पडिक्कमणुं ठायंमि' इस तरह उसे बुलवाना पडता था। इसी तरह देवशीको दिनका संबंध होनेसे 'देवशी पडिक्कमणुं ठायमि' यह बुलवाना पड़ता था। योगानुयोगसे एक दिन बहुत लोगोके आग्रहसे संध्याकालमे खेतशीको प्रतिक्रमण बुलवाने बैठाया। खेतशीने जहाँ 'देवशी पडिक्कमणुं ठायमि' आया, वहॉ 'खेतशी पडिक्कमणुं ठायमि' यह वाक्य लगा दिया। यह सुनकर सब हॅसने लगे और उन्होंने पूँछा, यह क्या? खेतशी बोला, क्यो? सबने कहा, कि तुम 'खेतशी पडिक्कमणु ठायमि, ऐसे क्यो बोलते हो? खेतशीने कहा, कि मै गरीब हूँ इसलिये मेरा नाम आया तो वहॉ आप लोग तुरत ही तकरार कर बैठे। परन्तु रायशी और देवशीके लिये तो किसी दिन कोई बोलता भी नहीं। ये दोनो क्यो 'रायशी पडिक्कमणुं ठायंमि' और 'देवशी पडिक्कमणुं ठायमि' ऐसा कहते है? तो फिर मै 'खेतशी पडिक्कमणुं ठायंमि' ऐसे क्यो न कहूँ? इसकी भद्रताने सबको विनोद उत्पन्न किया। बादमे प्रतिक्रमणका कारण सहित अर्थ समझानेसे खेतशी अपने मुखसे पाठ किये हुए प्रतिक्रमणसे शरमाया।

यह तो एक सामान्य बात है, परन्तु अर्थकी खूबी न्यारी है। तत्त्वज्ञ लोग उसपर बहुत विचार कर सकते है। बाकी तो जैसे गुड मीठा ही लगता हैं, वैसे ही निर्ग्रन्थ वचनामृत भी श्रेष्ठ फलको ही देते हैं। अहो! परन्तु मर्म पानेकी बातकी तो बलिहारी ही है!

२७ यतना

जैसे विवेक धर्मका मूल तत्त्व है, वैसे ही यतना धर्मका उपतत्त्व है। विवेकसे धर्मतत्त्वका ग्रहण किया जाता है, तथा यतनासे वह तत्त्व शुद्ध रक्खा जा सकता है, और उसके अनुसार आचरण किया

जा सकता है। पाँच समितिरूप यतना तो बहुत श्रेष्ठ है, परन्तु गृहस्थाश्रमीसे वह सर्वथारूपसे नहीं पल सकती। तो भी जितने अंशोंमे वह पाली जा सकती है, उतने अशोमे भी वे उसे सावधानीसे नही पाल सकते। जिनेश्वर भगवान्की उपदेश की हुई स्थूल और सूक्ष्म दयाके प्रति जहाँ बेदरकारी है, वहाँ वह बहुत दोषसे पाली जा सकती है। यह यतनाके रखनेकी न्यूनताके कारण है। जल्दी और वेगभरी चाल, पानी छानकर उसके बिनछन रखनेकी अपूर्ण विधि, काष्ठ आदि ईधनका बिना झाडे, बिना देखे उपयोग, अनाजमे रहनेवाले जंतुओकी अपूर्ण शोध, बिना झाड़े बुहारे रक्खे हुए पात्र, अस्वच्छ रक्खे हुए कमरे, आँगनमे पानीका उडेलना, जूठनका रख छोडना, पटड़ेके बिना धधकती थालीका नीचे रखना, इनसे हमे इस लोकमे अस्वच्छता, प्रतिकूलता, असुविधा, अस्वस्थता इत्यादि फल मिलते हैं, और ये परलोकमे भी दुःखदायी महापापका कारण हो जाते हैं। इसलिये कहनेका तात्पर्य यह है, कि चलनेमे, बैठनेमें, उठनेमे, भोजन करनेमें और दूसरी हरेक क्रियामे यतनाका उपयोग करना चाहिये। इससे द्रव्य और भाव दोनो प्रकारके लाभ हैं। चालको धीमी और गभीर रखना, घरका स्वच्छ रखना, पानीका विधि सहित छानना, काष्ठ आदि ईंधनका झाड़कर उपयोग करना, ये कुछ हमें असुविधा देनेवाले काम नहीं, और इनमे विशेष समय भी नहीं जाता। ऐसे नियमोंका दाखिल करनेके पश्चात् पालना भी मुश्किल नहीं है। इससे बिचारे असंख्यात निरपराधी जंतुओकी रक्षा हो जाती है।

प्रत्येक कामको यतनापूर्वक ही करना यह विवेकी श्रावकका कर्तव्य है।

२८ रात्रिभोजन

अहिंसा आदि पाँच महाव्रतोकी तरह भगवान्ने रात्रिभोजनत्याग व्रत भी कहा है। रात्रिमे चार प्रकारका आहार अभक्ष्य है। जिस जातिके आहारका रग होता है उस जातिके तमस्काय नामके जीव उस आहारमे उत्पन्न होते है। इसके सिवाय रात्रिभोजनमे और भी अनेक दोष हैं। रात्रिमे भोजन करनेवालेको रसोईके लिये अग्नि जलानी पड़ती है। उस समय समीपकी दिवालपर रहते हुए निरपराधी सूक्ष्म जंतु नाश पाते है। ईंधनके वास्ते लाये हुए काष्ठ आदिमे रहते हुए जंतु रात्रिमे न दीखनेसे नाश हो जाते हैं। रात्रिभोजनमे सर्पके ज़हरका, मकडीकी लारका और मच्छर आदि सूक्ष्म जंतुओका भी भय रहता है। कभी कभी यह कुटुम्ब आदिके भयंकर रोगका भी कारण हो जाता है।

रात्रिभोजनका पुराण आदि मतोंमे भी सामान्य आचारके लिये त्याग किया है, फिर भी उनमें परपराकी रूढ़िको लेकर रात्रिभोजन घुस गया है। परन्तु यह निषिद्ध तो है ही।

शरीरके अदर दो प्रकारके कमल होते है। वे सूर्यके अस्तसे सकुचित हो जाते है। इसकारण रात्रिभोजनमें सूक्ष्म जीवोका भक्षण होनेसे अहित होता है, यह महारोगका कारण है। ऐसा बहुतसे स्थलोंमे आयुर्वेदका भी मत है।

सत्पुरुष दो घड़ी दिनसे व्याड़ करते हैं, और दो घड़ी दिन चढ़नेसे पहले किसी भी प्रकारका आहार नहीं करते। रात्रिभोजनके लिये विशेष विचारोंका मुनियोंके समागमसे अथवा शास्त्रोंसे जानना चाहिये। इस संबंधमे बहुत सूक्ष्म भेदका जानना आवश्यक है।

चार प्रकारके आहार रात्रिमे त्यागनेसे महान् फल है, यह जिनवचन है।

२९ जीवकी रक्षा

(१)

दयाके समान एक भी धर्म नही। दया ही धर्मका स्वरूप है। जहाँ दया नही वहाँ धर्म नही। पृथिवीतलमे ऐसे अनर्थकारक धर्ममत प्रचलित है, जो कहते है कि जीवका वध करनेमे लेशमात्र भी पाप नहीं होता। बहुत करो तो मनुष्य देहकी रक्षा करो। ये धर्ममतवाले लोग धर्मोन्मादी और मदाध है, और ये दयाका लेशमात्र भी स्वरूप नहीं जानते। यदि ये लोग अपने हृदय-पटको प्रकाशमे रखकर विचार करे, तो उन्हे अवश्य माल्रम होगा, कि एक सूक्ष्मसे सूक्ष्म जंतुका भी वध करनेसे महापाप है। जैसे मुझे मेरी आत्मा प्रिय है, वैसे ही अन्य जीवोंको उनकी आत्मा प्रिय है। मै अपने लेशभर व्यसनके लिये अथवा लाभके लिये ऐसे असंख्यातो जीवोका बेधडक वध करता हूँ, यह मुझे कितना अधिक अनंत दुःखका कारण होगा। इन लोगोमें बुद्धिका बीज भी नहीं है, इसलिये वे लोग ऐसे सात्त्विक विचार नहीं कर सकते। ये पाप ही पापमे निशदिन मग्न रहते है। वेद और वैष्णव आदि पंथोमे भी सूक्ष्म दयाका कोई विचार देखनेमे नहीं आता। तो भी ये दयाको बिलकुल ही नही समझनेवालोकी अपेक्षा बहुत उत्तम है। स्थूल जीवोकी रक्षा करना ये लोक ठीक तरहसे समझे हैं। परन्तु इन सबकी अपेक्षा हम कितने भाग्यशाली हैं, कि जहाँ एक पुष्पकी पँखड़ीको भी पीड़ा हो, वहॉ पाप है, इस वास्तविक तत्त्वको समझे, और यज्ञ याग आदिकी हिंसासे तो सर्वथा विरक्त रहे। हम यथाशक्ति जीवोकी रक्षा करते है, तथा जान-बूझकर जीवोका वध करनेकी हमारी लेशभर भी इच्छा नही। अनंतकाय अभक्ष्यसे बहुत करके हम विरक्त ही हैं। इस कालमे यह समस्त पुण्य-प्रताप सिद्धार्थ भूपालके पुत्र महावीरके कहे हुए परम तत्त्वके उपदेशके योग-बलसे बढ़ा है। मनुष्य ऋद्धि पाते है, सुंदर स्त्री पाते है, आज्ञानुवर्ती पुत्र पाते है, बहुत बड़ा कुटुम्ब परिवार पाते है, मान-प्रतिष्ठा और अधिकार पाते है और यह पाना कोई दुर्लभ भी नहीं। परन्तु वास्तविक धर्म-तत्त्व, उसकी श्रद्धा अथवा उसका थोड़ा अंश भी पाना महा दुर्लभ है। ये ऋद्धि इत्यादि अविवेकसे पापका कारण होकर अनंत दुःखमे ले जाती है, परन्तु यह थोड़ी श्रद्धा-भावना भी उत्तम पदवीमे पहुँचाती है। यह दयाका सत्परिणाम है। हमने धर्म-तत्त्व युक्त कुलमें जन्म पाया है, इसलिये अब जैसे बने विमल दयामय आचारमे आना चाहिये। सब जीवोंकी रक्षा करनी, इस बातको हमे सदैव लक्षमे रखना चाहिये। दूसरोको भी ऐसी ही युक्ति प्रयुक्तियोसे उपदेश देना चाहिये। सब जीवोकी रक्षा करनेके लिये एक शिक्षाप्रद उत्तम युक्ति बुद्धिशाली **अ**भयकुमारने की थी, उसे मैं आगेके पाठमे कहता हूँ। इसी प्रकार तत्त्वबोधके लिये युक्तियुक्त न्यायसे अनार्योंके समान धर्ममतवादियोको हमें शिक्षा देनेका समय मिले, तो हम कितने भाग्यशाली हो?

३० सब जीवोंकी रक्षा

(२)

मगध देशकी राजगृही नगरीका अधिराज श्रेणिक एक समय सभा भरकर बैठा हुआ था। प्रसंगवश बातचीतके प्रसंगमे मॉस-लुब्ध सामंत बोले, कि आजकल मॉस विशेष सस्ता है। यह बात अभयकुमारने सुनी। इसके ऊपरसे अभयकुमारने इन हिंसक सामंतोंको उपदेश देनेका निश्चय किया।

सॉझको सभा विसर्जन हुई और राजा अन्तःपुरमे गया। तत्पश्चात् जिस जिसने क्रय-विक्रयके लिये मॉसकी बात कही थी, अभयकुमार उन सबके घर गया। जिसके घर अभयकुमार गया, वहॉ सत्कार किये जानेके बाद सब सामंत पूँछने लगे, कि आपने हमारे घर पधारनेका कैसे कष्ट उठाया? अभयकुमारने कहा, " महाराज श्रेणिकको अकस्मात् महारोग उत्पन्न हो गया है। वैद्योंके इकट्ठे करनेपर उन्होंने कहा है, कि यदि कोमल मनुष्यके कलेजेका सवा पैसेभर मॉस मिले तो यह रोग मिट सकता है। तुम लोग राजाके प्रिय-मान्य हो, इसलिये मैं तुम्हारे यहॉ इस मॉंसको लेने आया हूँ।" प्रत्येक सामंतने विचार किया कि कलेजेका मॉस विना मरे किस प्रकार दिया सकता है? उन्होंने अभयकुमारसे कहा, महाराज, यह तो कैसे हो सकता है? यह कहनेके पश्चात् प्रत्येक सामंतने अभयकुमारको अपनी बातको राजाके आगे न खोलनेके लिये बहुतसा द्रव्य दिया। अभयकुमारने इस द्रव्यको ग्रहण किया। इस तरह अभयकुमार सब सामंतोंके घर फिर आया। कोई भी सामंत मॉस न दे सका, और अपनी बातको छिपानेके लिये उन्होंने द्रव्य दिया। तत्पश्चात् दूसरे दिन जब सभा भरी, उस समय समस्त सामंत अपने अपने आसनपर आ आकर बैठे। राजा भी सिंहासनपर विराजमान था। सामत लोग राजासे कलकी कुशल पूँछने लगे। राजा इस बातसे विस्मित हुआ। उसने अभय-कुमारकी ओर देखा। अभयकुमार बोला, " महाराज! कल आपके सामंतोंने सभामे कहा था, कि आजकल मॉस सस्ता मिलता है। इस कारण मैं उनके घर मॉस लेने गया था। सबने मुझे बहुत द्रव्य दिया, परन्तु कलेजेका सवा पैसाभर मॉस किसीने भी न दिया। तो इस मॉसको सस्ता कहा जाय या महँगा?।" यह सुनकर सब सामंत शरमसे नीचे देखने लगे। कोई कुछ बोल न सका। तत्पश्चात् अभयकुमारने कहा, " यह मैंने कुछ आप लोगोंको दुःख देनेके लिये नहीं किया, परन्तु उपदेश देनेके लिये किया है। हमें अपने शरीरका मॉस देना पड़े तो हमें अनंतभय होता है, कारण कि हमें अपनी देह प्रिय है। इसी तरह अन्य जीवोंका मॉस उन जीवोंको भी प्यारा होगा। जैसे हम अमूल्य वस्तुओको देकर भी अपनी देहकी रक्षा करते है, वैसे ही वे बिचारे पामर प्राणी भी अपनी देहकी रक्षा करते होंगे। हम समझदार और बोलते चालते प्राणी हैं, वे विचारे अवाचक और निराधार प्राणी हैं। उनको मृत्युरूप दुःख देना कितना प्रबल पापका कारण है? हमें इस वचनको निरतर लक्षमें रखना चाहिये कि " सब प्राणियोंको अपना अपना जीव प्रिय है, और सब जीवोंकी रक्षा करने जैसा एक भी धर्म नहीं।" अभयकुमारके भाषणसे श्रेणिक महाराजको संतोष हुआ। सब सामंतोंने भी शिक्षा ग्रहण की। सामतोंने उस दिनसे मॉंस न खानेकी प्रतिज्ञा की। कारण कि एक तो वह अभक्ष्य है, और दूसरे वह किसी जीवके मारे विना नहीं मिलता, बडा अधर्म है। अतएव प्रधानका कथन सुनकर उन्होने अभयदानमें लक्ष दिया।

अभयदान आत्माके परम सुखका कारण है।

३१ प्रत्याख्यान

'पच्चखाण' शब्द अनेक बार तुम्हारे सुननेमे आया होगा। इसका मूल शब्द 'प्रत्याख्यान' है। यह (शब्द) किसी वस्तुकी तरफ चित्त न करना, इस प्रकार तत्त्वसे समझकर हेतुपूर्वक नियम करनेके अर्थमें प्रयुक्त होता है। प्रत्याख्यान करनेका हेतु महा उत्तम और सूक्ष्म है। प्रत्याख्यान नहीं

करनेसे चाहे किसी वस्तुको न खाओ, अथवा उसका भोग न करो, तो भी उससे संवरपना नही। कारण कि हमने तत्त्वरूपसे इच्छाका रोध नही किया। हम रात्रिमे भोजन न करते हो, परंतु उसका यदि प्रत्याख्यानरूपमे नियम नही किया, तो वह फल नही देता। क्योंकि अपनी इच्छा खुली रहती है। जैसे घरका दरवाजा खुला होनेसे कुत्ते आदि जानवर अथवा मनुष्य भीतर चले आते है, वैसे ही इच्छाका द्वार खुला हो तो उसमे कर्म प्रवेश करते है। इसलिये इस ओर अपने विचार सरलतासे चले जाते है। यह कर्म-बन्धनका कारण है। यदि प्रत्याख्यान हो, तो फिर इस ओर दृष्टि करनेकी इच्छा नही होती। जैसे हम जानते है कि पीठके मध्य भागको हम नहीं देख सकते, इसलिये उस ओर हम दृष्टि भी नही करते, उसी प्रकार प्रत्याख्यान करनेसे हम अमुक वस्तुको नही खा सकते, अथवा उसका भोग नही कर सकते, इस कारण उस ओर हमारा लक्ष स्वाभाविकरूपसे नहीं जाता। यह कर्मोंके आनेके लिये बीचमे दीवार हो जाता है। प्रत्याख्यान करनेके पश्चात् विस्मृति आदि कारणोंसे कोई दोष आ जाय तो उसका प्रायश्चित्तसे निवारण करनेकी आज्ञा भी महात्माओने दी है।

प्रत्याख्यानसे एक दूसरा भी बड़ा लाभ है। वह यह कि प्रत्याख्यानसे कुछ वस्तुओमे ही हमारा लक्ष रह जाता है, बाकी सब वस्तुओका त्याग हो जाता है। जिस जिस वस्तुका हमारे त्याग है, उन उन वस्तुओके संबंधमे फिर विशेष विचार, उनका ग्रहण करना, रखना अथवा ऐसी कोई अन्य उपाधि नही रहती। इससे मन बहुत विशालताको पाकर नियमरूपी सड़कपर चला जाता है। जैसे यदि अश्व लगाममे आ जाता है, तो फिर चाहे वह कितना ही प्रबल हो उसे अभीष्ट रास्तेसे ले जाया जा सकता है, वैसे ही मनके नियमरूपी लगाममे आनेके बादमे उसे चाहे जिस शुभ रास्तेसे ले जाया जा सकता है, और उसमे बारम्बार पर्यटन करानेसे वह एकाग्र, विचारशील, और विवेकी हो जाता है। मनका आनन्द शरीरको भी निरोगी करता है। अभक्ष्य, अनंतकाय, परस्त्री आदिका नियम करनेसे भी शरीर निरोगी रह सकता है। मादक पदार्थ मनको कुमार्गपर ले जाते है। परन्तु प्रत्याख्यानसे मन वहाँ जाता हुआ रुक जाता है। इस कारण वह विमल होता है।

प्रत्याख्यान यह कैसी उत्तम नियम पालनेकी प्रतिज्ञा है, यह बात इसके ऊपरसे तुम समझे होगे। इसको विशेष सद्गुरुके मुखसे और शास्त्रावलोकनसे समझनेका मै उपदेश करता हूँ।

३२ विनयसे तत्त्वकी सिद्धि है

राजगृही नगरीके राज्यासनपर जिस समय श्रेणिक राजा विराजमान था उस समय उस नगरीमे एक चंडाल रहता था। एक समय इस चंडालकी स्त्रीको गर्भ रहा। चंडालिनीको आम खानेकी इच्छा उत्पन्न हुई। उसने आमोको लानेके लिये चंडालसे कहा। चंडालने कहा, यह आमोंका मौसम नहीं, इसलिये मै निरुपाय हूँ। नहीं तो मैं आम चाहे कितने ही ऊँचे हो वहीसे उन्हें अपनी विद्याके बलसे तोड़कर तेरी इच्छा पूर्ण करता। चंडालिनीने कहा, राजाकी महारानीके बागमे एक असमयमे फल देनेवाला आम है। उसमे आजकल आम लगे होगे। इसलिये आप वहाँ जाकर उन आमोको लावे। अपनी स्त्रीकी इच्छा पूर्ण करनेको चंडाल उस बागमे गया। चंडालने गुप्त रीतिसे आमके समीप जाकर मंत्र पढ़कर वृक्षको नमाया, और उसपरसे आम तोड़ लिये। बादमे दूसरे मंत्रके द्वारा उसे जैसाका तैसा कर दिया। बादमे चंडाल अपने घर आया। इस तरह अपनी स्त्रीकी इच्छा पूरी करनेके

लिये निरंतर वह चंडाल विद्याके बलसे वहाँसे आम लाने लगा। एक दिन फिरते फिरते मालीकी दृष्टि आमोंपर गई। आमोंकी चोरी हुई जानकर उसने श्रेणिक राजाके आगे जाकर नम्रतापूर्वक सब हाल कहा। श्रेणिककी आज्ञासे अभयकुमार नामके बुद्धिशाली प्रधानने युक्तिके द्वारा उस चंडालको ढूँढ निकाला। चंडालको अपने आगे बुलाकर अभयकुमारने पूछा, इतने मनुष्य बागमें रहते हैं, फिर भी तू किस रीतिसे ऊपर चढकर आम तोड़कर ले जाता है, कि यह बात किसीके जाननेमें नहीं आती? चंडालने कहा, आप मेरा अपराध क्षमा करें। मै सच सच कह देता हूँ कि मेरे पास एक विद्या है। उसके प्रभावसे मै इन आमोको तोड़ सका हूँ। अभयकुमारने कहा, मैं स्वयं तो क्षमा नहीं कर सकता। परन्तु महाराज श्रेणिकको यदि तू इस विद्याको देना स्वीकार करे, तो उन्हें इस विद्याके लेनेकी अभिलाषा होनेके कारण तेरे उपकारके बदलेमे मैं तेरा अपराध क्षमा करा सकता हूँ। चंडालने इस बातको स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् अभयकुमारने चंडालको जहाँ श्रेणिक राजा सिंहासनपर बैठे थे, वहाँ लाकर श्रेणिकके सामने खड़ा किया और राजाको सब बात कह सुनाई। इस बातको राजाने स्वीकार किया। बादमें चंडाल सामने खड़े रहकर थरथराते पगसे श्रेणिकको उस विद्याका बोध देने लगा, परन्तु वह बोध नहीं लगा। झटसे खड़े होकर अभयकुमार बोले, महाराज! आपको यदि यह विद्या अवश्य सीखनी है तो आप सामने आकर खडे रहे, और इसे सिंहासन दें। राजाने विद्या लेनेके वास्ते ऐसा किया, तो तत्काल ही विद्या सिद्ध हो गई।

यह बात केवल शिक्षा ग्रहण करनेके वास्ते है। एक चंडालकी भी विनय किये बिना श्रेणिक जैसे राजाको विद्या सिद्ध न हुई, इसमेंसे यही सार ग्रहण करना चाहिये कि सद्विद्याको सिद्ध करनेके लिये विनय करना आवश्यक है। आत्म-विद्या पानेके लिये यदि हम निर्ग्रंथ गुरुका विनय करें, तो कितना मंगलदायक हो!

विनय यह उत्तम वशीकरण है। उत्तराध्ययनमें भगवान्ने विनयको धर्मका मूल कहकर वर्णन किया है। गुरुका, मुनिका, विद्वान्का, माता-पिताका और अपनेसे बडोंका विनय करना, ये अपनी उत्तमताके कारण हैं।

३३ सुदर्शन सेठ

प्राचीन कालमें शुद्ध एकपत्नीव्रतके पालनेवाले असंख्य पुरुष हो गये है, इनमे संकट सहकर प्रसिद्ध होनेवाले सुदर्शन नामका एक सत्पुरुष भी हो गया है। यह धनाढ्य, सुंदर मुखाकृतिवाला, कांतिमान और मध्यवयमें था। जिस नगरमें वह रहता था, एक बार किसी कामके प्रसंगमे उस नगरके राजदरबारके सामनेसे उसे निकलना पड़ा। उस समय राजाकी अभया नामकी रानी अपने महलके झरोखेमें बैठी थी। वहाँसे उसकी दृष्टि सुदर्शनकी तरफ गई। सुदर्शनका उत्तम रूप और शरीर देखकर अभयाका मन ललचा गया। अभयाने एक दासीको भेजकर कपट-भावसे निर्मल कारण बताकर सुदर्शनको ऊपर बुलाया। अनेक तरहकी बातचीत करनेके पश्चात् अभयाने सुदर्शनको भोगोंके भोगनेका आमंत्रण दिया। सुदर्शनने बहुत उपदेश दिया तो भी अभयाका मन शांत नहीं हुआ। अन्तमें थककर सुदर्शनने युक्तिपूर्वक कहा, बहिन, मै पुरुषत्व हीन हूँ। तो भी रानीने अनेक प्रकारके हाव-भाव किये। इन सब काम-चेष्टाओंमे सुदर्शन चलायमान नहीं हुआ। इससे हारकर रानीने उसे जाने दिया।

एक बार इस नगरमे कोई उत्सव था। नगरके बाहर नगर-जन आनंदसे इधर उधर घूम रहे थे, धूमधाम मच रही थी। सुदर्शन सेठके छह देवकुमार जैसे पुत्र भी वहाँ आये थे। अभया रानी भी कपिला नामकी दासीके साथ ठाठबाटसे वहाँ आई थी। सुदर्शनके देवपुतले जैसे छह पुत्र उसके देखनेमे आये। उसने कपिलासे पूँछा, ऐसे रम्य पुत्र किसके है ? कपिलाने सुदर्शन सेठका नाम लिया। सुदर्शनका नाम सुनते ही रानीकी छातीमे मानो कटार लगी, उसको गहरा घाव लगा। सब धूमधाम बीत जानेके पश्चात् माया-कथन घड़कर अभया और उसकी दासीने मिलकर राजासे कहा, "तुम समझते होगे कि मेरे राज्यमे न्याय और नीति चलती है, मेरी प्रजा दुर्जनोसे दुःखी नहीं, परन्तु यह सब मिथ्या है। अंतःपुरमे भी दुर्जन प्रवेश करते है, यहाँ तक तो अंधेर है ! तो फिर दूसरे स्थानोके लिये तो पूँछना ही क्या ? तुम्हारे नगरके सुदर्शन सेठने मुझे भोगका आमंत्रण दिया, और नहीं कहने योग्य कथन मुझे सुनना पड़ा। परन्तु मैने उसका तिरस्कार किया। इससे विशेष अंधेर और क्या कहा जाय ?" बहुतसे राजा वैसे ही कानके कच्चे होते है, यह बात प्रायः सर्वमान्य जैसी है, उसमे फिर स्त्रीके मायावी मधुर वचन क्या असर नहीं करते ? गरम तेलमे ठंडे जल डालनेके समान रानीके वचनोसे राजा क्रोधित हुआ। उसने सुदर्शनको शूलीपर चढा देनेकी तत्काल ही आज्ञा दी, और तदनुसार सब कुछ हो भी गया। केवल सुदर्शनके शूलीपर बैठनेकी ही देर थी।

कुछ भी हो, परन्तु सृष्टिके दिव्य भंडारमे उजाला है। सत्यका प्रभाव ढँका नहीं रहता। सुदर्शनको शूलीपर बैठाते ही शूली फटकर उसका झिलमिलाता हुआ सोनेका सिंहासन हो गया। देवोने दुंदुभिका नाद किया, सर्वत्र आनन्द फैल गया। सुदर्शनका सत्यशील विश्व-मंडलमे झलक उठा। सत्यशीलकी सदा जय होती है।

सुदर्शनका शील और उत्तम दृढ़ता ये दोनो आत्माको पवित्र श्रेणीपर चढ़ाते हैं।

३४ ब्रह्मचर्यके विषयमें सुभाषित

जो नवयौवनाको देखकर लेशभर भी विषय विकारको प्राप्त नहीं होते, जो उसे काठकी पुतलीके समान गिनते है, वे पुरुष भगवान्के समान हैं ॥ १ ॥

इस समस्त संसारकी नायकरूप रमणी सर्वथा शोकस्वरूप हैं, उनका जिन्होने त्याग किया, उसने सब कुछ त्याग किया ॥ २ ॥

जिस प्रकार एक राजाके जीत लेनेसे उसका सैन्य-दल, नगर और अधिकार जीत लिये जाते हैं, उसी तरह एक विषयको जीत लेने समस्त संसार जीत लिया जाता है ॥ ३ ॥

जिस प्रकार थोडा भी मदिरापान करनेसे अज्ञान छा जाता है, उसी तरह विषयरूपी अंकुरसे ज्ञान और ध्यान नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

---

३४ ब्रह्मचर्यविषे सुभाषित

दोहरा

निरखीने नव यौवना, लेश न विषयनिदान, गणे काष्ठनी पूतळी, ते भगवानसमान ॥ १ ॥
आ सघळा संसारनी, रमणी नायकरूप, ए त्यागी, त्याग्युं बधु, केवळ शोकस्वरूप ॥ २ ॥
एक विषयने जीतता, जीत्यो सौ संसार, नृपति जीतता जीतिये, दळ, पुर, ने अधिकार ॥ ३ ॥
विषयरूप अंकूरथी, टळे ज्ञान ने ध्यान, लेश मदीरापानथी, छाके ज्यम अज्ञान ॥ ४ ॥

जो विशुद्ध नव वाड़पूर्वक सुखदायक शीलको धारण करता है, उसका संसार-भ्रमण बहुत कम हो जाता है। हे भाई! यह तात्त्विक वचन है ॥ ५ ॥

सुंदर शीलरूपी कल्पवृक्षको मन, वचन, और कायसे जो नर नारी सेवन करेंगे, वे अनुपम फलको प्राप्त करेंगे ॥ ६ ॥

पात्रके बिना कोई वस्तु नहीं रहती, पात्रमें ही आत्मज्ञान होता है, पात्र बननेके लिये, हे बुद्धिमान् लोगो, ब्रह्मचर्यका सदा सेवन करो ॥ ७ ॥

३५ नमस्कारमंत्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

इन पवित्र वाक्योंको निर्ग्रंथप्रवचनमें नवकार (नमस्कार) मंत्र अथवा पंचपरमेष्ठीमंत्र कहते हैं अर्हत भगवान्के बारह गुण, सिद्ध भगवान्के आठ गुण, आचार्यके छत्तीस गुण, उपाध्यायके पच्चीस गुण, और साधुके सत्ताईस गुण, ये सब मिलकर एक सौ आठ गुण होते हैं। अँगूठेके बिना बाकीकी चार अँगुलियोंके बारह पोरवे होते हैं, और इनसे इन गुणोंके चिंतवन करनेकी व्यावस्था होनेसे बारहको नौसे गुणा करनेपर १०८ होते है। इसलिये नवकार कहनेसे यह आशय माळूम होता है कि हे भव्य! अपनी अँगुलियोंके पोरवोंसे (नवकार) मंत्र नौ बार गिन। कार शब्दका अर्थ करनेवाला भी होता है। बारहको नौसे गुणा करनेपर जितने हों, उतने गुणोंसे भरा हुआ मंत्र नवकारमंत्र है, ऐसा नवकारमंत्रका अर्थ होता है। पंचपरमेष्ठीका अर्थ इस सकल जगतमें परमोत्कृष्ट पाँच वस्तुयें होता है। वे कौन कौन हैं? तो जवाब देते हैं, कि अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु। इनको नमस्कार करनेका मंत्र परमेष्ठीमंत्र है। पाँच परमेष्ठियोंको एक साथमें नमस्कार होनेसे 'पंचपरमेष्ठी-मत्र' यह शब्द बना। यह मंत्र अनादिसिद्ध माना जाता है, कारण कि पंचपरमेष्ठी अनादिसिद्ध हैं। इसलिये ये पाचों पात्र आदि रूप नहीं, ये प्रवाहसे अनादि है, और उनका जपनेवाला भी अनादिसिद्ध है। इससे यह जाप भी अनादिसिद्ध ठहरती है।

प्रश्न—इस पंचपरमेष्ठीमत्रके परिपूर्ण जाननेसे मनुष्य उत्तम गतिको पाते हैं, ऐसा सत्पुरुष कहते है। इस विषयमें आपका क्या मत है?

उत्तर—यह कहना न्यायपूर्वक है, ऐसा मै मानता हूँ।

प्रश्न—इसे किस कारणसे न्यायपूर्वक कहा जा सकता है?

उत्तर—हाँ, यह तुम्हे मैं समझाता हूँ। मनके निग्रहके लिये यह सर्वोत्तम जगद्भूषणके सत्य गुणका चिंतवन है। तथा तत्त्वसे देखनेपर अर्हतस्वरूप, सिद्धस्वरूप, आचार्यस्वरूप, उपाध्यायस्वरूप और साधुस्वरूप इनका विवेकसे विचार करनेका भी यह सूचक है। क्योंकि वे किस

जे नव वाड विशुद्धथी, धरे शियल सुखदाई भव तेनो लव पछी रहे, तत्त्ववचन ए भाई ॥ ५ ॥
सुंदर शीयळसुरतरु, मन वाणी ने देह, जे नरनारी सेवशे, अनुपम फल ले तेह ॥ ६ ॥
पात्र विना वस्तु न रहे, पात्रे आत्मिक ज्ञान, पात्र थवा सेवो सदा, ब्रह्मचर्य मतिमान ॥ ७ ॥

कारणसे पूजने योग्य है, ऐसा विचारनेसे इनके स्वरूप, गुण इत्यादिका विचार करनेकी सत्पुरुषको तो सच्ची आवश्यकता है। अब कहो कि यह मंत्र कितना कल्याणकारक है!

प्रश्नकार—सत्पुरुष नमस्कारमंत्रको मोक्षका कारण कहते है, यह इस व्याख्यानसे मैं भी मान्य रखता हूँ।

अर्हंत भगवान्, सिद्ध भगवान्, आचार्य, उपाध्याय और साधु इनका एक एक प्रथम अक्षर लेनेसे "असिआउसा" यह महान् वाक्य वनता है। जिसका ॐ ऐसा योगबिंदुका स्वरूप होता है। इस लिये हमे इस मंत्रकी विमल भावसे जाप करनी चाहिये।

३६ अनुपूर्वी

नरकानुपूर्वी, तिर्यचानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी और देवानुपूर्वी इन अनुपूर्वियोके विषयका यह पाठ नहीं है, परन्तु यह 'अनुपूर्वी' नामकी एक अवधान संबधी लघु पुस्तकके मंत्र स्मरणके लिये है।

१	२	३	४	५
२	१	३	४	५
१	३	२	४	५
३	१	२	४	५
२	३	१	४	५
३	२	१	४	५

पिता—इस तरहकी कोष्ठकसे भरी हुई एक छोटीसी पुस्तक है, क्या उसे तूने देखी है?

पुत्र—हॉ, पिताजी।

पिना—इसमे उलटे सीधे अक रक्खे है, उसका कुछ कारण तेरी समझमे आया है?

पुत्र—नहीं पिताजी! मेरी समझमे नहीं आया, इसलिये आप उस कारणको कहिये।

पिता—पुत्र! यह प्रत्यक्ष है कि मन एक बहुत चंचल चीज है। इसे एकाग्र करना बहुत ही अधिक विकट है। वह जब तक एकाग्र नही होता, तब तक आत्माकी मलिनता नहीं जाती, और पापके विचार कम नहीं होते। इस एकाग्रताके लिये भगवान्ने बारह प्रतिज्ञा आदि अनेक महान् साधनोको कहा है। मनकी एकाग्रतासे महायोगकी श्रेणी चढ़नेके लिये और उसे बहुत प्रकारसे निर्मल करनेके लिये सत्पुरुषोंने यह एक साधनरूप कोष्ठक बनाई है। इसमे पहले पंचपरमेष्ठीमंत्रके पॉच अंकोको रक्खा है, और पीछे लोम-विलोम स्वरूपसे इस मंत्रके इन पॉच अंकोको लक्षबद्ध रखकर भिन्न भिन्न प्रकारसे कोष्ठके बनाई हैं। ऐसे करनेका कारण भी यही है, कि जिससे मनकी एकाग्रता होकर निर्जरा हो सके?

पुत्र—पिताजी ! इन्हे अनुक्रमसे लेनेसे यह क्यो नहीं बन सकता ?

पिता—यदि ये लोम-विलोम हों तो इन्हें जोड़ते जाना पड़े, और नाम याद करने पड़ें। पाँचका अंक रखनेके बाद दोका अंक आवे तो 'णमो लोए सव्वसाहूणं' के बादमें 'णमो अरिहंताणं' यह वाक्य छोड़कर 'णमो सिद्धाणं' वाक्य याद करना पड़े। इस प्रकार पुनः पुनः लक्षकी दृढ़ता रखनेसे मन एकाग्रता पर पहुँचता है। ये अंक अनुक्रम-बद्ध हों तो ऐसा नहीं हो सकता, कारण कि उस दशामें विचार नहीं करना पडता। इस सूक्ष्म समयमें मन परमेष्ठीमंत्रमेसे निकलकर संसार-तंत्रकी खटपटमें जा पड़ता है, और कभी धर्मकी जगह मारधाड़ भी कर बैठता है। इससे सत्पुरुषोंने अनुपूर्वीकी योजना की है। यह बहुत सुंदर है और आत्म-शांतिको देनेवाली है।

३७ सामायिकविचार

(१)

आत्म-शक्तिका प्रकाश करनेवाला, सम्यग्दर्शनका उदय करनेवाला, शुद्ध समाधिभावमें प्रवेश करानेवाला, निर्जराका अमूल्य लाभ देनेवाला, राग-द्वेषसे मध्यस्थ बुद्धि करनेवाला सामायिक नामका शिक्षाव्रत है। सामायिक शब्दकी व्युत्पत्ति सम + आय + इक इन शब्दोंसे होती है। 'सम' का अर्थ राग-द्वेष रहित मध्यस्थ परिणाम, 'आय' का अर्थ उस समभावनासे उत्पन्न हुआ ज्ञान दर्शन चारित्ररूप मोक्ष-मार्गका लाभ, और 'इक' का अर्थ भाव होता है। अर्थात् जिसके द्वारा मोक्षके मार्गका लाभ-दायक भाव उत्पन्न हो, वह सामायिक है। आर्त और रौद्र इन दो प्रकारके ध्यानका त्याग करके मन, वचन और कायके पाप-भावोंको रोककर विवेकी मनुष्य सामायिक करते हैं।

मनके पुद्गल तरंगी हैं। सामायिकमे जब विशुद्ध परिणामसे रहना बताया गया है, उस समय भी यह मन आकाश पातालके घाट घड़ा करता है। इसी तरह भूल, विस्मृति, उन्माद इत्यादिसे वचन और कायमे भी दूषण आनेसे सामायिकमें दोष लगता है। मन, वचन और कायके मिलकर बत्तीस दोष उत्पन्न होते हैं। दस मनके, दस वचनके, और बारह कायके इस प्रकार बत्तीस दोषोंको जानना आवश्यक है, इनके जाननेसे मन सावधान रहता है।

मनके दस दोष कहता हूँ.—

१ अविवेकदोष—सामायिकका स्वरूप नहीं जाननेसे मनमे ऐसा विचार करना कि इससे क्या फल होना था ? इससे तो किसने पार पाया होगा, ऐसे विकल्पोंका नाम अविवेकदोष है।

२ यशोवाछादोष—हम स्वयं सामायिक करते हैं, ऐसा दूसरे मनुष्य जाने तो प्रशंसा करें, ऐसी इच्छासे सामायिक करना वह यशोवाछादोष है।

३ धनवाछादोष—धनकी इच्छासे सामायिक करना धनवाछादोष है।

४ गर्वदोष—मुझे लोग धर्मात्मा कहते हैं और मैं सामायिक भी वैसे ही करता हूँ ऐसा अध्यवसाय होना गर्वदोष है।

५ भयदोष—मैं श्रावक कुलमें जन्मा हूँ, मुझे लोग बड़ा मानकर मान देते हैं यदि मैं सामायिक न करूँ तो लोग कहेंगे कि इतनी क्रिया भी नहीं करता, ऐसी निंदाके भयसे सामायिक करना भयदोष है।

६ निदानदोष—सामायिक करके उसके फलसे धन, स्त्री, पुत्र आदि मिलनेकी इच्छा करना निदानदोष है।

७ संशयदोष—सामायिकका फल होगा अथवा नहीं होगा, ऐसा विकल्प करना संशयदोष है।

८ कषायदोष—क्रोध आदिसे सामायिक करने बैठ जाना, अथवा पीछेसे क्रोध, मान, माया, और लोभमे वृत्ति लगाना वह कषायदोष है।

९ अविनयदोष—विनय रहित होकर सामायिक करना अविनयदोष है।

१० अवहुमानदोष—भक्तिभाव और उमगपूर्वक सामायिक न करना वह अवहुमानदोष है।

३८ सामायिकविचार

(२)

मनके दस दोष कहे, अब वचनके दस दोष कहता हूँ।

१ कुबोलदोष—सामायिकमे कुवचन बोलना वह कुबोलदोष है।

२ सहसात्कारदोष—सामायिकमे साहससे अविचारपूर्वक वाक्य बोलना वह सहसात्कारदोष है।

३ असदारोपणदोष—दूसरोको खोटा उपदेश देना वह असदारोपणदोष है।

४ निरपेक्षदोष—सामायिकमे शास्त्रकी उपेक्षा करके वाक्य बोलना वह निरपेक्षदोष है।

५ संक्षेपदोष—सूत्रके पाठ इत्यादिको संक्षेपमे बोल जाना, यथार्थ नहीं बोलना वह संक्षेपदोष है।

६ क्लेशदोष—किसीसे झगड़ा करना वह क्लेशदोष है।

७ विकथादोष—चार प्रकारकी विकथा कर बैठना वह विकथादोष है।

८ हास्यदोष—सामायिकमे किसीकी हँसी, मस्खरी करना वह हास्यदोष है।

९ अशुद्धदोष—सामायिकमे सूत्रपाठको न्यूनाधिक और अशुद्ध बोलना वह अशुद्धदोष है।

१० मुणमुणदोष—गड़बड़ घोटालेसे सामायिकमे इस तरह पाठका बोलना जो अपने आप भी पूरा मुश्किलसे समझ सके वह मुणमुणदोष है।

ये वचनके दस दोष कहे, अब कायके बारह दोष कहता हूँ।

१ अयोग्यआसनदोष—सामायिकमे पैरपर पैर चढाकर बैठना, यह श्रीगुरु आदिके प्रति अविनय आसनसे बैठना पहला अयोग्यआसनदोष है।

२ चलासनदोष—डगमगाते हुए आसनपर बैठकर सामायिक करना, अथवा जहाँसे बार बार उठना पडे ऐसे आसनपर बैठना चलासनदोष है।

३ चलदृष्टिदोष—कायोत्सर्गमे आँखोका चंचल होना चलदृष्टिदोष है।

४ सावद्यक्रियादोष—सामायिकमे कोई पाप-क्रिया अथवा उसकी संज्ञा करना सावद्यक्रिया-दोष है।

५ आलंबनदोष—भींत आदिका सहारा लेकर बैठना जिससे वहाँ बैठे हुए जीव जंतुओ आदिका नाश हो अथवा उन्हे पीडा हो और अपनेको प्रमादकी प्रवृत्ति हो यह आलंबनदोष है।

६ आकुंचनप्रसारणदोष—हाथ पैरका सिकोड़ना, लंबा करना आदि आकुंचनप्रसारणदोष है।

७ आलसदोष—अंगका मोडना, उँगलियोंका चटकाना आदि आलसदोष है ।

८ मोटनदोष—अँगुली वगैरहका टेढ़ी करना, उँगलियोंका चटकाना मोटनदोष है ।

९ मलदोष—घसड़ घसडकर सामायिकमें खुजाकर मैल निकालना मलदोष है ।

१० विमासणदोष—गलेमें हाथ डालकर बैठना इत्यादि विमासणदोष है ।

११ निद्रादोष—सामायिकमें नींद आना निद्रादोष है ।

१२ वस्त्रसंकोचनदोष—सामायिकमे ठंड वगैरेके भयसे वस्त्रसे शरीरका सिकोड़ना वस्त्र-संकोचनदोष है ।

इन बत्तीस दोषोसे रहित सामायिक करना चाहिये । सामायिकके पॉच अतीचारोको हटाना चाहिये ।

३९ सामायिकविचार

(३)

एकाग्रता और सावधानकि विना इन बत्तीस दोषोमेंसे कोई न कोई दोष लग जाते है । विज्ञान-वेत्ताओंने सामायिकका जघन्य प्रमाण दो घडी बॉधा है । यह व्रत सावधानीपूर्वक करनेसे परमशांति देता है । बहुतसे लोगोका जब यह दो घडीका काल नहीं बीतता तब वे बहुत व्याकुल होते है । सामायिकमे खाली बैठनेसे काल बीत भी कैसे सकता है ? आधुनिक कालमे सावधानीसे सामायिक करनेवाले बहुत ही थोड़े लोग हैं । जब सामायिकके साथ प्रतिक्रमण करना होता है, तब तो समय बीतना सुगम होता है । यद्यपि ऐसे पामर लोग प्रतिक्रमणको लक्षपूर्वक नहीं कर सकते, तो भी केवल खाली बैठनेकी अपेक्षा इसमे कुछ न कुछ अन्तर अवश्य पड़ता है । जिन्हें सामायिक भी पूरा नहीं आता, वे बिचारे सामायिकमे बहुत घबडाते हैं । बहुतसे भारीकर्मी लोग इस अवसरपर व्यवहारके प्रपंच भी घड़ डालते हैं । इससे सामायिक बहुत दूषित होता है ।

सामायिकका विधिपूर्वक न होना इसे बहुत खेदकारक और कर्मकी बाहुल्यता समझना चाहिये । साठ घडीके दिनरात व्यर्थ चले जाते हैं । असंख्यात दिनोसे परिपूर्ण अनतो कालचक्र व्यतीत करने-पर भी जो सिद्ध नहीं होता, वह दो घडीके विशुद्ध सामायिकसे सिद्ध हो जाता है । लक्षपूर्वक सामायिक करनेके लिये सामायिकमें प्रवेश करनेके पश्चात् चार लोगस्ससे अधिक लोगस्सका कायोत्सर्ग करके चित्तकी कुछ स्वस्थता प्राप्त करनी चाहिये, और बादमे सूत्रपाठ अथवा किसी उत्तम ग्रंथका मनन करना चाहिये । वैराग्यके उत्तम श्लोकोंको पढ़ना चाहिये, पहिलेके अध्ययन किये हुएको स्मरण कर जाना चाहिये और नूतन अभ्यास हो सके तो करना चाहिये, तथा किसीको शास्त्रके आधारसे उपदेश देना चाहिये । इस प्रकार सामायिकका काल व्यतीत करना चाहिये । यदि मुनिराजका समागम हो, तो आगमकी वाणी सुनना और उसका मनन करना चाहिये । यदि ऐसा न हो, और शास्त्रोंका परिचय भी न हो, तो विचक्षण अभ्यासियोंके पास वैराग्य-बोधक उपदेश श्रवण करना चाहिये, अथवा कुछ अभ्यास करना चाहिये । यदि ये सब अनकूलताये न हो, तो कुछ भाग ध्यानपूर्वक कायोत्सर्गमें लगाना चाहिये, और कुछ भाग महापुरुषोंकी चरित्र-कथा सुननेमें उपयोगपूर्वक लगाना चाहिये, परन्तु जैसे बने तैसे विवेक और उत्साहसे सामायिकके कालको व्यतीत करना चाहिये । यदि हेत्य न हो, तो पंचपरमेष्ठीमंत्रकी जाप ही उत्साहपूर्वक करनी चाहिये । परन्तु कालको व्यर्थ

नही गँवाना चाहिये । धीरजसे, शान्तिसे और यतनासे सामायिक करना चाहिये । जैसे बने तैसे सामायिकमे शास्त्रका परिचय बढाना चाहिये ।

साठ घड़ीके अहोरात्रमेसे दो घड़ी अवश्य बचाकर समायिक तो सद्भावसे करो !

४० प्रतिक्रमणविचार

प्रतिक्रमणका अर्थ पीछे फिरना–फिरसे देख जाना–होता है । भावकी अपेक्षा जिस दिन और जिस वक्त प्रतिक्रमण करना हो, उस वक्तसे पहले अथवा उसी दिन जो जो दोष हुए हो उन्हे एकके बाद एक अंतरात्मासे देख जाना और उनका पश्चात्ताप करके उन दोषोसे पीछे फिरना इसको प्रतिक्रमण कहते है ।

उत्तम मुनि और भाविक श्रावक दिनमे हुए दोषोका संध्याकालमे और रात्रिमे हुए दोषोका रात्रिके पिछले भागमें अनुक्रमसे पश्चात्ताप करते है अथवा उनकी क्षमा माँगते है, इसीका नाम यहाँ प्रतिक्रमण है । यह प्रतिक्रमण हमे भी अवश्य करना चाहिये, क्योंकि यह आत्मा मन, वचन और कायके योगसे अनेक प्रकारके कर्मोको बाँधती है । प्रतिक्रमण सूत्रमे इसका दोहन किया गया है । जिससे दिनरातमे हुए पापका पश्चात्ताप हो सकता है । शुद्ध भावसे पश्चात्ताप करनेसे इसके द्वारा लेशमात्र पाप भी होनेपर परलोक-भय और अनुकंपा प्रगट होती है, आत्मा कोमल होती है, और त्यागने योग्य वस्तुका विवेक आता जाता है । भगवान्‌की साक्षीसे अज्ञान आदि जिन जिन दोषोका विस्मरण हुआ हो उनका भी पश्चात्ताप हो सकता है । इस प्रकार यह निर्जरा करनेका उत्तम साधन है ।

प्रतिक्रमणका नाम आवश्यक भी है । अवश्य ही करने योग्यको आवश्यक कहते है; यह सत्य है । उसके द्वारा आत्माकी मलिनता दूर होती है, इसलिये इसे अवश्य करना चाहिये ।

सायंकालमे जो प्रतिक्रमण किया जाता है, उसका नाम 'देवसीयपडिक्कमण' अर्थात् दिवस संबंधी पापोका पश्चात्ताप है, और रात्रिके पिछले भागमे जो प्रतिक्रमण किया जाता है, उसे 'राइयपडिक्कमण' कहते है । 'देवसीय' और 'राइय' ये प्राकृत भाषाके शब्द है । पक्षमे किये जानेवाले प्रतिक्रमणको पाक्षिक, और सवत्सरमे किये जानेवालेको सांवत्सरिक (छमछरी) प्रतिक्रमण कहते है । सत्पुरुषोकी योजना द्वारा बाँधा हुआ यह सुदर नियम है ।

बहुतसे सामान्य बुद्धिके लोग ऐसा कहते है, कि दिन और रात्रिका इकट्ठा प्रायश्चित्तरूप प्रतिक्रमण सबेरे किया जाय तो कोई बुराई नहीं । परन्तु ऐसा कहना प्रामाणिक नहीं है, क्योंकि यदि रात्रिमे अकस्मात् कोई कारण आ जाय, अथवा मृत्यु हो जाय, तो दिनका प्रतिक्रमण भी रह जाय ।

प्रतिक्रमण-सूत्रकी योजना बहुत सुंदर है । इसका मूल तत्त्व बहुत उत्तम है । जसे बने तैसे प्रतिक्रमण धीरजसे, समझमे आ सकनेवाली भाषासे, शांतिसे, मनकी एकाग्रतासे और यतनापूर्वक करना चाहिये ।

४१ भिखारीका खेद

(१)

एक पामर भिखारी जंगलमे भटकता फिरता था । वहाँ उसे भूख लगी । वह बिचारा लड़खड़ाता हुआ एक नगरमे एक सामान्य मनुष्यके घर पहुँचा । वहाँ जाकर उसने अनेक प्रकारसे प्रार्थना

की। उसकी प्रार्थनापर करुणा करके उस गृहस्थकी स्त्रीने उसको घरमे जीमनेसे बचा हुआ मिष्टान्न ला कर दिया। भोजनके मिलनेसे भिखारी बहुत आनंदित होता हुआ नगरके बाहर आया, और एक वृक्षके नीचे बैठ गया। वहाँ ज़रा साफ करके उसने एक तरफ़ अत्यन्त पुराना अपना पानीका घड़ा रख दिया। एक तरफ अपनी फटी पुरानी मैली गूदड़ी रक्खी, और दूसरी तरफ वह स्वयं उस भोजनको लेकर बैठा। खुशी खुशीके साथ उसने उस भोजनको खाकर पूरा किया। तत्पश्चात् सिराने एक पत्थर रखकर वह सो गया। भोजनके मदसे ज़रा देरमे भिखारीकी आँखें मिच गई। वह निद्राके वश हुआ। इतनेमे उसे एक स्वप्न आया। उसे ऐसा लगा कि उसने मानो महा राजऋद्धिको प्राप्त कर लिया है, सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये है, समस्त देशमें उसकी विजयका डंका बज गया है, समीपमें उसकी आज्ञा उठानेके लिये अनुचर लोग खड़े हुए हैं, आस-पासमें छड़ीदार क्षेम क्षेम पुकार रहे है। वह एक रमणीय महलमें सुन्दर पलंगपर लेटा हुआ है, देवागना जैसी स्त्रियाँ उसके पैर दबा रही है, एक तरफसे पँखेकी मद मंद पवन ढुल रही है। इस स्वप्नमें भिखारीकी आत्मा चढ गई। उस स्वप्नका भोग करते हुए वह रोमाँचित हो गया। इतनेमे मेघ महाराज चढ़ आये, बिजली चमकने लगी, सूर्य बादलोसे ढँक गया, सब जगह अंधकार फैल गया। ऐसा मालूम हुआ कि मूसलाधार वर्षा होगी, और इतनेमें बिजलीकी गर्जनासे एक ज़ोरका कड़ाका हुआ। कड़ाकेकी आवाजसे भयभीत होकर वह पामर भिखारी जाग उठा।

४२ भिखारीका खेद

(२)

तो देखता क्या है कि जिस जगहपर पानीका फूटा हुआ घड़ा पड़ा था, उसी जगह वह पड़ा हुआ है, जहाँ फटी पुरानी गूदड़ी पड़ी थी वह वहीं पड़ी है, उसने जैसे मैले और फटे हुए कपड़े पहने थे, वैसेके वैसे ही वे वस्त्र उसके शरीरके ऊपर हैं। न तिलभर कुछ बढ़ा, और न जौंभर घटा, न वह देश, न वह नगरी; न वह महल, न वह पलंग; न वे चामर छत्र ढोरनेवाले और न वे छड़ीदार; न वे स्त्रियाँ और न वे वस्त्रालंकार; न वह पँखा और न वह पवन, न वे अनुचर और न वह आज्ञा, न वह सुखविलास और न वह मदोन्मत्तता। बिचारा वह तो स्वयं जैसा था वैसाका वैसा ही दिखाई दिया। इस कारण इस दृश्यको देखकर उसे खेद हुआ। स्वप्नमे मैंने मिथ्या आडबर देखा और उससे आनद माना, परन्तु उसमें का तो यहाँ कुछ भी नहीं। मैंने स्वप्नके भोगोंको भोगा नहीं, किन्तु उसके परिणामरूप खेदको मै भोग रहा हूँ। इस प्रकार वह पामर जीव पश्चात्तापमे पड़ गया।

अहो भव्यो ! भिखारीके स्वप्नकी तरह ससारका सुख अनित्य है। जैसे उस भिखारीने स्वप्नमे सुख-समूहको देखा और आनंद माना, इसी तरह पामर प्राणी संसार-स्वप्नके सुख-समूहमे आनंद मानते हैं। जैसे वह सुख जागनेपर मिथ्या मालूम हुआ, उसी प्रकार ज्ञान प्राप्त होनेपर संसारके सुख मिथ्या मालूम होते हैं। स्वप्नके भोगोंको न भोगनेपर भी जैसे भिखारीको खेदकी प्राप्ति हुई, वैसे ही [illegible] प्राणी संसारमें सुख मान बैठते हैं, और उसे भोगे हुएके समान गिनते हैं। परन्तु परिणाममें

वे खेद, दुर्गति और पश्चात्ताप ही प्राप्त करते है। भोगोके चपल और विनाशीक होनेके कारण स्वप्नके खेदके समान उनका परिणाम होता है। इसके ऊपरसे बुद्धिमान् पुरुष आत्म हितको खोजते है। संसारकी अनित्यताके ऊपर एक काव्य है:—

उपजाति

विद्युत् लक्ष्मी प्रभुता पतग, आयुष्य ते तो जळना तरंग,
पुरंदरी चाप अनंगरंग, शूं राचिये त्यां क्षणनो प्रसंग ?

विशेपार्थ:—लक्ष्मी बिजलीके समान है। जैसे बिजलीकी चमक उत्पन्न होकर विलीन हो जाती है, उसी तरह लक्ष्मी आकर चली जाती है। अधिकार पतंगके रंगके समान है। जैसे पतंगका रँग चार दिनकी चाँदनी है, वैसे ही अधिकार केवल थोड़े काल तक रहकर हाथमेसे जाता रहता है। आयु पानीकी लहरोके समान है। जैसे पानीकी हिलोरे इधर आई कि उधर निकल गई, इसी तरह जन्म पाया, और एक देहमे रहने पाया अथवा नहीं, कि इतने हीमे इसे दूसरी देहमे जाना पड़ता है। काम-भोग आकाशमे उत्पन्न हुए इन्द्र-धनुषके समान है। जैसे इद्र-धनुष वर्षाकालमें उत्पन्न होकर क्षण-भरमे विलीन हो जाता है, उसी तरह यौवनमे कामके विकार फलीभूत होकर जरा-वयमे जाते रहते हैं। संक्षेपमें, हे जीव! इन समस्त वस्तुओका सबंध क्षणभरका है। इसमे प्रेम-बंधनकी साँकलसे बँधकर मग्न क्या होना? तात्पर्य यह है, कि ये सब चपल और विनाशीक हैं, तू अखंड और अविनाशी है, इसलिये अपने जैसी वस्तुको प्राप्त कर, यही उपदेश यथार्थ है।

४३ अनुपम क्षमा

क्षमा अंतर्शत्रुको जीतनेमें खड्ग है; पवित्र आचारकी रक्षा करनेमे बख्तर है। शुद्ध भावसे असह्य दुःखमे सम परिणामसे क्षमा रखनेवाला मनुष्य भव-सागरसे पार हो जाता है।

कृष्ण वासुदेवका गजसुकुमार नामका छोटा भाई महास्वरूपवान और सुकुमार था। वह केवल बारह वर्पकी वयमे भगवान् नेमिनाथके पास संसार-त्यागी होकर स्मशानमे उग्र ध्यानमे अवस्थित था। उस समय उसने एक अद्भुत क्षमामय चरित्रसे महासिद्धि प्राप्त की उसे मै यहाँ कहता हूँ।

सोमल नामके ब्राह्मणकी सुन्दरवर्णसंपन्न पुत्रीके साथ गजसुकुमारकी सगाई हुई थी। परन्तु विवाह होनेके पहले ही गजसुकुमार संसार त्याग कर चले गये। इस कारण अपनी पुत्रीके सुखके नाश होनेके द्वेषसे सोमल ब्राह्मणको भयंकर क्रोध उत्पन्न हुआ। वह गजसुकुमारकी खोज करते करते उस स्मशानमे आ पहुँचा, जहाँ महा मुनि गजसुकुमार एकाग्र विशुद्ध भावसे कायोत्सर्गमे लीन थे। सोमलने कोमल गजसुकुमारके सिरपर चिकनी मिट्टीकी बाड़ बना कर इसके भीतर धधकते हुए अंगारे भरे, और इसे ईधनसे पूर दिया। इस कारण गजसुकुमारको महाताप उत्पन्न हुआ। जब गजसुकुमारकी कोमल देह जलने लगी, तब सोमल वहाँसे चल दिया। उस समयके गजसुकुमारके असह्य दुःखका वर्णन कैसे हो सकता है! फिर भी गजसुकुमार समभाव परिणामसे रहे। उनके हृदयमें कुछ भी क्रोध अथवा द्वेष उत्पन्न नहीं हुआ। उन्होंने अपनी आत्माको स्थितिस्थापक दशामे लाकर यह उपदेश दिया, कि देख यदि तूने इस ब्राह्मणकी पुत्रीके साथ विवाह किया होता तो यह कन्या-दानमे तुझे पगडी देता। यह पगड़ी थोड़े दिनोमें फट जाती और अन्तमे दुःखदायक होती। किन्तु यह इसका बहुत बडा उपकार हुआ, कि इस पगड़ीके बदले इसने मोक्षकी पगड़ी बाँध दी। ऐसे विशुद्ध परिणामोसे अडग रहकर समभावसे असह्य

वेदना सहकर गजसुकुमारने सर्वज्ञ सर्वदर्शी होकर अनंतजीवन सुखको पाया । कैसी अनुपम क्षमा और कैसा उसका सुंदर परिणाम ! तत्त्वज्ञानियोंका कथन है कि आत्माओको केवल अपने सद्भावमे आना चाहिये, और आत्मा अपने सद्भावमें आयी कि मोक्ष हथेलीमें ही है । गजसुकुमारकी प्रसिद्ध क्षमा कैसी शिक्षा देती है !

४४ राग

श्रमण भगवान् महावीरके मुख्य गणधर गौतमका नाम तुमने वहुत वार सुना है । गौतम-स्वामीके उपदेश किये हुए वहुतसे शिष्योके केवलज्ञान पानेपर भी स्वयं गौतमको केवलज्ञान न हुआ; क्योकि भगवान् महावीरके अंगोपाग, वर्ण, रूप इत्यादिके ऊपर अव भी गौतमको मोह था । निर्ग्रंथ प्रवचनका निष्पक्षपाती न्याय ऐसा है कि किसी भी वस्तुका राग दु:खदायक होता है । राग ही मोह है और मोह ही संसार है । गौतमके हृदयसे यह राग जवतक दूर न हुआ तवतक उन्हे केवलज्ञानकी प्राप्ति न हुई । श्रमण भगवान् ज्ञातपुत्रने जव अनुपमेय सिद्धि पाई उस समय गौतम नगरमेंसे आ रहे थे । भगवान्के निर्वाण समाचार सुनकर उन्हे खेद हुआ । विरहसे गौतमने ये अनुरागपूर्ण वचन कहे " हे महावीर ! आपने मुझे साथ तो न रक्खा, परन्तु मुझे याद तक भी न किया । मेरी प्रीतिके सामने आपने दृष्टि भी नहीं की, ऐसा आपको उचित न था। " ऐसे विकल्प होते होते गौतमका लक्ष फिरा और वे निराग-श्रेणी चढे । " मै वहुत मूर्खता कर रहा हूँ । ये वीतराग, निर्विकारी और रागहीन है, वे मुझपर मोह कैसे रख सकते है ? उनकी शत्रु और मित्रपर एक समान दृष्टि थी । मैं इन रागहीनका मिथ्या मोह रखता हूँ । मोह संसारका प्रवल कारण है। " ऐसे विचारते विचारते गौतम शोकको छोड़कर राग रहित हुए। तत्क्षण ही गौतमको अनंतज्ञान प्रकाशित हुआ और वे अंतमें निर्वाण पधारे ।

गौतम मुनिका राग हमें वहुत सूक्ष्म उपदेश देता है । भगवान्के ऊपरका मोह गौतम जैसे गणधरको भी दु:खदायक हुआ तो फिर संसारका और उसमें भी पामर आत्माओका मोह कैसा अनंत दु:ख देता होगा ! संसाररूपी गाड़ीके राग और द्वेष रूपी दो वैल हैं । यदि ये न हों, तो संसार अटक जाय । जहाँ राग नहीं वहाँ द्वेष भी नहीं, यह माना हुआ सिद्धात है । राग तीव्र कर्मवंधका कारण है और इसके क्षयसे आत्म-सिद्धि है ।

४५ सामान्य मनोरथ

मोहिनीभावके विचारोके अधीन होकर नयनोंसे परनारीको न देखूँ, निर्मल तात्त्विक लोभको पाकर दूसरेके वैभवको पत्थरके समान समझूँ । वारह व्रत और दीनता धारण करके स्वरूपको विचारकर सात्विक वनूँ । यह मेरा सदा क्षेम करनेवाला और भवका हरनेवाला नियम नित्य अखंड रहे ॥ १ ॥

---

४५ सामान्य मनोरथ

सवैया

मोहिनीभाव विचार अधीन थई, ना निरखुं नयने परनारी,
पत्थरतुल्य गणुं परवैभव, निर्मळ तात्त्विक लोभ समारी;
बारव्रत अने दीनता धरी, सात्त्विक थाउं स्वरूप विचारी;
ए प्रण नेम सदा शुभ क्षेमक, नित्य अखंड रहो भवहारी ॥ १ ॥

उन त्रिशलातनयको मनसे चिंतवन करके, ज्ञान, विवेक और विचारको बढ़ाऊँ; नित्य नौ तत्त्वोंका विशोधन करके अनेक प्रकारके उत्तम उपदेशोंका मुखसे कथन करूँ; जिससे संशयरूपी बीजका मनके भीतर उदय न हो ऐसे जिन भगवान्‌के कथनका सदा अवधारण करूँ। हे **रा**यचन्द्र, सदा मेरा यही मनोरथ है, इसे धारणकर, मोक्ष मिलेगा ॥ २ ॥

४६ कपिलमुनि

(१)

कौशाम्बी नामकी एक नगरी थी। वहाँके राजदरबारमे राज्यका आभूषणरूप काश्यप नामका एक शास्त्री रहता था। इसकी स्त्रीका नाम नाम श्रीदेवी था। उसके उदरसे कपिल नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। कपिल जब पन्द्रह वर्षका हुआ उस समय उसका पिता परलोक सिधारा। कपिल लाड प्यारमे पाले जानेके कारण कोई विशेष विद्वत्ता प्राप्त न कर सका, इसलिये इसके पिताकी जगह किसी दूसरे विद्वान्‌को मिली। काश्यप शास्त्री जो पूँजी कमाकर रख गया था, उसे कमानेमे अशक्त कपिलने खाकर पूरी कर डाली। श्रीदेवी एक दिन घरके द्वारपर खडी थी कि इतनेमे उसने दो चार नौकरो सहित अपने पतिकी शास्त्रीय पदवीपर नियुक्त विद्वान्‌को उधरसे जाता हुआ देखा। बड़े मानसे जाते हुए इस शास्त्रीको देखकर श्रीदेवीको अपनी पूर्वस्थितिका स्मरण हो आया। जिस समय मेरा पति इस पदवीपर था, उस समय मै कैसा सुख भोगती थी! यह मेरा सुख गया सो गया, परन्तु मेरा पुत्र भी पूरा नहीं पढा। ऐसे विचारमे घूमते घूमते उसकी आँखोमेसे पट पट आँसू गिरने लगे। इतनेमे फिरते फिरते वहाँ कपिल आ पहुँचा। श्रीदेवीको रोती हुई देखकर कपिलने रोनेका कारण पूँछा। कपिलके बहुत आग्रहसे श्रीदेवीने जो बात थी वह कह दी। फिर कपिलने कहा, " देख माँ! मै बुद्धिशाली हूँ, परन्तु मेरी बुद्धिका उपयोग जैसा चाहिये वैसा नही हो सका। इसलिये विद्याके बिना मैने यह पदवी नहीं प्राप्त की। अब तू जहाँ कहे मै वहाँ जाकर अपनेसे बनती विद्याको सिद्ध करूँ।" श्रीदेवीने खेदसे कहा, " यह तुझसे नही हो सकता, अन्यथा आर्यावर्तकी सीमापर स्थित श्रावस्ति नगरीमे इन्द्रदत्त नामका तेरे पिताका मित्र रहता है, वह अनेक विद्यार्थियोको विद्यादान देता है। यदि तू वहाँ जा सके तो इष्टकी सिद्धि अवश्य हो।" एक दो दिन रुककर सब तैयारी कर 'अस्तु' कहकर कपिलजीने रास्ता पकडा।

अवधि बीतनेपर कपिल श्रावस्तीमे शास्त्रीजीके घर आ पहुँचे। उन्होने प्रणाम करके शास्त्रीजीको अपना इतिहास कह सुनाया। शास्त्रीजीने अपने मित्रके पुत्रको विद्यादान देनेके लिये बहुत आनंद दिखाया; परन्तु कपिलके पास कोई पूँजी न थी, जिससे वह उसमेंसे खाता और अभ्यास कर सकता। इस कारण उसे नगरमे माँगनेके लिये जाना पडता था। माँगते माँगते उसे दुपहर हो जाता था, बादमे वह रसोई करता, और भोजन करनेतक साँझ होनेमे कुछ ही देर बाकी रह जाती थी। इस कारण वह

ते त्रिशलातनये मन चिंतवि, ज्ञान, विवेक, विचार वधारु,
नित्य विशोध करी नव तत्त्वनो, उत्तम बोध अनेक उच्चारुं,
संशयबीज उगे नहीं अदर, जे जिनना कथनो अवधारुं,
राज्य, सदा मुज एज मनोरथ, धार थशे अपवर्ग, उतारुं ॥२॥

कुछ अभ्यास नहीं कर सकता था। पंडितजीने अभ्यास न करनेका कारण पूँछा, तो कपिलने सब कह दिया। पंडितजी कपिलको एक गृहस्थके पास ले गये। उस गृहस्थने कपिलपर अनुकंपा करके एक विधवा ब्राह्मणीके घर इसे हमेशा भोजन मिलते रहनेकी व्यवस्था कर दी। उससे कपिलकी एक चिन्ता कम हुई।

४७ कपिलमुनि

(२)

जहाँ एक छोटी चिंता कम हुई, वहाँ दूसरी बड़ी जंजाल खडी हो गई। भोला कपिल अब युवा हो गया था, और जिस विधवाके घर वह भोजन करने जाता था वह विधवा बाई भी युवती थी। विधवाके साथ उसके घरमें दूसरा कोई आदमी न था। हमेशकी परस्परकी बातचीतसे दोनोंमें संबंध बढ़ा, और बढ़कर हास्य विनोदरूपमे परिणत हो गया। इस प्रकार होते होते दोनोंमें गाढ प्रीति बँधी। कपिल उसमें लुब्ध हो गया। एकात बहुत अनिष्ट चीज है!

कपिल विद्या प्राप्त करना भूल गया। गृहस्थकी तरफसे मिलने वाले सीदेसे दोनोंका मुश्किलसे निर्वाह होता था, कपड़े लत्तेकी भी बाधा होने लगी। कपिल गृहस्थाश्रम जैसा बना बैठे थे। कुछ भी हो, फिर भी लघुकर्मी जीव होनेसे कपिलको संसारके विशेष प्रपंचकी खबर भी न थी। इसलिये पैसा कैसे पैदा करना इस बातको वह विचारा जानता भी न था। चचल स्त्रीने उसे रास्ता बताया कि घबड़ानेसे कुछ न होगा, उपायसे सिद्धि होती है। इस गाँवके राजाका ऐसा नियम है, कि सबेरे सबसे पहले जाकर जो ब्राह्मण उसे आशीर्वाद दे, उसे दो माशे सोना मिलेगा। यदि तुम वहाँ जा सको और पहले आशीर्वाद दे सको तो यह दो मासा सोना मिल सकता है। कपिलने इस बातको स्वीकार की। कपिलने आठ दिनतक धक्के खाये परन्तु समय बीत जानेपर पहुँचनेसे उसे कुछ सफलता न मिलती थी। एक दिन उसने ऐसा निश्चय किया, कि यदि मैं चौकमे सोऊँ तो चिन्ताके कारण उठ बैठूँगा। वह चौकमें सोया। आधी रात बीतनेपर चन्द्रका उदय हुआ। कपिल प्रभात समीप जान मुट्ठी बाँधकर आशीर्वाद देनेके लिये दौड़ते हुए जाने लगा। रक्षपालने उसे चोर जानकर पकड़ लिया। लेनेके देने पड़ गये। प्रभात हुआ, रक्षपालने कपिलको ले जाकर राजाके समक्ष खड़ा किया। कपिल बेसुध जैसा खड़ा रहा। राजाको उसमें चोरके लक्षण दिखाई नहीं दिये। इसलिये राजाने सब वृत्तात पूँछा। चंद्रके प्रकाशको सूर्यके समान गिननेवालेके भोलेपनपर राजाको दया आई। उसकी दरिद्रताको दूर करनेकी राजाकी इच्छा हुई इसलिये उसने कपिलसे कहा कि यदि आशीर्वादके कारण तुझे इतनी अधिक झझट करनी पड़ी है तो अब तू अपनी इच्छानुसार माँग ले। मैं तुझे दूँगा। कपिल थोडी देर तक मूढ़ जैसा हो गया। इससे राजाने कहा, क्यों विप्र! माँगते क्यों नहीं? कपिलने उत्तर दिया, मेरा मन अभी स्थिर नहीं हुआ, इसलिये क्या माँगू यह नहीं सूझता। राजाने सामनेके बागमें जाकर वहाँ बैठकर स्वस्थतापूर्वक विचार करके कपिलको माँगनेके लिये कहा। कपिल बागमे जाकर विचार करने बैठा।

४८ कपिलमुनि

(३)

जिसे दो मासा सोना लेनेकी इच्छा थी वह कपिल अब तृष्णाकी तरंगोमे बह गया। जब उसने पॉच मोहरे मॉगनेकी इच्छा की तो उसे विचार आया कि पाँच मोहरोसे कुछ पूरा नहीं होगा। इसलिये पच्चीस मोहरे मॉगना ठीक है। यह विचार भी बदला। पच्चीस मोहरोसे कुछ पूरा वर्ष नहीं कटेगा, इसलिये सौ मोहरे मॉगना चाहिये। यह विचार भी बदला। सौ मोहरोसे दो वर्ष तक वैभव भोगेगे, फिर दुःखका दुःख ही है। अतएव एक हजार मोहरोकी याचना करना ठीक है। परन्तु एक हजार मोहरे, बाल-बच्चोके दो चार खर्च आये, कि खतम हो जायँगी, तो पूरा भी क्या पड़ेगा। इसलिये दस हजार मोहरे मॉगना ठीक है, जिससे कि जिन्दगी भर भी चिंता न हो। यह भी इच्छा बदली। दस हजार मोहरे खा जानेके बाद फिर पूँजीके बिना रहना पड़ेगा। इसलिये एक लाख मोहरोकी मॉँगनी करूँ कि जिसके व्याजमे समस्त वैभवको भोग सकूँ। परन्तु हे जीव! लक्षाधिपति तो बहुत है, इसमे मैं प्रसिद्ध कहॉसे हो सकता हूँ। अतएव करोड़ मोहरे मॉगना ठीक है, कि जिससे मै महान् श्रीमन्त कहा जाऊॅ। फिर पीछे रंग बदला। महान् श्रीमंतपनेसे भी घरपर अमलदारी नहीं कही जा सकती। इसलिये राजाका आधा राज्य मॉँगना ठीक है। परन्तु यदि मै आधा राज्य मॉगूगा तो राजा मेरे तुल्य गिना जावेगा और इसके सिवाय मै उसका याचक भी गिना जाऊँगा। इसलिये मॉगना तो फिर समस्त राज्य ही मॉगना चाहिये। इस तरह कपिल तृष्णामे डूबा। परन्तु वह था तुच्छ संसारी, इससे फिरसे पीछे लौटा। भला जीव! ऐसी कृतघ्नता क्यो करनी चाहिये कि जो तेरी इच्छानुसार देनेके लिये तत्पर हो, उसका ही राज्य ले लूँ और उसे ही भ्रष्ट करूँ। वास्तवमे देखनेसे तो इसमे अपनी ही भ्रष्टता है। इसलिये आधा राज्य मॉगना ठीक है। परन्तु इस उपाधिकी भी मुझे आवश्यकता नही। फिर रुपये पैसेकी उपाधि ही क्या है? इसलिये करोड़ लाख छोड़कर सौ दोसौ मोहरे ही मॉग लेना ठीक है। जीव! सौ दोसौ मोहरे मिलेगी तो फिर विषय वैभवमे ही समय चला जायगा, और विद्याभ्यास भी धरा रहेगा। इसलिये अब पॉच मोहरे ले लो, पीछेकी बात पीछे। अरे! पॉच मोहरोकी भी अभी हालमे अब कोई आवश्यकता नही। तू केवल दो मासा सोना लेने आया था उसे ही मॉग ले। जीव! यह तो तो बहुत हुई। तृष्णा-समुद्रमे तूने बहुत डुबकियॉ लगाई। समस्त राज्य मॉगनेसे भी जो तृष्णा नही बुझती थी उसे केवल संतोष और विवेकसे घटाया तो घटी। यह राजा यदि चक्रवर्ती होता, तो फिर मै इससे विशेष क्या मॉग सकता था और विशेष जबतक न मिलता तबतक मेरी तृष्णा भी शान्त न होती। जबतक तृष्णा शान्त न होती, तबतक मै सुखी भी न होता। जब इतनेसे यह मेरी तृष्णा शान्त न हुई तो फिर दो मासे सोनेसे कैसे शान्त हो सकती है? कपिलकी आत्मा ठिकाने आई और वह बोला, अब मुझे इस दो मासे सोनेका भी कुछ काम नहीं। दो माससे बढ़कर मै कितनेतक पहुँच गया! सुख तो संतोषमे ही है। तृष्णा संसार-वृक्षका बीज है। हे जीव! इसकी तुझे क्या आवश्यकता है? विद्या ग्रहण करता हुआ तू विषयमे पड़ गया; विषयमे पड़नेसे इस उपाधिमे पड़ गया; उपाधिके कारण तू अनन्त-तृष्णा समुद्रमे पड़ा। एक उपाधिमेसे इस संसारमे ऐसी अनन्त उपाधियॉ सहन करनी पड़ती

हैं। इस कारण इसका त्याग करना ही उचित है। सत्य संतोषके समान निरुपाधिक सुख एक भी नहीं। ऐसे विचारते विचारते, तृष्णाके शमन करनेसे उस कपिलके अनेक आवरणोका क्षय हुआ, उसका अंतःकरण प्रफुल्लित और बहुत विवेकशील हुआ। विवेक विवेकमें ही उत्तम ज्ञानसे वह अपनी आत्माका विचार कर सका। उसने अपूर्व श्रेणी चढ़कर केवलज्ञानको प्राप्त किया।

तृष्णा कैसी कनिष्ठ वस्तु है! ज्ञानी ऐसा कहते हैं कि तृष्णा आकाशके समान अनत है, वह निरतर नवयौवनमें रहती है। अपनी चाह जितना कुछ मिला कि उससे चाह और भी बढ़ जाती है। संतोप ही कल्पवृक्ष है, और यही प्रत्येक मनोवाछाको पूर्ण करता है।

४९ तृष्णाकी विचित्रता

(एक गरीबकी बढ़ती हुई तृष्णा)

जिस समय दीनताई थी उस समय ज़मीदारी पानेकी इच्छा हुई, जब ज़मीदारी मिली तो सेठाई पानेकी इच्छा हुई, जब सेठाई प्राप्त हो गई तो मत्री होनेकी इच्छा हुई, जब मंत्री हुआ तो राजा बननेकी इच्छा हुई। जब राज्य मिला, तो देव बननेकी इच्छा हुई, जब देव हुआ तो महादेव होनेकी इच्छा हुई। अहो रायचन्द्र! वह यदि महादेव भी हो जाय तो भी तृष्णा तो बढ़ती ही जाती है, मरती नहीं, ऐसा मानो ॥ १ ॥

मुँहपर झुर्रियाँ पड गईं, गाल पिचक गये, काली केशकी पट्टियाँ सफेद पड़ गईं, सूँघने, सुनने और देखनेकी शक्तियाँ जातीं रहीं, और दाँतोंकी पक्तियाँ खिर गईं अथवा घिस गईं, कमर टेढी हो गई, हाड़-माँस सूख गये, शरीरका रँग उड़ गया, उठने बैठनेकी शक्ति जाती रही, और चलनेमे हाथमे लकडी लेनी पड गई। अरे! रायचन्द्र, इस तरह युवावस्थासे हाथ धो बैठे, परन्तु फिर भी मनसे यह राँड ममता नहीं मरी ॥ २ ॥

करोडोके कर्जका सिरपर डका वज रहा है, शरीर सूखकर रोगसे रुँध गया है, राजा भी पीड़ा देनेके लिये मौका तक रहा है और पेट भी पूरी तरहसे नहीं भरा जाता। उसपर माता पिता और

---

४९ तृष्णानी विचित्रता

(एक गरीबनी वधती गयेली तृष्णा)

मनहर छंद

हती दीनताई त्यारे ताकी पटेलाई अने, मळी पटेलाई त्यारे ताकी छे शेठाईने,
सांपडी शेठाई त्यारे ताकी मन्त्रिताई अने, आवी मन्त्रिताई त्यारे ताकी नृपताईने।
मळी नृपताई त्यारे ताकी देवताई अने, दीठी देवताई त्यारे ताकी शंकराईने,
अहो! राज्यचन्द्र मानो मानो शंकराई मळी, वधे तृष्णाई तोय जाय न मराईने ॥ १ ॥

करोचली पडी दाढी डाचातणो दाट वळ्यो, काळी केशपटी विषे, श्वेतता छवाई गई,
सूंघवु, सांभळवु ने, देखवु ते मांडी वाळ्यु, तेम दांत आवली ते, खरी, के खवाई गई।
वळी केड वांकी, हाड गयां, अंगरंग गयो, उठवानी आय जतां लाकडी लेवाई गई,
अरे! राजचन्द्र एम, युवानी हराई पण, मनथी न तोय रांड, ममता मराई गई ॥ २ ॥

करोडोना करजना, शीर पर डंका वागे, रोगथी रुंधाई गयु, शरीर सुकाईने,
पुरपति पण माथे, पीडवाने ताकी रह्यो, पेट तणी वेठ पण शके न पुराईने।

स्त्री अनेक प्रकारकी उपाधि मचा रहे हैं, दुःखदायी पुत्र और पुत्री खाऊँ खाऊँ कर रहे है । अरे रायचन्द्र ! तो भी यह जीव उधेड बुन किया ही करता है और इससे तृष्णाको छोड़कर जंजाल नहीं छोड़ी जाती ॥ ३ ॥

नाड़ी क्षीण पड़ गई, अवाचककी तरह पड़ रहा, और जीवन-दीपक निस्तेज पड़ गया । एक भाईने इसे अंतिम अवस्थामे पड़ा देखकर यह कहा, कि अब इस विचारेकी मिट्टी ठंडी हो जाय तो ठीक है । इतने पर उस बुड्ढेने खीजकर हाथको हिलाकर इशारेसे कहा, कि हे मूर्ख ! चुप रह, तेरी चतुराईपर आग लगे । अरे रायचन्द्र ! देखो देखो, यह आशाका पाश कैसा है ! मरते मरते भी बुड्ढेकी ममता नहीं मरी ॥ ४ ॥

५० प्रमाद

धर्मका अनादर, उन्माद, आलस्य, और कषाय ये सब प्रमादके लक्षण है ।

भगवान्ने उत्तराध्ययनसूत्रमे गौतमसे कहा है, कि हे गौतम ! मनुष्यकी आयु कुशकी नोकपर पड़ी हुई जलके बून्दके समान है । जैसे इस बून्दके गिर पडनेमे देर नहीं लगती, उसी तरह इस मनुष्य-आयुके बीतनमे देर नहीं लगती । इस उपदेशकी गाथाकी चौथी कडी स्मरणमे अवश्य रखने योग्य है–'**समयं गोयम मा पमायए**' । इस पवित्र वाक्यके दो अर्थ होते है । एक तो यह, कि हे गौतम ! समय अर्थात् अवसर पाकरके प्रमाद नहीं करना चाहिये, और दूसरा यह कि क्षण क्षणमे बीतते जाते हुए कालके असंख्यातवें भाग अर्थात् एक समयमात्रका भी प्रमाद न करना चाहिये, क्योंकि देह क्षणभंगुर है । काल-शिकारी सिरपर धनुष बाण चढ़ाकर खडा है । उसने शिकारको लिया अथवा लेगा बस यही दुविधा हो रही है । वहॉ प्रमाद करनेसे धर्म-कर्तव्य रह जायगा ।

अति विचक्षण पुरुष संसारकी सर्वोपाधि त्याग कर दिन रात धर्ममे सावधान रहते है, और पलभर भी प्रमाद नहीं करते । विचक्षण पुरुष अहोरात्रके थोड़े भागको भी निरंतर धर्म-कर्तव्यमे बिताते हैं, और अवसर अवसरपर धर्म-कर्तव्य करते रहते हैं । परन्तु मूढ पुरुष निद्रा, आहार, मौज, शौक, विकथा तथा राग रंगमें आयु व्यतीत कर डालते है । वे इसके परिणाममे अधोगति पाते हैं ।

जैसे बने तैसे यतना और उपयोगसे धर्मका साधन करना योग्य है । साठ घड़ीके अहोरात्रमे बीस घड़ी तो हम निद्रामें बिता देते है । बाकीकी चालीस घड़ी उपाधि, गप शप, और इधर उधर भटकनेमे बिता देते हैं । इसकी अपेक्षा इस साठ घड़ीके वक्तमेसे दो चार घड़ी विशुद्ध धर्म-कर्तव्यके लिये उपयोगमे लगावे तो यह आसानीसे हो सकने जैसी बात है । इसका परिणाम भी कैसा सुंदर हो !

पल अमूल्य चीज है । चक्रवर्ती भी यदि एक पल पानेके लिये अपनी समस्त ऋद्धि दे दे तो

पितृ अने परणी ते, मचावे अनेक धध, पुत्र, पुत्री भाखे खाउ खाउ दुःखदाईने,
अरे ! राज्यचन्द्र तोय जीव झावा दावा करे, जजाळ छडाय नहीं तजी तृषनाईने ॥ ३ ॥

थई क्षीण नाड़ी अवाचक जेवो रह्यो पड़ी, जीवन दीपक पाम्यो केवळ झंखाईने,
छेल्ली इसे पड्यो भाळी भाईए त्या एम भाख्युं, हवे टाढी माटी थाय तो तो ठीक भाईने ।
हाथने हलावी त्या तो खीजी बुढे सूचव्यु ए, बोल्या विना बेश बाळ तारी चतुराईने !
अरे राज्यचन्द्र देखो देखो आशापाश केवो ! जता गई नहीं डोशे ममता मराईने ! ॥ ४ ॥

भी वह उसे नहीं पा सकता। एक पलको व्यर्थ खोना एक भव हार जानेके समान है। यह तत्त्वकी दृष्टिसे सिद्ध है।

५१ विवेकका अर्थ

लघु शिष्य—भगवन्! आप हमें जगह जगह कहते आये हैं कि विवेक महान् श्रेयस्कर है। विवेक अन्धकारमे पडी हुई आत्माको पहचाननेके लिये दीपक है। विवेकसे धर्म टिकता है। जहाँ विवेक नहीं वहाँ धर्म नहीं, तो विवेक किसे कहते हैं, यह हमे कहिये।

गुरु—आयुष्मानो! सत्यासत्यको उसके स्वरूपसे समझनेका नाम विवेक है।

लघु शिष्य—सत्यको सत्य, और असत्यको असत्य कहना तो सभी समझते है। तो महाराज! क्या इन लोगोने धर्मके मूलको पा लिया, यह कहा जा सकता है?

गुरु—तुम लोग जो बात कहते हो उसका कोई दृष्टान्त दो।

लघु शिष्य—हम स्वयं कडुवेको कडुवा ही कहते हैं, मधुरको मधुर कहते हैं, ज़हरको ज़हर और अमृतको अमृत कहते हैं।

गुरु—आयुष्मानों! ये समस्त द्रव्य पदार्थ हैं। परन्तु आत्मामे क्या कडवास, क्या मिठास, क्या जहर और क्या अमृत है? इन भाव पदार्थोंकी क्या इससे परीक्षा हो सकती है?

लघु शिष्य—भगवन्! इस ओर तो हमारा लक्ष्य भी नहीं।

गुरु—इसलिये यही समझना चाहिये कि ज्ञानदर्शनरूप आत्माके सत्यभाव पदार्थको अज्ञान और अदर्शनरूपी असत् वस्तुओंने घेर लिया है। इसमें इतनी अधिक मिश्रता आ गई है कि परीक्षा करना अत्यन्त ही दुर्लभ है। संसारके सुखोंको आत्माके अनंत बार भोगनेपर भी उनमेंसे अभी भी आत्माका मोह नहीं छूटा, और आत्माने उन्हें अमृतके तुल्य गिना, यह अविवेक है। कारण कि संसार कडुवा है तथा यह कडुवे विपाकको देता है। इसी तरह आत्माने कडुवे विपाककी औषध रूप वैराग्यको कडुवा गिना यह भी अविवेक है। ज्ञान दर्शन आदि गुणोको अज्ञानदर्शनने घेरकर जो मिश्रता कर डाली है, उसे पहचानकर भाव-अमृतमें आनेका नाम विवेक है। अब कहो कि विवेक यह कैसी वस्तु सिद्ध हुई।

लघु शिष्य—अहो! विवेक ही धर्मका मूल और धर्मका रक्षक कहलाता है, यह सत्य है। आत्माके स्वरूपको विवेकके विना नहीं पहचान सकते, यह भी सत्य है। ज्ञान, शील, धर्म, तत्त्व और तप ये सब विवेकके विना उदित नहीं होते, यह आपका कहना यथार्थ है। जो विवेकी नहीं, वह अज्ञानी और मंद है। वही पुरुष मतभेद और मिथ्यादर्शनमे लिपटा रहता है। आपकी विवेक-संबंधी शिक्षाका हम निरन्तर मनन करेंगे।

५२ ज्ञानियोंने वैराग्यका उपदेश क्यों दिया?

संसारके स्वरूपके संबधमे पहले कुछ कहा है। वह तुम्हारे ध्यानमें होगा। ज्ञानियोंने इसे अनंत खेदमय, अनत दुःखमय, अव्यवस्थित, अस्थिर और अनित्य कहा है। ये विशेषण लगानेके पहले उन्होंने संसारका सम्पूर्ण विचार किया मालूम होता है। अनंत भवका पर्यटन, अनत कालका अज्ञान, अनंत जीवनका व्याघात, अनंत मरण, और अनंत शोक सहित आत्मा ससार-चक्रमें भ्रमण किया करती है।

संसारकी दिखती हुई इन्द्रवारणाके समान सुंदर मोहिनीने आत्माको एकदम मोहित कर डाला है। इसके समान सुख आत्माको कहीं भी नहीं माळूम होता। मोहिनीके कारण सत्यसुख और उसका स्वरूप देखनेकी इसने आकाक्षा भी नहीं की। जिस प्रकार पतंगकी दीपकके प्रति मोहिनी है, उसी तरह आत्माकी संसारके प्रति मोहिनी है। ज्ञानी लोग इस ससारको क्षणभर भी सुखरूप नहीं कहते। इस संसारकी तिलभर जगह भी ज़हरके विना नहीं रही। एक सूअरसे लेकर चक्रवर्तीतक भावकी अपेक्षासे समानता है। अर्थात् चक्रवर्तीकी संसारमें जितनी मोहिनी है, उतनी ही वल्कि उससे भी अधिक मोहिनी सूअरकी है। जिस प्रकार चक्रवर्ती समग्र प्रजापर अधिकारका भोग करता है, उसी तरह वह उसकी उपाधि भी भोगता है। सूअरको इसमेसे कुछ भी भोगना नही पड़ता। अधिकारकी अपेक्षा उलटी उपाधि विशेष है। चक्रवर्तीको अपनी पत्नीके प्रति जितना प्रेम होता है, उतना ही अथवा उससे अधिक सूअरको अपनी सूअरनीके प्रति प्रेम रहता है। चक्रवर्ती भोगसे जितना रस लेता है उतना ही रस सूअर भी माने हुए है। चक्रवर्तीके जितनी वैभवकी वहुलता है, उतनी ही उपाधि भी है। सूअरको इसके वैभवके अनुसार ही उपाधि है। दोनों उत्पन्न हुए है और दोनोको मरना है। इस प्रकार सूक्ष्म विचारसे देखनेपर क्षणिकतासे, रोगसे, जरा आदिसे दोनो ग्रसित है। द्रव्यसे चक्रवर्ती समर्थ है, महा पुण्यशाली है, मुख्यरूपसे सातावेदनीय भोगता है, और सूअर विचारा असातावेदनीय भोग रहा है। दोनोके असाता और साता दोनो है। परन्तु चक्रवर्ती महा समर्थ है। परन्तु यदि यह जीवनपर्यंत मोहाध रहे तो वह विलकुल वाजी हार जानेके जैसा काम करता है। सूअरका भी यही हाल है। चक्रवर्तीके शलाकापुरुप होनेके कारण सूअरसे इस रूपमे इसकी वरावरी नहीं, परन्तु स्वरूपकी दृष्टिसे वरावरी है। भोगोके भोगनेमे दोनो तुच्छ है, दोनोंके शरीर राद, मॉस आदिके हैं, और असातासे पराधीन है। संसारकी यह सर्वोत्तम पदवी ऐसी है; उसमें ऐसा दुःख, ऐसी क्षणिकता, ऐसी तुच्छता, और ऐसा अंधपना है, तो फिर दूसरी जगह सुख कैसे माना जाय? यह सुख नहीं, फिर भी सुख गिनो तो जो सुख भययुक्त और क्षणिक है वह दुःख ही है। अनंत ताप, अनंत शोक, अनंत दुःख देखकर ज्ञानियोने इस संसारको पीठ दिखाई है, यह सत्य है। इस ओर पीछे लौटकर देखना योग्य नहीं। वहॉ दुःख ही दुःख है। यह दुःखका समुद्र है।

वैराग्य ही अनंत सुखमें ले जाने वाला उत्कृष्ट मार्गदर्शक है।

५३ महावीरशासन

आजकल जो जिन भगवान्का शासन चल रहा है वह भगवान् महावीरका प्रणीत किया हुआ है। भगवान् महावीरको निर्वाण पधारे २४०० वर्षसे ऊपर हो गये। मगध देशके क्षत्रियकुंड नगरमे सिद्धार्थ राजाकी रानी त्रिशलादेवी क्षत्रियाणीकी कोखसे भगवान् महावीरने जन्म लिया था। महावीर भगवान्के बड़े भाईका नाम नन्दिवर्धमान था। उनकी स्त्रीका नाम यशोदा था। वे तीस वर्ष गृहस्थाश्रममे रहे। इन्होने एकात विहारमें साढे वारह वर्ष एक पक्ष तप आदि सम्यक् आचारसे सम्पूर्ण घनघाति कर्मोंको जलाकर भस्मीभूत किया; अनुपमेय केवलज्ञान और केवलदर्शनको ऋजुवालिका नदीके किनारे प्राप्त किया, कुल लगभग बहत्तर वर्षकी आयुको भोगकर सब कर्मोंको भस्मीभूत कर सिद्धस्वरूपको प्राप्त किया। वर्तमान चौवीसीके ये अन्तिम जिनेश्वर थे।

इनका यह धर्मतीर्थ चल रहा है। यह २१,००० वर्ष अर्थात् पंचमकालके पूर्ण होनेतक चलेगा, ऐसा **भ**गवतीसूत्रमे कहा है।

इस कालके दस आश्चर्योसे युक्त होनेके कारण इस श्रीधर्म-तीर्थके ऊपर अनेक विपत्तियॉ आई है, आती हैं, और आवेंगी।

जैन-समुदायमे परस्पर बहुत मतभेद पड़ गये है। ये मतभेद परम्पर निंदा-ग्रन्थोके द्वारा जंजाल फैला बैठे है। मध्यस्थ पुरुष मत मतातरमे न पड़कर विवेक विचारसे जिन भगवान्‌की शिक्षाके मूल तत्त्वपर आते हैं, उत्तम शीलवान मुनियोपर भक्ति रखते है, और सत्य एकाग्रतासे अपनी आत्माका दमन करते हैं।

कालके प्रभावके कारण समय समयपर शासन कुछ न्यूनाधिक रूपमें प्रकाशमें आता है।

'**वक्कजडा य पच्छिमा**' यह उत्तराध्ययनसूत्रका वचन है। इसका भावार्थ यह है कि अतिम तीर्थंकर (महावीरस्वामी) के शिष्य वक्र और जड़ होगे। इस कथनकी सत्यताके विषयमे किसीको बोलनेकी गुजायश नहीं है। हम तत्त्वका कहॉ विचार करते है? उत्तम शीलका कहॉ विचार करते हैं? नियमित वक्तको धर्ममे कहॉ व्यतीत करते हैं? धर्मतीर्थके उदयके लिये कहॉ लक्ष रखते हैं? लगनसे कहॉ धर्म-तत्त्वकी खोज करते हैं? श्रावक कुलमे जन्म लेनेके कारण ही श्रावक कहे जाते हैं, यह बात हमे भावकी दृष्टिसे मान्य नहीं करनी चाहिये। इसलिये आवश्यक आचार-ज्ञान-खोज अथवा इनमेसे जिसके कोई विशेष लक्षण हो, उसे श्रावक माने तो वह योग्य है। अनेक प्रकारकी द्रव्य आदि सामान्य दया श्रावकके घरमे पैदा होती है और वह इस दयाको पालता भी है, यह बात प्रशंसा करने योग्य है। परन्तु तत्त्वको कोई विरले ही जानते है। जाननेकी अपेक्षा बहुत शंका करनेवाले अर्धदग्ध भी है, जानकर अहंकार करनेवाले भी हैं। परन्तु जानकर तत्त्वके कॉटेमे तोलनेवाले कोई विरले ही है। परम्पराकी आम्नायसे केवलज्ञान, मन.पर्ययज्ञान और परम अवधिज्ञान विच्छेद हो गये। दृष्टिवादका विच्छेद है, और सिद्धातका बहुतसा भाग भी विच्छेद हो गया है। केवल थोड़ेसे बचे भागपर सामान्य बुद्धिसे शंका करना योग्य नहीं। जो शंका हो उसे विशेष जाननेवालेसे पूँछना चाहिये। वहॉसे संतोषजनक उत्तर न मिले तो भी जिनवचनकी श्रद्धामे चल-विचल करना योग्य नहीं, क्योंकि अनेकात शैलीके स्वरूपको विरले ही जानते है।

भगवान्‌के कथनरूप मणिके घरमे बहुतसे पामर प्राणी दोषरूप छिद्रोंको खोजनेका मथनकर अधोगतिको ले जानेवाले कर्मोको बॉधते है। हरी वनस्पतिके बदले उसे सुखाकर काममे लेना किसने और किस विचारसे ढूँढ निकाला होगा? यह विषय बहुत बडा है। यहॉ इस संबंधमें कुछ कहनेकी जरूरत नहीं। तात्पर्य यह है कि हमें अपनी आत्माको सार्थक करनेके लिये मतभेदमे नहीं पडना चाहिये।

उत्तम और शात मुनियोंका समागम, विमल आचार, विवेक, दया, क्षमा आदिका सेवन करना चाहिये। महावीरके तीर्थके लिये हो सके तो विवेकपूर्ण उपदेश भी कारण सहित देना चाहिये। तुच्छ बुद्धिसे शकित नहीं होना चाहिये। इसमें अपना परम मंगल है इसे नहीं भूलना चाहिये।

५४ अशुचि किसे कहते हैं ?

जिज्ञासु—मुझे जैन मुनियोंके आचारकी बात बहुत रुचिकर हुई है। इनके समान किसी भी दर्शनके संतोका आचार नही। चाहे जैसी शीत ऋतुकी ठंड हो उसमे इन्हे अमुक वस्त्रसे ही निभाना पड़ता है, ग्रीष्ममे कितनी ही गरमी पड़नेपर भी ये पैरमे जूता और सिरपर छत्री नही लगा सकते। इन्हे गरम रेतीमे आतापना लेनी पडती है। ये जीवनपर्यंत गरम पानी पीते है। ये गृहस्थके घर नही बैठ सकते, शुद्ध ब्रह्मचर्य पालते है, फूटी कौडी भी पासमे नहीं रख सकते, अयोग्य वचन नहीं बोल सकते, और वाहन नहीं ले सकते। वास्तवमे ऐसे पवित्र आचार ही मोक्षदायक है। परन्तु नव बाड़मे भगवान्‌ने स्नान करनेका निषेध क्यो किया है, यह बात यथार्थरूपसे मेरी समझमे नही बैठती।

सत्य—क्यो नही बैठती ?

जिज्ञासु—क्योकि स्नान न करनेसे अशुचि बढ़ती है।

सत्य—कौनसी अशुचि बढ़ती है ?

जिज्ञासु—शरीर मलिन रहता है।

सत्य—भाई! शरीरकी मलिनताको अशुचि कहना, यह बात कुछ विचारपूर्ण नहीं। शरीर स्वयं किस चीज़का बना है, यह तो विचार करो। यह रक्त, पित्त, मल, मूत्र, श्लेष्मका भंडार है। उसपर केवल त्वचा ढ़ँकी हुई है। फिर यह पवित्र कैसे हो सकता है ? फिर साधुओने ऐसा कौनसा संसार-कर्तव्य किया है कि जिससे उन्हे स्नान करनेकी आवश्यकता हो ?

जिज्ञासु—परन्तु स्नान करनेसे उनकी हानि क्या है ?

सत्य—यह तो स्थूल बुद्धिका ही प्रश्न है। स्नान करनेसे कामाग्निकी प्रदीप्ति, व्रतका भंग, परिणामका बदलना असंख्यातो जंतुओका विनाश, यह सब अशुचिता उत्पन्न होती है, और इससे आत्मा महा मलिन होती है, प्रथम इसका विचार करना चाहिये। जीव-हिंसासे युक्त शरीरकी जो मलिनता है वह अशुचि है। तत्त्व-विचारसे तो ऐसा समझना चाहिये कि दूसरी मलिनताओसे तो आत्माकी उज्ज्वलता होती है, स्नान करनेसे व्रतभंग होकर आत्मा मलिन होती है, और आत्माकी मलिनता ही अशुचि है।

जिज्ञासु—मुझे आपने बहुत सुंदर कारण बताया। सूक्ष्म विचार करनेसे जिनेश्वरके कथनसे शिक्षा और अत्यानन्द प्राप्त होता है। अच्छा, गृहस्थाश्रमियोको सासारिक प्रवृत्तिसे अनिच्छित जीवा-हिंसा आदिसे युक्त शरीरकी अपवित्रता दूर करनी चाहिये कि नहीं ?

सत्य—बुद्धिपूर्वक अशुचिको दूर करना ही चाहिये। जैन दर्शनके समान एक भी पवित्र दर्शन नही, वह यथार्थ पवित्रताका बोधक है। परन्तु शौचाशौचका स्वरूप समझ लेना चाहिये।

५५ सामान्य नित्यनियम

प्रभातके पहले जागृत होकर नमस्कारमंत्रका स्मरणकर मनको शुद्ध करना चाहिये। पाप-व्यापारकी वृत्ति रोककर रात्रिमे हुए दोषोका उपयोगपूर्वक प्रतिक्रमण करना चाहिये।

प्रतिक्रमण करनेके बाद यथावसर भगवान्‌की उपासना, स्तुति और स्वाध्यायसे मनको उज्ज्वल बनाना चाहिये।

माता पिताका विनय करके संसारी कामोमें आत्म-हितका ध्यान न भूल सके, इस तरह व्यवहारिक कार्योंमे प्रवृत्ति करनी चाहिये।

स्वयं भोजन करनेसे पहले सत्पात्रको दान देनेकी परम आतुरता रखकर वैसा योग मिलनेपर यथोचित प्रवृत्ति करनी चाहिये।

आहार विहार आदिमे नियम सहित प्रवृत्ति करनी चाहिये।

सत् शास्त्रके अभ्यासका नियमित समय रखना चाहिये।

सायकालमे उपयोगपूर्वक संध्यावश्यक करना चाहिये।

निद्रा नियमितरूपसे लेना चाहिये।

सोनेके पहले अठारह पापस्थानक, बारह व्रतोंके दोष, और सब जीवोको क्षमाकर, पंचपरमेष्ठी-मंत्रका स्मरणकर समाधिपूर्वक शयन करना चाहिये।

ये सामान्य नियम बहुत मगलकारी है, इन्हे यहॉ संक्षेपमें कहा है। विशेष विचार करनेसे और तदनुसार प्रवृत्ति करनेसे वे विशेष मंगलदायक और आनन्दकारक होगे।

५६ क्षमापना

हे भगवन्! मै बहुत भूला, मैंने आपके अमूल्य वचनोंको ध्यानमे नहीं रक्खा। मैंने आपके कहे हुए अनुपम तत्त्वका विचार नहीं किया। आपके द्वारा प्रणीत किये उत्तम शीलका सेवन नहीं किया। आपके कहे हुए दया, शाति, क्षमा और पवित्रताको मैंने नहीं पहचाना। हे भगवन्! मैं भूला, फिरा, भटका, और अनंत ससारकी विटम्बनामे पडा हूँ। मैं पापी हूँ। मै बहुत मदोन्मत्त और कर्म-रजसे मलिन हूँ। हे परमात्मन्! आपके कहे हुए तत्त्वोके विना मेरी मोक्ष नहीं होगी। मै निरंतर प्रपचमें पडा हूँ। अज्ञानसे अंधा हो रहा हूँ, मुझमें विवेक-शक्ति नहीं। मैं मूढ़ हूँ, मैं निराश्रित हूँ, मै अनाथ हूँ। हे वीतरागी परमात्मन्! अब मैं आपका आपके धर्मका और आपके मुनियोका शरण लेता हूँ। अपने अपराध क्षय करके मै उन सब पापोसे मुक्त होऊँ यही मेरी अभिलाषा है। पहले किये हुए पापोंका मै अब पश्चात्ताप करता हूँ। जैसे जैसे मै सूक्ष्म विचारसे गहरा उतरता जाता हूँ, वैसे वैसे आपके तत्त्वके चमत्कार मेरे स्वरूपका प्रकाश करते है। आप वीतरागी, निर्विकारी, सच्चिदानंदस्वरूप, सहजानदी, अनतज्ञानी, अनंतदर्शी, और त्रैलोक्य-प्रकाशक है। मैं केवल अपने हितके लिये आपकी साक्षीसे क्षमा चाहता हूँ। एक पल भी आपके कहे हुए तत्त्वमें शंका न हो, आपके बताये हुए रास्तेमे मै अहोरात्र रहूँ, यही मेरी आकाक्षा और वृत्ति होओ! हे सर्वज्ञ भगवन्! आपसे मैं विशेष क्या कहूँ? आपसे कुछ अज्ञात नहीं। पश्चात्तापसे मै कर्मजन्य पापकी क्षमा चाहता हूँ—
ॐ शाति शाति शाति।

५७ वैराग्य धर्मका स्वरूप है

खूनसे रंगा हुआ वस्त्र खूनसे धोये जानेपर उज्ज्वल नहीं हो सकता, परन्तु अधिक रँगा जाता है, यदि उस वस्त्रको पानीमे धोते है तो वह मलिनता दूर हो सकती है। इस दृष्टान्तको आत्मापर घटाते है। अनादि कालसे आत्मा संसाररूपी खूनसे मलिन है। मलिनता इसके प्रदेश प्रदेशमे व्याप्त हो गई है। इस मलिनताको हम विषय-शृंगारसे दूर करना चाहें तो यह दूर हो नहीं सकती। जिस

प्रकार खूनसे खून नही धोया जाता, उसी तरह शृंगारसे विषयजन्य आत्म-मलिनता दूर नही हो सकती। यह मानो निश्चयरूप है। इस जगत्मे अनेक धर्ममत प्रचलित है। उनके संबंधमे निष्पक्षपात होकर विचार करनेपर पहलेसे इतना विचारना आवश्यक है कि जहाँ स्त्रियोको भोग करनेका उपदेश किया हो, लक्ष्मी-लीलाकी शिक्षा दी हो, रँग, राग, गुलतान और एशो आराम करनेके तत्त्वका प्रतिपादन किया हो, वहाँ अपनी आत्माको सत् शांति नहीं। कारण कि इसे धर्ममत गिना जाय तो समस्त संसार धर्मयुक्त ही है। प्रत्येक गृहस्थका घर इसी योजनासे भरपूर है। बाल-बच्चे, स्त्री, रँग, राग, तानका वहाँ जमघट रहता है, और यदि उस घरको धर्म-मंदिर कहा जाय तो फिर अधर्म-स्थान किसे कहेगे? और फिर जैसे हम बर्ताव करते है, उस तरहके बर्ताव करनेसे बुरा भी क्या है? यदि कोई यह कहे कि उस धर्म-मंदिरमे तो प्रभुकी भक्ति हो सकती है, तो उनके लिये खेदपूर्वक इतना ही उत्तर देना है कि वह परमात्म-तत्त्व और उसकी वैराग्यमय भक्तिको नही जानता। चाहे कुछ भी हो, परन्तु हमे अपने मूल विचारपर आना चाहिये। तत्त्वज्ञानीकी दृष्टिसे आत्मा संसारमे विषय आदिकी मलिनतासे पर्यटन करती है। इस मलिनताका क्षय विशुद्ध भावरूप जलसे होना चाहिये। अर्हतके तत्त्वरूप साबुन और वैराग्यरूपी जलसे उत्तम आचाररूप पत्थरपर आत्म-वस्त्रको धोनेवाले निर्ग्रंथ गुरु ही है।

इसमे यदि वैराग्य-जल न हो, तो दूसरी समस्त सामग्री कुछ भी नही कर सकती। अतएव वैराग्यको धर्मका स्वरूप कहा जा सकता है। अर्हत-प्रणीत तत्त्व वैराग्यका ही उपदेश करता है, तो यही धर्मका स्वरूप है, ऐसा जानना चाहिये।

५८ धर्मके मतभेद

(१)

इस जगत्मे अनेक प्रकारके धर्मके मत प्रचलित है। ऐसे मतभेद अनादिकालसे है, यह न्यायसिद्ध है। परन्तु ये मतभेद कुछ कुछ रूपातर पाते जाते है। इस संबंधमे यहाँ कुछ विचार करते हैं।

बहुतसे मतभेद परस्पर मिलते हुए और बहुतसे मतभेद परस्पर विरुद्ध है। कितने ही मतभेद केवल नास्तिकोके द्वारा फैलाये हुए है। बहुतसे मत सामान्य नीतिको धर्म कहते है, बहुतसे ज्ञानको ही धर्म बताते है, कितने ही अज्ञानको ही धर्ममत मानते है। कितने ही भक्तिको धर्म कहते है, कितने ही क्रियाको धर्म मानते है, कितने ही विनयको धर्म कहते है, और कितने ही शरीरके सँभालनेको ही धर्ममत मानते है।

इन धर्ममतोके स्थापकोने यह मानकर ऐसा उपदेश किया मालूम होता है कि हम जो कहते है, वह सर्वज्ञकी वाणीरूप है, अथवा सत्य है। बाकीके समस्त मत असत्य और कुतर्कवादी है; तथा उन मतवादियोने एक दूसरेका योग्य अथवा अयोग्य खडन भी किया है। वेदातके उपदेशक यही उपदेश करते है; साख्यका भी यही उपदेश है, बौद्धका भी यही उपदेश है। न्यायमतवालोका भी यही उपदेश है; वैशेषिक लोगोका भी यही उपदेश है; शक्ति-पंथके माननेवाले भी यही उपदेश करते

है; वैष्णव आदिका भी यही उपदेश है; इस्लामका भी यही उपदेश है; और इसी तरह क्राइस्टका भी यही उपदेश है कि हमारा कथन तुम्हें सब सिद्धियाँ देगा। तब हमें किस रीतिसे विचार करना चाहिये ?

वादी और प्रतिवादी दोनों सच्चे नहीं होते, और दोनों झूठे भी नहीं होते। अधिक हुआ तो वादी कुछ अधिक सच्चा और प्रतिवादी कुछ थोड़ा झूँठा होता है; अथवा प्रतिवादी कुछ अधिक सच्चा, और वादी कुछ कम झूँठा होता है। हाँ, दोनोंकी बात सर्वथा झूँठी न होनी चाहिये। ऐसा विचार करनेसे तो एक धर्ममत सच्चा सिद्ध होता है, और शेष सब झूँठे ठहरते हैं।

जिज्ञासु—यह एक आश्चर्यकारक बात है। सबको असत्य अथवा सबको सत्य कैसे कहा जा सकता है ? यदि सबको असत्य कहते हैं तो हम नास्तिक ठहरते हैं, तथा धर्मकी सचाई जाती रहती है। यह तो निश्चय है कि धर्मकी सचाई है, और यह सचाई जगत्मे अवश्य है। यदि एक धर्ममतको सत्य और बाकीके सबको असत्य कहते हैं तो इस बातको सिद्ध करके बतानी चाहिये। सबको सत्य कहते हैं तो यह रेतकी भींत बनाने जैसी बात हुई क्योंकि फिर इतने सब मतभेद कैसे हो गये ? यदि कुछ भी मतभेद न हो तो फिर जुदे जुदे उपदेशक अपने अपने मत स्थापित करनेके लिये क्यों कोशिश करें ? इस प्रकार परस्परके विरोधसे थोड़ी देरके लिये रुक जाना पड़ता है।

फिर भी इस संबंधमें हम यहाँ कुछ समाधान करेंगे। यह समाधान सत्य और मध्यस्थ-भावनाकी दृष्टिसे किया है, एकांत अथवा एकमतकी दृष्टिसे नहीं किया। यह पक्षपाती अथवा अविवेकी नहीं, किन्तु उत्तम और विचारने योग्य है। देखनेमें यह सामान्य मालूम होगा परन्तु सूक्ष्म विचार करनेसे यह बहुत रहस्यपूर्ण लगेगा।

५९ धर्मके मतभेद

(२)

इतना तो तुम्हे स्पष्ट मानना चाहिये कि कोई भी एक धर्म इस संसारमे संपूर्ण सत्यतासे युक्त है। अब एक दर्शनको सत्य कहनेसे बाकीके धर्ममतोंको सर्वथा असत्य कहना पड़ेगा ? परन्तु मैं ऐसा नहीं कह सकता। शुद्ध आत्मज्ञानदाता निश्चयनयसे तो ये असत्यरूप सिद्ध होते हैं, परन्तु व्यवहार-नयसे उन्हें असत्य नहीं कहा जा सकता। एक सत्य है, और बाकीके अपूर्ण और सदोष हैं, ऐसा मैं कहता हूँ। तथा कितने ही धर्ममत कुतर्कवादी और नास्तिक है, वे सर्वथा असत्य हैं। परन्तु जो परलोकका अथवा पापका कुछ भी उपदेश अथवा भय बताते हैं, इस प्रकारके धर्ममतोको अपूर्ण और सदोष कह सकते हैं। एक दर्शन जिसे निर्दोष और पूर्ण कहा जा सकता है, उसके विषयकी बात अभी एक ओर रखते हैं।

अब तुम्हें शंका होगी कि सदोष और अपूर्ण कथनका इसके प्रवर्त्तकोंने किस कारणसे उपदेश दिया होगा ? उसका समाधान होना चाहिये। इसका समाधान यह है कि उन धर्ममतवालोंने जहाँतक उनकी बुद्धिकी गति पहुँची वहाँतक ही विचार किया। अनुमान, तर्क और उपमान आदिके आधारसे उन्हें जो कथन सिद्ध मालूम हुआ, वह प्रत्यक्षरूपसे मानो सिद्ध है, ऐसा उन्होंने बताया।

उन्होने जिस पक्षको लिया, उसमे मुख्य एकान्तवादको लिया। भक्ति, विश्वास, नीति, ज्ञान, क्रिया आदि एक पक्षको ही विशेषरूपसे लिया। इस कारण दूसरे मानने योग्य विषयोको उन्होंने दूषित सिद्ध किये। फिर जिन विषयोका उन्होने वर्णन किया, उन विषयोको उन्होंने कुछ सम्पूर्ण भावभेदसे जाना न था। परन्तु अपनी बुद्धिके अनुसार उन्होने बहुत कुछ वर्णन किया। तार्किक सिद्धात दृष्टात आदिसे सामान्य बुद्धिवालोके अथवा जड़ मनुष्योंके आगे उन्होंने सिद्ध कर दिखाया। कीर्ति, लोक-हित अथवा भगवान् मनवानेकी आकांक्षा इनमेंसे कोई एक भी इनके मनकी भ्रमणा होनेके कारण उन्होने अत्युग्र उद्यम आदिसे विजय पायी। बहुतसोने शृंगार और लोकप्रिय साधनोसे मनुष्यके मनको हरण किया। दुनियाँ मोहमे तो वैसे ही डूबी पड़ी है, इसलिये इस इष्टदर्शनसे भेड़रूप होकर उन्होने प्रसन्न होकर उनका कहना मान लिया। बहुतोने नीति तथा कुछ वैराग्य आदि गुणोको देखकर उस कथनको मान्य रक्खा। प्रवर्त्तककी बुद्धि उन लोगोकी अपेक्षा विशेष होनेसे उनको पीछेसे भगवान्‌रूप ही मान लिया। बहुतोने वैराग्यसे धर्ममत फैलाकर पछिसे बहुतसे सुखशील साधनोका उपदेश दाखिल कर अपने मतकी वृद्धि की। अपना मत स्थापन करनेकी महान् भ्रमणासे और अपनी अपूर्णता इत्यादि किसी भी कारणसे उन्हे दूसरेका कहा हुआ अच्छा नहीं लगा इसलिये उन्होंने एक जुदा ही मार्ग निकाला। इस प्रकार अनेक मतमतातरोकी जाल उत्पन्न होती गई। चार पॉच पीढ़ियों[illegible] किसीका एक धर्ममत रहा, पीछेसे वही कुल-धर्म हो गया। इस प्रकार जगह जगह होता [illegible]

६० धर्मके मतभेद

(३)

यदि एक दर्शन पूर्ण और सत्य न हो तो दूसरे धर्ममतको अपूर्ण और असत्य किसी प्रमाणसे नहीं कहा जा सकता। इस कारण जो एक दर्शन पूर्ण और सत्य है, उसके तत्त्व प्रमाणसे दू[illegible] अपूर्णता और एकान्तिकता देखनी चाहिये।

इन दूसरे धर्ममतोंमे तत्त्वज्ञानका यथार्थ सूक्ष्म विचार नहीं है। कितने ही जगत्‌कर्त्ताका उपदेश करते है, परन्तु जगत्‌कर्त्ता प्रमाणसे सिद्ध नहीं हो सकता। बहुतसे ज्ञानसे मोक्ष होता है, ऐसा मानते है, वे एकांतिक है। इसी तरह क्रियासे मोक्ष होता है, ऐसा कहनेवाले भी एकातिक हैं। ज्ञान और क्रिया इन दोनोसे मोक्ष माननेवाले उसके यथार्थ स्वरूपको नहीं जानते और ये इन दोनोंके भेदको श्रेणीबद्ध नहीं कह सके इसीसे इनकी सर्वज्ञताकी कमी दिखाई दे जाती है। ये धर्ममतोके स्थापक सद्देवतत्त्वमे कहे हुए अठारह दूषणोसे रहित न थे, ऐसा इनके उपदेश किये हुए शास्त्र अथवा चरित्रोपरसे भी तत्त्वदृष्टिसे देखनेपर दिखाई देता है। कई एक मतोंमे हिंसा, अब्रह्मचर्य इत्यादि अपवित्र आचरणका उपदेश है, वे तो स्वभावतः अपूर्ण और सरागीद्वारा स्थापित किये हुए दिखाई देते है। इनमेंसे किसीने सर्वव्यापक मोक्ष, किसीने शून्यरूप मोक्ष, किसीने साकार मोक्ष और किसीने कुछ कालतक रहकर पतित होनेरूप मोक्ष माना है। परन्तु इसमेसे कोई भी बात उनकी सप्रमाण सिद्ध नहीं हो सकती। निस्पृही तत्त्ववेत्ताओंने इनके विचारोका अपूर्णपना दिखाया है, उसे यथास्थित जानना उचित है।

वेदके सिवाय दूसरे मतोके प्रवर्तकोके चरित्र और विचार इत्यादिके जाननेसे वे मत अपूर्ण है, ऐसा मालूम हो जाता है। वर्तमानमे जो वेद मौजूद हैं वे बहुत प्राचीन ग्रंथ है, इससे इस मतकी प्राचीनता सिद्ध होती है, परन्तु वे भी हिंसासे दूषित होनेके कारण अपूर्ण हैं, और सरागियोके वाक्य है, यह स्पष्ट मालूम हो जाता है।

जिस पूर्ण दर्शनके विषयमे यहाँ कहना है, वह जैन अर्थात् वीतरागीद्वारा स्थापित किये हुए दर्शनके विषयमें है। इसके उपदेशक सर्वज्ञ और सर्वदर्शी थे। काल-भेदके होनेपर भी यह बात सिद्धातपूर्ण मालूम होती है। दया, ब्रह्मचर्य, शील, विवेक, वैराग्य, ज्ञान, क्रिया आदिको इनके समान पूर्ण किसीने भी वर्णन नहीं किया। इसके साथ शुद्ध आत्मज्ञान, उसकी कोटियाँ, जीवके पतन, जन्म, गति, विग्रहगति, योनिद्वार, प्रदेश, काल उनके स्वरूपके विषयमे ऐसा सूक्ष्म उपदेश दिया गया है कि जिससे उनकी सर्वज्ञतामे शंका नही रहती। काल-भेदसे परम्पराम्नायसे केवलज्ञान आदि ज्ञान देखनेमे नहीं आते, फिर भी जो जिनेश्वरके कहे हुए सैद्धातिक वचन हैं, वे अखंड हैं। उनके कितने ही सिद्धात इतनेमे सूक्ष्म हैं कि जिनमेसे एक एकपर भी विचार करनेमें सारी ज़िन्दगी बीत जाय।

जिनेश्वरके कहे हुए धर्म-तत्त्वोसे किसी भी प्राणीको लेशमात्र भी खेद उत्पन्न नहीं होता। इसमें सब आत्माओकी रक्षा और सर्वात्मशक्तिका प्रकाश सन्निहित है। इन भेदोके पढनेसे, समझनेसे और उनपर अत्यन्त सूक्ष्म विचार करनेसे आत्म-शक्ति प्रकाश पाती है और वह जैन दर्शनको सर्वोत्कृष्ट सिद्ध करती है। बहुत मननपूर्वक सब धर्ममतोंको जानकर पछिसे तुलना करनेवालेको यह कथन अवश्य सत्य मालूम होगा।

निर्दोष दर्शनके मूलतत्त्व और सदोष दर्शनके मूलतत्त्वोके विषयमे यहाँ विशेष कहनेकी जगह नहीं है।

६१ सुखके विषयमें विचार

(१)

एक ब्राह्मण दरिद्रावस्थासे बहुत पीड़ित था। उसने तंग आकर अंतमें देवकी उपासना करके लक्ष्मी प्राप्त करनेका निश्चय किया। स्वयं विद्वान् होनेके कारण उसने उपासना करनेसे पहले यह विचार किया कि कदाचित् कोई देव तो संतुष्ट होगा ही, परन्तु उस समय उससे क्या सुख माँगना चाहिये? कल्पना करो कि तप करनेके बाद कुछ माँगनेके लिये न सूझ पडे, अथवा न्यूनाधिक सूझे तो किया हुआ तप भी निरर्थक होगा। इसलिये एक बार समस्त देशमें प्रवास करना चाहिये। संसारके महान् पुरुषोके धाम, वैभव और सुख देखने चाहिये। ऐसा निश्चयकर वह प्रवासके लिये निकल पड़ा। भारतके जो जो रमणीय, और ऋद्धिवाले शहर थे उन्हें उसने देखा, युक्ति-प्रयुक्तियोंसे राजाधिराजके अंतःपुर, सुख और वैभव देखे; श्रीमतोंके महल, कारबार, बाग-बगीचे और कुटुम्ब परिवार देखे; परन्तु इसमे किसी तरह उसका मन न माना। किसीको स्त्रीका दुःख, किसीको पतिका दुःख, किसीको अज्ञानसे दुःख, किसीको प्रियके वियोगका दुःख, किसीको निर्धनताका दुःख, किसीको लक्ष्मीकी उपाधिका दुःख, किसीको शरीरका दुःख, किसीको पुत्रका दुःख, किसीको शत्रुका दुःख, किसीको जड़ताका दुःख, किसीको माँ बापका दुःख, किसीको वैधव्यका दुःख, किसीको कुटुम्बका दुःख, किसीको

अपने नीच कुलका दुःख, किसीको प्रीतिका दुःख, किसीको ईर्ष्याका दुःख, किसीको हानिका दुःख, इस प्रकार एक दो अधिक अथवा सभी दुःख जगह जगह उस विप्रके देखनेमें आये। इस कारण इसका मन किसी भी स्थानमे नही माना। जहाँ देखे वहाॅ दुःख तो था ही। किसी जगह भी सम्पूर्ण सुख उसके देखनेमे नही आया। तो फिर क्या माॅगना चाहिये? ऐसा विचारते विचारते वह एक महाधनाढ्यकी प्रशंसा सुनकर द्वारिका आया। उसे द्वारिका महा ऋद्धिवान, वैभवयुक्त, बाग-बगीचोसे सुशोभित और वस्तीसे भरपूर शहर लगा। सुंदर और भव्य महलोको देखते हुए और पूॅछते पूॅछते वह उस महाधनाढ्यके घर गया। श्रीमन्त बैठकखानेमे बैठा था। उसने अतिथि जानकर ब्राह्मणका सन्मान किया, कुशलता पूँछी, और उसके लिये भोजनकी व्यवस्था कराई। थोड़ी देरके बाद धीरजसे शेठने ब्राह्मणसे पूॅछा, आपके आगमनका कारण यदि मुझे कहने योग्य हो तो कहिये। ब्राह्मणने कहा, अभी आप क्षमा करे। पहले आपको अपने सब तरहके वैभव, धाम, बाग-बगीचे इत्यादि मुझे दिखाने पड़ेगे। इनको देखनेके बाद मै अपने आगमनका कारण कहूँगा। शेठने इसका कुछ मर्मरूप कारण जानकर कहा, आप आनन्दपूर्वक अपनी इच्छानुसार करे। भोजनके बाद ब्राह्मणने शेठको स्वयं साथमे चलकर धाम आदि बतानेकी प्रार्थना की। धनाढयने उसे स्वीकार की और स्वयं साथ जाकर बाग-बगीचा, धाम, वैभव सब दिखाये। वहाॅ शेठकी स्त्री और पुत्रोको भी ब्राह्मणने देखा। उन्होने योग्यतापूर्वक उस ब्राह्मणका सत्कार किया। इनके रूप, विनय और स्वच्छता देखकर और उनकी मधुरवाणी सुनकर ब्राह्मण प्रसन्न हुआ। तत्पश्चात् उसने उसकी दुकानका कारबार देखा। वहाॅ सौ-एक कारबारियोको बैठे हुए देखा। उस ब्राह्मणने उन्हे भी सहृदय, विनयी और नम्र पाया। इससे वह बहुत संतुष्ट हुआ। इसके मनको यहाॅ कुछ संतोष मिला। सुखी तो जगत्मे यही माॡम होता है, ऐसा उसे माॡम हुआ।

६२ सुखके विषयमें विचार

(२)

कैसा सुन्दर इसका घर है! कैसी सुन्दर इसकी स्वच्छता और व्यवस्था है? कैसी चतुर और मनोज्ञा उसकी सुशील स्त्री है! कैसे कांतिमान और आज्ञाकारी उसके पुत्र है! कैसा प्रेमसे रहनेवाला उसका कुटुम्ब है! लक्ष्मीकी कृपा भी इसके घर कैसी है! समस्त भारतमे इसके समान दूसरा कोई सुखी नहीं। अब तप करके यदि मै कुछ माॅगू तो इस महाधनाढय जितना ही सब कुछ माॅगूगा, दूसरी इच्छा नहीं करूॅगा।

दिन बीत गया और रात्रि हुई। सोनेका समय हुआ। धनाढय और ब्राह्मण एकांतमे बैठे थे। धनाढयने विप्रसे अपने आगमनका कारण कहनेकी प्रार्थना की।

विप्र—मैं घरसे यह विचार करके निकला था कि जो सबसे अधिक सुखी हो उसे देखूॅ, और तप करके फिर उसके समान सुख सम्पादन करूँ। मैने समस्त भारत और उसके समस्त रमणीय स्थलोको देखा, परन्तु किसी राजाधिराजके घर भी मुझे सम्पूर्ण सुख देखनेमें नहीं आया। जहाॅ देखा वहाँ आधि, व्याधि, और उपाधि ही देखनेमे आई। आपकी ओर आते हुए मैने आपकी प्रशंसा सुनी,-

वेदके सिवाय दूसरे मतोंके प्रवर्तकोके चरित्र और विचार इत्यादिके जाननेसे वे मत अपूर्ण हैं, ऐसा माल्रम हो जाता है। वर्तमानमे जो वेद मौजूद है वे बहुत प्राचीन ग्रंथ हैं, इससे इस मतकी प्राचीनता सिद्ध होती है, परन्तु वे भी हिंसासे दूषित होनेके कारण अपूर्ण है, और सरागियोंके वाक्य है, यह स्पष्ट माल्रम हो जाता है।

जिस पूर्ण दर्शनके विषयमें यहाँ कहना है, वह जैन अर्थात् वीतरागीद्वारा स्थापित किये हुए दर्शनके विषयमे है। इसके उपदेशक सर्वज्ञ और सर्वदर्शी थे। काल-भेदके होनेपर भी यह बात सिद्धांतपूर्ण माल्रम होती है। दया, ब्रह्मचर्य, शील, विवेक, वैराग्य, ज्ञान, क्रिया आदिको इनके समान पूर्ण किसीने भी वर्णन नहीं किया। इसके साथ शुद्ध आत्मज्ञान, उसकी कोटियॉ, जीवके पतन, जन्म, गति, विग्रहगति, योनिद्वार, प्रदेश, काल उनके स्वरूपके विषयमें ऐसा सूक्ष्म उपदेश दिया गया है कि जिससे उनकी सर्वज्ञतामे शंका नही रहती। काल-भेदसे परम्पराम्नायसे केवलज्ञान आदि ज्ञान देखनेमे नहीं आते, फिर भी जो जिनेश्वरके कहे हुए सैद्धातिक वचन है, वे अखंड हैं। उनके कितने ही सिद्धात इतनेमें सूक्ष्म हैं कि जिनमेसे एक एकपर भी विचार करनेमें सारी जिन्दगी बीत जाय।

जिनेश्वरके कहे हुए धर्म-तत्त्वोसे किसी भी प्राणीको लेशमात्र भी खेद उत्पन्न नहीं होता। इसमें सब आत्माओकी रक्षा और सर्वात्मशक्तिका प्रकाश सन्निहित है। इन भेदोंके पढ़नेसे, समझनेसे और उनपर अत्यन्त सूक्ष्म विचार करनेसे आत्म-शक्ति प्रकाश पाती है और वह जैन दर्शनको सर्वोत्कृष्ट सिद्ध करती है। बहुत मननपूर्वक सब धर्ममतोको जानकर पछिसे तुलना करनेवालेको यह कथन अवश्य सत्य माल्रम होगा।

निर्दोष दर्शनके मूलतत्त्व और सदोष दर्शनके मूलतत्त्वोके विषयमे यहॉ विशेष कहनेकी जगह नहीं है।

६१ सुखके विषयमें विचार

(१)

एक ब्राह्मण दरिद्रावस्थासे बहुत पीड़ित था। उसने तग आकर अतमें देवकी उपासना करके लक्ष्मी प्राप्त करनेका निश्चय किया। स्वयं विद्वान् होनेके कारण उसने उपासना करनेसे पहले यह विचार किया कि कदाचित् कोई देव तो संतुष्ट होगा ही, परन्तु उस समय उससे क्या सुख माँगना चाहिये? कल्पना करो कि तप करनेके बाद कुछ मॉगनेके लिये न सूझ पडे, अथवा न्यूनाधिक सूझे तो किया हुआ तप भी निरर्थक होगा। इसलिये एक बार समस्त देशमें प्रवास करना चाहिये। ससारके महान् पुरुषोंके धाम, वैभव और सुख देखने चाहिये। ऐसा निश्चयकर वह प्रवासके लिये निकल पड़ा। भारतके जो जो रमणीय, और ऋद्धिवाले शहर थे उन्हें उसने देखा, युक्ति-प्रयुक्तियोंसे राजाधिराजके अंतःपुर, सुख और वैभव देखे, श्रीमतोंके महल, कारबार, बाग-बगीचे और कुटुम्ब परिवार देखे; परन्तु इससे किसी तरह उसका मन न माना। किसीको स्त्रीका दु ख, किसीको पतिका दु:ख, किसीको अज्ञानसे दुःख, किसीको प्रियके वियोगका दु ख, किसीको निर्धनताका दु.ख, किसीको लक्ष्मीकी उपाधिका दुःख, किसीको शरीरका दु ख, किसीको पुत्रका दु ख, किसीको शत्रुका दुःख, किसीको जड़ताका दुःख, किसीको माँ बापका दु ख, किसीको वैधव्यका दु ख, किसीको कुटुम्बका दु ख, किसीको

अपने मौन कुल्का दुःख, किसीको प्रीतिका दुःख, किसीको ईर्ष्याका दुःख, किसीको हानिका दुःख, इस प्रकार एक दो अधिक अथवा सभी दुःख जगह जगह उस विप्रके देखनेमे आये। इस कारण उसका मन किसी भी स्थानमें नहीं माना। जहाँ देखे वहाँ दुःख तो था ही। किसी जगह भी सम्पूर्ण सुख उसके देखनेमें नहीं आया। तो फिर क्या माँगना चाहिये? ऐसा विचारते विचारते वह एक महाधनाढ्यकी प्रशंसा सुनकर द्वारिका आया। उसे द्वारिका महा ऋद्धिवान, वैभवयुक्त, बाग-बगीचोसे सुशोभित और बस्तीसे भरपूर शहर लगा। सुंदर और भव्य महलोको देखते हुए और पूँछते पूँछते वह उस महाधनाढ्यके घर गया। श्रीमन्त बैठकखानेमे बैठा था। उसने अतिथि जानकर ब्राह्मणका सन्मान किया, कुशलता पूछी, और उसके लिये भोजनकी व्यवस्था कराई। थोडी देरके बाद धीरजसे शेठने ब्राह्मणसे पूंछा, आपके आगमनका कारण यदि मुझे कहने योग्य हो तो कहिये। ब्राह्मणने कहा, अभी आप क्षमा करें। पहले आपको अपने सब तरहके वैभव, धाम, बाग-बगीचे इत्यादि मुझे दिखाने पड़ेंगे। इनको देखनेके बाद मै अपने आगमनका कारण कहूँगा। शेठने इसका कुछ मर्मरूप कारण जानकर कहा, आप आनन्दपूर्वक अपनी इच्छानुसार करे। भोजनके बाद ब्राह्मणने शेठको स्वयं साथमें चलकर धाम आदि बतानेकी प्रार्थना की। धनाढ्यने उसे स्वीकार की और स्वयं साथ जाकर बाग-बगीचा, धाम, वैभव सब दिखाये। वहाँ शेठकी स्त्री और पुत्रोको भी ब्राह्मणने देखा। उन्होने योग्यतापूर्वक उस ब्राह्मणका सत्कार किया। इनके रूप, विनय और स्वच्छता देखकर और उनकी मधुरवाणी सुनकर ब्राह्मण प्रसन्न हुआ। तत्पश्चात् उसने उसकी दुकानका कारबार देखा। वहाँ सौ-एक कारबारियोंको बैठे हुए देखा। उस ब्राह्मणने उन्हे भी सहृदय, विनयी और नम्र पाया। इससे वह बहुत संतुष्ट हुआ। इसके मनको यहाँ कुछ संतोष मिला। सुखी तो जगत्मे यही मालूम होता है, ऐसा उसे मालूम हुआ।

६२ सुखके विषयमें विचार

(२)

कैसा सुन्दर इसका घर है! कैसी सुन्दर इसकी स्वच्छता और व्यवस्था है? कैसी चतुर और मनोज्ञ उसकी सुशील स्त्री है! कैसे कातिमान और आज्ञाकारी उसके पुत्र है! कैसा प्रेमसे रहनेवाला उसका कुटुम्ब है! लक्ष्मीकी कृपा भी इसके वर कैसी है! समस्त भारतमे इसके समान दूसरा कोई सुखी नहीं। अब तप करके यदि मै कुछ माँगू तो इस महाधनाढय जितना ही सब कुछ माँगूगा, दूसरी इच्छा नहीं करूँगा।

दिन बीत गया और रात्रि हुई। सोनेका समय हुआ। धनाढय और ब्राह्मण एकांतमे बैठे थे। धनाढयने विप्रसे अपने आगमनका कारण कहनेकी प्रार्थना की।

विप्र—मै घरसे यह विचार करके निकला था कि जो सबसे अधिक सुखी हो उसे देखूँ, और तप करके फिर उसके समान सुख सम्पादन करूँ। मैंने समस्त भारत और उसके समस्त रमणीय स्थलोंको देखा, परन्तु किसी राजाधिराजके घर भी मुझे सम्पूर्ण सुख देखनेमे नहीं आया। जहाँ देखा वहाँ आधि, व्याधि, और उपाधि ही देखनेमे आई। आपकी ओर आते हुए मैने आपकी प्रशंसा सुनी,

इसलिये मैं यहाँ आया, और मैंने संतोष भी पाया। आपके समान ऋद्धि, सत्पुत्र, कमाई, स्त्री, कुटुम्ब, घर आदि मेरे देखनेमें कहीं भी नहीं आये। आप स्वयं भी धर्मशील, सद्गुणी और जिनेश्वरके उत्तम उपासक हैं। इससे मैं यह मानता हूँ कि आपके समान सुख और कहीं भी नहीं है। भारतमें आप विशेष सुखी हैं। उपासना करके कभी देवसे याचना करूँगा तो आपके समान ही सुख-स्थितिकी याचना करूँगा।

धनाढ्य—पंडितजी! आप एक बहुत मर्मपूर्ण विचारसे निकले हैं, अतएव आपको अवश्य यथार्थ स्वानुभवकी बात कहता हूँ। फिर जैसी आपकी इच्छा हो वैसे करें। मेरे घर आपने जो सुख देखा वह सब सुख भारतमें कहीं भी नहीं, ऐसा आप कहते हैं तो ऐसा ही होगा। परन्तु वास्तवमें यह मुझे संभव नहीं मालूम होता। मेरा सिद्धांत ऐसा है कि जगत्में किसी स्थलमें भी वास्तविक सुख नहीं है। जगत् दुःखसे जल रहा है। आप मुझे सुखी देखते हैं परन्तु वास्तविक रीतिसे मैं सुखी नहीं।

विप्र—आपका यह कहना कुछ अनुभवसिद्ध और मार्मिक होगा। मैंने अनेक शास्त्र देखे हैं, परन्तु इस प्रकारके मर्मपूर्वक विचार ध्यानमें लेनेका परिश्रम ही नहीं उठाया। तथा मुझे ऐसा अनुभव सबके लिये नहीं हुआ। अब आपको क्या दुःख है, वह मुझसे कहिये।

धनाढ्य—पंडितजी! आपकी इच्छा है तो मैं कहता हूँ। वह ध्यानपूर्वक मनन करने योग्य है और इसपरसे कोई रास्ता ढूँढ़ा जा सकता है।

६३ सुखके विषयमें विचार

(३)

जैसे स्थिति आप मेरी इस समय देख रहे हैं वैसी स्थिति लक्ष्मी, कुटुम्ब और स्त्रीके संबंधमें मेरी पहले भी थी। जिस समयकी मैं बात कहता हूँ, उस समयको लगभग बीस वरस हो गये। व्यापार और वैभवकी बहुलता, यह सब कारबार उलटा होनेसे घटने लगा। करोड़पति कहानेवाला मैं एकके बाद एक हानियोंके भार-वहन करनेसे केवल तीन वर्षमें धनहीन हो गया। जहाँ निश्चयसे सीधा दाव समझकर लगाया था वहाँ उलटा दाव पड़ा। इतनेमें मेरी स्त्री भी गुजर गई। उस समय मेरे कोई संतान न थी। ज़बर्दस्त नुक़सानोंके मारे मुझे यहाँसे निकल जाना पड़ा। मेरे कुटुम्बियोंने यथाशक्ति रक्षा करी, परन्तु वह आकाश फटनेपर थेगरा लगाने जैसा था। अन्न और दाँतोंके वैर होनेकी स्थितिमें मैं बहुत आगे निकल पड़ा। जब मैं यहाँसे निकला तो मेरे कुटुम्बी लोग मुझे रोककर रखने लगे, और कहने लगे कि तूने गाँवका दरवाजा भी नहीं देखा, इसलिये हम तुझे नहीं जाने देंगे। तेरा कोमल शरीर कुछ भी नहीं कर सकता, और यदि तू वहाँ जाकर सुखी होगा तो फिर आवेगा भी नहीं, इसलिये इस विचारको तुझे छोड़ देना चाहिये। मैंने उन्हें बहुत तरहसे समझाया कि यदि मैं अच्छी स्थितिको प्राप्त करूँगा तो मैं अवश्य यहीं आऊँगा—ऐसा वचन देकर मैं जावाबंदरकी यात्रा करने निकल पड़ा।

प्रारब्धके पीछे लौटनेकी तैय्यारी हुई। दैवयोगसे मेरे पास एक दमड़ी भी नहीं रह गई थी। एक दो महीने उदर-पोषण चलानेका साधन भी नहीं रहा था। फिर भी मैं जावामें गया। वहाँ मेरी बुद्धिने प्रारब्धको खिला दिया। जिस जहाजमें मैं बैठा था उस जहाजके नाविकने मेरी चंचलता और

नम्रता देखकर अपने शेठसे मेरे दुःखकी बात कही। उस शेठने मुझे बुलाकर एक काममे लगा दिया, जिससे मै अपने पोषणसे चौगुना पैदा करता था। इस व्यापारमे मेरा चित्त जिस समय स्थिर हो गया उस समय भारतके साथ इस व्यापारके बढ़ानेका मैने प्रयत्न किया, और उसमे सफलता मिली। दो वर्षोमे पॉच लाखकी कमाई हुई। बादमे शेठसे राजी खुशीसे आज्ञा लेकर मैं कुछ माल खरीदकर द्वारिकाकी ओर चल दिया। थोड़े समय बाद मै यहाँ आ पहुँचा। उस समय बहुत लोग मेरा सन्मान करनेके लिये आये। मै अपने कुटुम्बियोसे आनंदसे आ मिला। वे मेरे भाग्यकी प्रशंसा करने लगे। जावासे लिये हुए मालने मुझे एकके पॉच कराये। पंडितजी! वहॉ अनेक प्रकारसे मुझे पाप करने पड़ते थे। पूरा खाना भी मुझे नही मिलता था। परन्तु एकबार लक्ष्मी प्राप्त करनेकी जो प्रतिज्ञा की थी वह प्रारब्धसे पूर्ण हुई। जिस दुःखदायक स्थितिमे मै था उस दुखमे क्या कमी थी? स्त्री पुत्र तो थे ही नहीं; मॉ बाप पहलेसे परलोक सिधार गये थे। कुटुम्बियोके वियोगसे और विना दमड़ीके जिस समय मै जावा गया, उस समयकी स्थिति अज्ञान-दृष्टिसे देखनेपर ऑखमें ऑसू ला देती है। इस समय भी मैने धर्ममे ध्यान रक्खा था। दिनका कुछ हिस्सा उसमे लगाता था। वह लक्ष्मी अथवा लालचसे नहीं, परन्तु संसारके दु'खसे पार उतारनेवाला यह साधन है, तथा यह मानकर कि मौतका भय क्षण भी दूर नहीं है; इसलिये इस कर्तव्यको जैसे बने शीघ्रतासे कर लेना चाहिये, यह मेरी मुख्य नीति थी। दुराचारसे कोई सुख नहीं; मनकी तृप्ति नहीं; और आत्माकी मलिनता है—इस तत्त्वकी ओर मैंने अपना ध्यान लगाया था।

६४ सुखके विषयमें विचार

(४)

यहॉ आनेके बाद मैंने अच्छे घरकी कन्या प्राप्त की। वह भी सुलक्षणी और मर्यादाशील निकली। इससे मुझे तीन पुत्र हुए। कारबारके प्रबल होनेसे और पैसा पैसेको बढ़ाता है, इस नियमसे मैं दस वर्षमे महा करोड़पति हो गया। पुत्रोकी नीति, विचार, और बुद्धिके उत्तम रहनेके लिये मैंने बहुत सुंदर साधन जुटाये, जिससे उन्होने यह स्थिति प्राप्त की है। अपने कुटुम्बियोको योग्य स्थानोमें लगाकर उनकी स्थितिमे सुधार किया। दुकानके मैंने अमुक नियम बॉधे, तथा उत्तम मकान बनवानेका आरंभ भी कर दिया। यह केवल एक ममत्वके वास्ते किया। गया हुआ पीछे फिरसे प्राप्त किया, तथा कुल-परंपराकी प्रसिद्धि जाते हुए रोकी, यह कहलानेके लिये मैने यह सब किया। इसे मै सुख नहीं मानता। यद्यपि मैं दूसरो की अपेक्षा सुखी हूँ। फिर भी यह सातावेदनीय है, सत्सुख नही। जगत्मे बहुत करके असातावेद-नीय ही है। मैंने धर्ममे अपना समय यापन करनेका नियम रक्खा है। सत्शास्त्रोका वाचन मनन, सत्पुरुषोका समागम, यम-नियम, एक महीनेमें बारह दिन ब्रह्मचर्य, यथाशक्ति गुप्तदान, इत्यादि धर्मसे मैं अपना काल विताता हूँ। सब व्यवहारकी उपाधियोंमेसे बहुतसा भाग बहुत अंशमे मैने छोड़ दिया है। पुत्रोको व्यवहारमे यथायोग्य बनाकर मै निर्ग्रंथ होनेकी इच्छा रखता हूँ। अभी निर्ग्रंथ नहीं हो सकता, इसमें संसार-मोहिनी अथवा ऐसा ही दूसरा कुछ कारण नहीं है, परन्तु वह भी धर्मसंबंधी ही कारण है। गृहस्थ-धर्मके आचरण बहुत कनिष्ठ हो गये है, और मुनि लोग उन्हें नहीं सुधार सकते। गृहस्थ गृहस्थोंको विशेष उपदेश कर सकते है, आचरणसे भी असर पैदा कर

सकते है । इसलिये धर्मके सबधमे गृहस्थवर्गको मै प्राय: उपदेश देकर यम-नियममें लाता हूँ । प्रति सप्ताह हमारे यहाँ लगभग पाँचसौ सद्गृहस्थोकी सभा भरती है । आठ दिनका नया अनुभव और शेष पहिलेका धर्मानुभव मैं इन लोगोको दो तीन मुहूर्त तक उपदेश करता हूँ । मेरी स्त्री धर्मशास्त्रकी कुछ जानकार होनेसे वह भी स्त्रीवर्गको उत्तम यम-नियमका उपदेश करके साप्ताहिक सभा भरती है । मेरे पुत्र भी शास्त्रोका यथाशक्य परिचय रखते है । विद्वानोका सन्मान, अतिथियोकी विनय, और सामान्य सत्यता—एक ही भाव—ये नियम बहुधा मेरे अनुचर भी पालते है । इस कारण ये सब साता भोग सकते हैं । लक्ष्मीके साथ साथ मेरी नीति, धर्म, सद्गुण और विनयने जन-समुदायपर बहुत अच्छा असर डाला है । इतना तक हो गया है कि राजातक भी मेरी नीतिकी बातको मानता है । यह सब मैं आम-प्रशंसाके लिये नहीं कह रहा, यह बात आप ध्यानमे रक्खे । केवल आपकी पूँछी हुई बातके स्पष्टीकरणके लिये संक्षेपमें यह सब कहा है ।

६८ सुखके विषयमें विचार

(५)

इन सब बातोसे मैं सुखी हूँ, ऐसा आपको मालूम हो सकेगा और सामान्य विचारसे आप मुझे बहुत सुखी मानें भी तो मान सकते है । धर्म, शील और नीतिसे तथा शास्त्रावधानसे मुझे जो आनंद मिलता है वह अवर्णनीय है । परन्तु तत्त्वदृष्टिसे मैं सुखी नहीं माना जा सकता । जबतक सब प्रकारसे बाह्य और अभ्यंतर परिग्रहका मैने त्याग नहीं किया तबतक रागद्वेषका भाव मौजूद है । यद्यपि वह बहुत अंशमें नहीं, परन्तु है अवश्य, इसलिये वहाँ उपाधि भी है । सर्व-संग-परित्याग करनेकी मेरी सम्पूर्ण आकाक्षा है, परन्तु जबतक ऐसा नहीं हुआ तबतक किसी प्रियजनका वियोग, व्यवहारमे हानि, कुटुम्बियोंका दु:ख, ये थोडे अंशमे भी उपाधि उत्पन्न कर सकते हैं । अपनी देहमे मौतके सिवाय अन्य नाना प्रकारके रोगोंका होना सभव है । इसलिये जबतक सम्पूर्ण निर्ग्रंथ, बाह्याभ्यंतर परिग्रहका त्याग, अल्पारंभका त्याग, यह सब नहीं हुआ, तबतक मै अपनेको सर्वथा सुखी नहीं मानता । अब आपको तत्त्वकी दृष्टिसे विचार करनेसे मालूम पड़ेगा कि लक्ष्मी, स्त्री, पुत्र अथवा कुटुम्बसे सुख नहीं होता, और यदि इसको सुख गिनूँ तो जिस समय मेरी स्थिति हीन हो गई थी उस समय यह सुख कहाँ चला गया था? जिसका वियोग है, जो क्षणभंगुर है और जहाँ अव्याबाधपना नहीं है, वह सम्पूर्ण अथवा वास्तविक सुख नहीं है । इस कारण मै अपने आपको सुखी नहीं कह सकता । मै बहुत विचार विचारकर व्यापार और कारबार करता था, तो भी मुझे आरंभोपाधि, अनीति और लेशमात्र भी कपटका सेवन करना नहीं पड़ा, यह तो नहीं कहा जा सकता । अनेक प्रकारके आरंभ और कपटका मुझे सेवन करना पडा था । आप यदि देवोपासनासे लक्ष्मी प्राप्त करनेका विचार करते हों तो वह यदि पुण्य न होगा तो कभी भी वह मिलनेवाली नहीं । पुण्यसे प्राप्त की हुई लक्ष्मीसे महारंभ, कपट और मान इत्यादिका बढ़ना यह महापापका कारण है । पाप नरकमे डालता है । पापसे आत्मा महान् मनुष्य-देहको व्यर्थ गुमा देती है । एक तो मानों पुण्यको खा जाना, और ऊपरसे पापका बंध करना । लक्ष्मीकी और उसके द्वारा समस्त संसारकी उपाधि भोगना, मैं समझता हूँ, कि यह विवेकी आत्माको मान्य नहीं हो

सकती। मैने जिस कारणसे लक्ष्मी उपार्जन की थी, वह कारण मैंने पहले आपसे कह दिया है। अब आपकी जैसी इच्छा हो वैसा करे। आप विद्वान् हैं, मै विद्वानोको चाहता हूँ। आपकी अभिलाषा हो तो धर्मध्यानमे संलग्न होकर कुटुम्ब सहित आप यही खुशीसे रहे। आपकी आजीविकाकी सरल योजना जैसा आप कहे वैसी मै आनन्दसे करा दूँ। आप यहाँ शास्त्र अध्ययन और सद्वस्तुका उपदेश करे। मिथ्यारंभोपाधिकी लोलुपतामे, मै समझता हूँ, न पड़े। आगे जैसी आपकी इच्छा।

पंडित—आपने अपने अनुभवकी बहुत मनन करने योग्य आख्यायिका कही। आप अवश्य ही कोई महात्मा है, पुण्यानुबंधी पुण्यवान् जीव है, विवेकी है, और आपकी विचार-शक्ति अद्भुत है। मै दरिद्रतासे तंग आकर जो इच्छा करता था, वह इच्छा एकातिक थी। ये सब प्रकारके विवेकपूर्ण विचार मैने नहीं किये थे। मै चाहे जैसा भी विद्वान् हूँ फिर भी ऐसा अनुभव, ऐसी विवेक-शक्ति मुझमे नहीं है, यह बात मै ठीक ही कहता हूँ। आपने मेरे लिये जो योजना बताई है, उसके लिये मै आपका बहुत उपकार मानता हूँ और उसे नम्रतापूर्वक स्वीकार करनेके लिये मै हर्ष प्रगट करता हूँ। मै उपाधि नही चाहता। लक्ष्मीका फंद उपाधि ही देता है। आपका अनुभवसिद्ध कथन मुझे बहुत अच्छा लगा है। संसार जल ही रहा है, इसमे सुख नही। आपने उपाधि रहित मुनि-सुखकी प्रशंसा की वह सत्य है। वह सन्मार्ग परिणाममे सर्वोपाधि, आधि व्याधि तथा अज्ञान भावसे रहित शाश्वत मोक्षका हेतु है।

६६ सुखके विषयमें विचार

(६)

धनाढ्य—आपको मेरी बात रुचिकर हुई इससे मुझे निरभिमानपूर्वक आनद प्राप्त हुआ है। आपके लिये मै योग्य योजना करूँगा। मै अपने सामान्य विचारोको कथानुरूप यहाँ कहनेकी आज्ञा चाहता हूँ।

जो केवल लक्ष्मीके उपार्जन करनेमे कपट लोभ और मायामे फँसे पड़े है, वे बहुत दुःखी है। वे उसका पूरा अथवा अधूरा उपयोग नही कर सकते। वे केवल उपाधि ही भोगते है, वे असंख्यात पाप करते है, उन्हे काल अचानक उठा ले जाता है, ये जीव अधोगतिको प्राप्त होकर अनंत संसारकी वृद्धि करते है, मिले हुए मनुष्य-भवको निर्माल्य कर डालते है, जिससे वे निरन्तर दुःखी ही रहते है।

जिन्होने अपनी आजीविका जितने साधन मात्रको अल्पारंभसे रक्खा है, जो शुद्ध एकपत्नीव्रत, संतोष, परात्माकी रक्षा, यम, नियम, परोपकार अल्प राग, अल्प द्रव्यमाया, सत्य और शास्त्राध्ययन रखते है, जो सत्पुरुषोकी सेवा करते है, जिन्होने निर्ग्रन्थताका मनोरथ रक्खा है, जो बहुत प्रकारसे संसारसे त्यागीके समान रहते है, जिनका वैराग्य और विवेक उत्कृष्ट है, ऐसे पुरुष पवित्रतामे सुखपूर्वक काल व्यतीत करते है।

जो सब प्रकारके आरंभ और परिग्रहसे रहित हुए है; जो द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे और भावमे अप्रतिबंधरूपसे विचरते है, जो शत्रु-मित्रके प्रति समान दृष्टि रखते है और जिनका काल शुद्ध आत्म-

ध्यानमें व्यतीत होता है, और जो स्वाध्याय एवं ध्यानमे लीन हैं, ऐसे जितेन्द्रिय और जितकषाय वे निर्ग्रंथ परम सुखी हैं।

जिन्होंने सब घनघाती कर्मोंका क्षय किया है, जिनके चार अघाती-कर्म कृश पड़ गये हैं, जो मुक्त हैं, जो अनंतज्ञानी और अनंतदर्शी है वे ही सम्पूर्ण सुखी हैं। वे मोक्षमे अनंत जीवनके अनंत सुखमें सर्व कर्मसे विरक्त होकर विराजते हैं।

इस प्रकार सत्पुरुषोद्वारा कहा हुआ मत मुझे मान्य है। पहला तो मुझे त्याज्य है। दूसरा अभी मान्य है, और बहुत अशमे इसे ग्रहण करनेका मेरा उपदेश है। तीसरा वहुत मान्य है, और चौथा तो सर्वमान्य और सच्चिदानन्द स्वरूप है।

इस प्रकार पंडितजी आपकी और मेरी सुखके संबंधमे वातचीत हुई। ज्यो ज्यों प्रसंग मिलते जायेंगे त्यों त्यों इन वातोपर चर्चा और विचार करते जायेंगे। इन विचारोके आपसे कहनेसे मुझे वहुत आनन्द हुआ है। आप ऐसे विचारोके अनुकूल हुए हैं इससे और भी आनन्दमे वृद्धि हुई है। इस तरह परस्पर वातचीत करते करते वे हर्षके साथ समाधि-भावसे सो गये।

जो विवेकी इस सुखके विषयपर विचार करेंगे वे वहुत तत्त्व और आत्मश्रेणीकी उत्कृष्टताको प्राप्त करेंगे। इसमे कहे हुए अल्पारंभी, निरारंभी और सर्वमुक्तके लक्षण ध्यानपूर्वक मनन करने योग्य हैं। जैसे बने तैसे अल्पारंभी होकर समभावसे जन-समुदायके हितकी ओर लगना, परोपकार, दया, शान्ति, क्षमा और पवित्रताका सेवन करना यह वहुत सुखदायक है। निर्ग्रंथताके विषयमे तो विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं। मुक्तात्मा अनंत सुखमय ही है।

६७ अमूल्य तत्त्वविचार

हरिगीत छंद

वहुत पुण्यके पुंजसे इस शुभ मानव देहकी प्राप्ति हुई; तो भी अरे रे! भव-चक्रका एक भी चक्कर दूर नहीं हुआ। सुखको प्राप्त करनेसे सुख दूर होता जाता है, इसे ज़रा अपने ध्यानमे लो। अहो! इस क्षण क्षणमे होनेवाले भयंकर भाव-मरणमे तुम क्यों लवलीन हो रहे हो? ॥ १ ॥

यदि तुम्हारी लक्ष्मी और सत्ता वढ़ गई, तो कहो तो सही कि तुम्हारा वढ़ ही क्या गया? क्या कुटुम्व और परिवारके वढ़नेसे तुम अपनी वढ़ती मानते हो? हर्गिज़ ऐसा मत मानों; क्योंकि संसारका वढना मानों मनुष्य देहको हार जाना है। अहो! इसका तुमको एक पलभर भी विचार नहीं होता? ॥२॥

---

६७ अमूल्य तत्त्वविचार

हरिगीत छंद

वहु पुण्यकेरा पुंजथी शुभ देह मानवनो मळ्यो,
तोये अरे! भवचक्रनो आटो नहि एक्के टळ्यो,
सुख प्राप्त करतां सुख टळे छे लेश ए लक्षे लहो,
क्षण क्षण भयकर भावमरणे का अहो राची रहो? ॥ १ ॥

लक्ष्मी अने अधिकार वधता, शु वध्यु ते तो कहो?
शु कुटुम्ब के परिवारथी वधवापणु, ए नय ग्रहो,
वधवापणुं संसारनुं नर देहने हारी जवो,
एनो विचार नहीं अहो हो! एक पळ तमने हवो!!! ॥ २ ॥

निर्दोष सुख और निर्दोष आनन्दको, जहाँ कहींसे भी वह मिल सके वहींसे प्राप्त करो जिससे कि यह दिव्यशक्तिमान आत्मा जर्ज़ीरोसे निकल सके। इस बातकी सदा मुझे दया है कि परवस्तुमे मोह नहीं करना। जिसके अन्तमे दुःख है उसे सुख कहना, यह त्यागने योग्य सिद्धांत है ॥ ३ ॥

मै कौन हूँ, कहाँसे आया हूँ, मेरा सच्चा स्वरूप क्या है, यह संबंध किस कारणसे हुआ है, उसे रक्खूँ या छोड़ दूँ? यदि इन बातोका विवेकपूर्वक शांत भावसे विचार किया तो आत्मज्ञानके सब सिद्धांत-तत्त्व अनुभवमे आ गये ॥ ४ ॥

यह सब प्राप्त करनेके लिये किसके वचनको सम्पूर्ण सत्य मानना चाहिये? यह जिसने अनुभव किया है ऐसे निर्दोष पुरुषका कथन मानना चाहिये। अरे, आत्माका उद्धार करो, आत्माका उद्धार करो, इसे शीघ्र पहचानो, और सब आत्माओमे समदृष्टि रक्खो, इस वचनको हृदयमे धारण करो ॥५॥

६८ जितेन्द्रियता

जबतक जीभ स्वादिष्ट भोजन चाहती है, जबतक नासिकाको सुगंध अच्छी लगती है, जबतक कान वारागना आदिके गायन और वादित्र चाहता है, जबतक ऑख वनोपवन देखनेका लक्ष रखती है, जबतक त्वचाको सुगंधि-लेपन अच्छा लगता है, तबतक मनुष्य निरागी, निर्ग्रंथ, निष्परिग्रही, निरारंभी, और ब्रह्मचारी नहीं हो सकता। मनको वशमे करना यह सर्वोत्तम है। इसके द्वारा सब इन्द्रियॉ वशमे की जा सकती हैं। मनको जीतना बहुत दुर्घट है। मन एक समयमें असंख्यातों योजन चलनेवाले अश्वके समान है। इसको थकाना बहुत कठिन है। इसकी गति चपल और पकड़मे न आनेवाली है। महा ज्ञानियोने ज्ञानरूपी लगामसे इसको वशमे रखकर सबको जीत लिया है।

उत्तराध्ययनसूत्रमे नमिराज महर्षिने शक्रेन्द्रसे ऐसा कहा है कि दसलाख सुभटोको जीतनेवाले बहुतसे पड़े है, परंतु अपनी आत्माको जीतनवाले बहुत ही दुर्लभ हैं, और वे दसलाख सुभटोंको जीतनेवालोकी अपेक्षा अत्युत्तम है।

मन ही सर्वोपाधिकी जन्मदाता भूमिका है। मन ही बध और मोक्षका कारण है। मन ही सब संसारका मोहिनीरूप है। इसको वश कर लेनेपर आत्म-स्वरूपको पा जाना लेशमात्र भी कठिन नहीं है।

निर्दोष सुख निर्दोष आनद, ल्यो गमे त्याथी मले,
ए दिव्यशक्तिमान जेथी जजिरेथी नीकळे,
परवस्तुमा नहिं मुझवो, एनी दया मुजने रही,
ए त्यागवा सिद्धात के पश्चातदुख ते सुख नहीं ॥ ३ ॥
हु कोण छुं? क्याथी थयो? शु स्वरूप छे मारूं खरुं?
कोना सबधे वळगणा छे? राखुं के ए परिहरु?
एना विचार विवेकपूर्वक शात भावे जो कर्या,
तो सर्व आत्मिकज्ञानना सिद्धाततत्त्व अनुभव्या ॥ ४ ॥
ते प्राप्त करवा वचन कोनुं सत्य केवळ मानवुं?
निर्दोष नरनुं कथन मानो तेह जेणे अनुभव्यु।
रे! आत्म तारो! आत्म तारो! शीघ्र एने ओळखो,
सर्वात्ममा समदृष्टि द्यो आ वचनने हृदये लखो ॥ ५ ॥

मनसे इन्द्रियोकी लोलुपता है। भोजन, वादित्र, सुगंधी, स्त्रीका निरीक्षण, सुंदर विलेपन यह सब मन ही माँगता है। इस मोहिनीके कारण यह धर्मकी याद भी नहीं आने देता। याद आनेके पीछे सावधान नहीं होने देता। सावधान होनेके बाद पतित करनेमे प्रवृत्त होता है। इसमे जब सफल नहीं होता तब सावधानीमे कुछ न्यूनता पहुँचाता है। जो इस न्यूनताको भी न प्राप्त होकर अडग रहकर उस मनको जीतते हैं, वे सर्वथा सिद्धिको पाते है।

मनको कोई ही अकस्मात् जीत सकता है, नहीं तो यह गृहस्थाश्रममें अभ्यास करके जीता जाता है। यह अभ्यास निर्ग्रंथतामे बहुत हो सकता है। फिर भी यदि कोई सामान्य परिचय करना चाहे तो उसका मुख्य मार्ग यही है कि मन जो दुरिच्छा करे, उसे भूल जाना, और वैसा नहीं करना। जब मन शब्द, स्पर्श आदि विलासकी इच्छा करे तब उसे नहीं देना। संक्षेपमे हमे इससे प्रेरित न होना चाहिये परन्तु इसे प्रेरित करना चाहिये। मनको मोक्ष-मार्गके चिन्तनमे लगाना चाहिये। जितेन्द्रियता बिना सब प्रकारकी उपाधियाँ खड़ी ही रहती हैं, त्याग अत्यागके समान हो जाता है, लोकलज्जासे उसे निबाहना पड़ता है। अतएव अभ्यास करके भी मनको स्वाधीनतामें लाकर अवश्य आत्महित करना चाहिये।

६९ ब्रह्मचर्यकी नौ बाड़ें

ज्ञानी लोगोने थोड़े शब्दोंमे कैसे भेद और कैसा स्वरूप बताया है? इससे कितनी अधिक आत्मोन्नति होती है? ब्रह्मचर्य जैसे गंभीर विषयका स्वरूप संक्षेपमें अत्यन्त चमत्कारिक रीतिसे कह दिया है। ब्रह्मचर्यको एक सुंदर वृक्ष और उसकी रक्षा करनेवाली नव विधियोको उसकी बाड़का रूप देकर जिससे आचार पालनेमें विशेष स्मृति रह सके ऐसी सरलता कर दी है। इन नौ बाड़ोंको यथार्थरूपसे यहाँ कहता हूँ।

१ वसति—ब्रह्मचारी साधुको स्त्री, पशु अथवा नपुसकसे संयुक्त स्थानमें नहीं रहना चाहिये। स्त्रियाँ दो प्रकारकी हैं:—मनुष्यिणी और देवागना। इनमे प्रत्येकके फिर दो दो भेद है। एक तो मूल, और दूसरा स्त्रीकी मूर्ति अथवा चित्र। इनमेंसे जहाँ किसी भी प्रकारकी स्त्री हो, वहाँ ब्रह्मचारी साधुको न रहना चाहिये, क्योंकि ये विकारके हेतु है। पशुका अर्थ तिर्यंचिणी होता है। जिस स्थानमें गाय, भैंस इत्यादि हो उस स्थानमें नहीं रहना चाहिये। तथा जहाँ पंडग अर्थात् नपुंसकका वास हो वहाँ भी नहीं रहना चाहिये। इस प्रकारका वास ब्रह्मचर्यकी हानि करता है। उनकी कामचेष्टा, हाव, भाव इत्यादि विकार मनको भ्रष्ट करते हैं।

२ कथा—केवल अकेली स्त्रियोको ही अथवा एक ही स्त्रीको ब्रह्मचारीको धर्मोपदेश नही करना चाहिये। कथा मोहकी उत्पत्ति रूप है। ब्रह्मचारीको स्त्रीके रूप, कामविलाससंबंधी ग्रन्थोको नहीं पढ़ना चाहिये, तथा जिससे चित्त चलायमान हो ऐसी किसी भी तरहकी शृंगारसंबंधी बातचीत ब्रह्मचारीको नहीं करनी चाहिये।

३ आसन—स्त्रियोंके साथ एक आसनपर न बैठना चाहिये तथा जिस जगह स्त्री बैठ चुकी हो उस स्थानमें दो घड़ीतक ब्रह्मचारीको नहीं बैठना चाहिये। यह स्त्रियोंकी स्मृतिका कारण है। इससे विकारकी उत्पत्ति होती है, ऐसा भगवानने कहा है।

४ इन्द्रियनिरीक्षण—ब्रह्मचारी साधुओको स्त्रियोके अंगोपांग ध्यानपूर्वक अथवा दृष्टि गड़ा-गड़ाकर न देखने चाहिये । इनके किसी अंगपर दृष्टि एकाग्र होनेसे विकारकी उत्पत्ति होती है ।

५ कुड्यातर—भींत, कनात या टाटका अंतरपट रखकर जहाँ स्त्री-पुरुष मैथुन करते हो वहाँ ब्रह्मचारीको नही रहना चाहिये, क्योकि शब्द, चेष्टा आदि विकारके कारण हैं ।

६ पूर्वक्रीड़ा—स्वयं ब्रह्मचारी साधुने गृहस्थावासमे किसी भी प्रकारकी शृंगारपूर्ण विषय-क्रीड़ाकी हो तो उसकी स्मृति न करनी चाहिये । ऐसा करनेसे ब्रह्मचर्य भंग होता है ।

७ प्रणीत—दूध, दही, घृत आदि मधुर और सचिकण पदार्थोका बहुधा आहार न करना चाहिये । इससे वीर्यकी वृद्धि और उन्माद पैदा होते है और उनसे कामकी उत्पत्ति होती है । इसलिये ब्रह्मचारियोको इनका सेवन नही करना चाहिये ।

८ अतिमात्राहार—पेट भरकर मात्रासे अधिक भोजन नही करना चाहिये । तथा जिससे अतिमात्राकी उत्पत्ति हो ऐसा नहीं करना चाहिये । इससे भी विकार बढ़ता है ।

९ विभूषण—ब्रह्मचारीको स्नान, विलेपन करना, तथा पुष्प आदिका ग्रहण नहीं करना चाहिये । इससे ब्रह्मचर्यकी हानि होती है ।

इस प्रकार विशुद्ध ब्रह्मचर्यके लिये भगवान्‌ने नौ बाड़ें कही है । बहुत करके ये तुम्हारे सुननेमे आई होंगी । परन्तु गृहस्थावासमे अमुक अमुक दिन ब्रह्मचर्य धारण करनेमे अभ्यासियोंके लक्षमे रहनेके लिये यहाँ कुछ समझाकर कहा है ।

७० सनत्कुमार

(१)

चक्रवर्तीके वैभवमे क्या कमी हो सकती है ? सनत्कुमार चक्रवर्ती था । उसका वर्ण और रूप अत्युत्तम था । एक समय सुधर्माकी सभामे उसके रूपकी प्रशंसा हुई । किन्ही दो देवोको यह बात अच्छी न लगी । बादमे वे दोनो देव शंका-निवारण करनेके लिये विप्रके रूपमें सनत्कुमारके अंतः-पुरमे गये । सनत्कुमारके शरीरपर उस समय उबटन लगा हुआ था । उसके अंगमर्दन आदि पदार्थोंका सब जगह विलेपन हो रहा था । वह एक छोटासा पॅचा पहने हुआ था और वह स्नान-मज्जन करनेको बैठा था । विप्रके रूपमे आये हुए देवताओको उसका मनोहर मुख, कंचन वर्णकी काया, और चन्द्र जैसी काति देखकर बहुत आनन्द हुआ और उन्होने सिर हिलाया । यह देखकर चक्रवर्तीने पूॅछा, तुमने सिर क्यो हिलाया ? देवोंने कहा हम आपके रूप और वर्णको देखनेके लिये बहुत अभिलाषी थे । हमने जगह जगह आपके रूप और वर्णकी प्रशंसा सुनी थी । आज हमने उसे प्रत्यक्ष देखा, जिससे हमे पूर्ण आनन्द हुआ । सिर हिलानेका कारण यह है कि जैसा लोकमें कहा जाता है वैसा ही आपका रूप है । इससे अधिक ही है परन्तु कम नहीं । सनत्कुमार अपने रूप और वर्णकी स्तुति सुनकर प्रभुत्वमे आकर बोला कि तुमने इस समय मेरा रूप देखा सो ठीक, परन्तु जिस समय मैं राजसभामे वस्त्रालंकार धारणकर सम्पूर्णरूपसे सज्ज होकर सिंहासनपर बैठता हूँ उस समय मेरा रूप और वर्ण और भी देखने योग्य होता है । अभी तो मै शरीरमे उबटन लगाकर बैठा हूँ । यदि उस

समय तुम मेरा रूप और वर्ण देखोगे तो अद्भुत चमत्कार पाओगे और चकित हो जाओगे। देवोंने कहा, तो फिर हम राजसभामें आवेंगे। ऐसा कहकर वे वहाँसे चले गये। उसके बाद सनत्कुमारने उत्तम वस्त्रालंकार धारण किये। अनेक उपचारोंसे जिससे अपनी काया विशेष आश्चर्य उत्पन्न करे उस तरह सज्ज होकर वह राजसभामें आकर सिंहासनपर बैठा। दोनो ओर समर्थ मंत्री, सुभट, विद्वान् और अन्य सभासद लोग अपने अपने योग्य आसनपर बैठे थे। राजेश्वर चमर छत्रसे ढुलाया जाता हुआ और क्षेम क्षेमसे बधाई दिया जाता हुआ विशेष शोभित हो रहा था। वहाँ वे देवता विप्रके रूपमें आये। अद्भुत रूप-वर्णसे आनन्द पानेके बदले मानों उन्हें खेद हुआ है, ऐसे उन्होंने अपने सिरको हिलाया। चक्रवर्तीने पूँछा, अहो ब्राह्मणो! पहले समयकी अपेक्षा इस समय तुमने दूसरी तरह सिर हिलाया, इसका क्या कारण है, वह मुझे कहो। अवधिज्ञानके अनुसार विप्रोंने कहा कि हे महाराज! उस रूपमें और इस रूपमें ज़मीन आस्मानका फेर हो गया है। चक्रवर्तीने उन्हे इस बातको स्पष्ट समझानेको कहा। ब्राह्मणोंने कहा, अधिराज! आपकी काया पहले अमृततुल्य थी, इस समय ज़हरके तुल्य है। जब आपका अंग अमृततुल्य था तब आनन्द हुआ, और इस समय ज़हरके तुल्य है इस-लिये खेद हुआ। जो हम कहते हैं यदि उस बातको सिद्ध करना हो तो आप तांबूलको थूँकें, अभी उसपर मक्खियाँ बैठेंगी और वे परलोक पहुँच जावेंगी।

७१ सनत्कुमार
(२)

सनत्कुमारने इसकी परीक्षा ली तो यह बात सत्य निकली। पूर्वकर्मके पापके भागमें इस कायाके मदकी मिलावट होनेसे इस चक्रवर्तीकी काया विषमय हो गई थी। विनाशीक और अशुचिमय कायाके ऐसे प्रपंचको देखकर सनत्कुमारके अंतःकरणमें वैराग्य उत्पन्न हुआ। यह संसार केवल छोड़ने योग्य है। और ठीक ऐसी ही अपवित्रता स्त्री, पुत्र, मित्र आदिके शरीरमें है। यह सब मोह, मान करने योग्य नहीं, ऐसा विचारकर वह छह खंडकी प्रभुता त्यागकर चल निकला। जिस समय वह साधुरूपमें विचरता था उस समय उसको कोई महारोग हो गया। उसके सत्यत्वकी परीक्षा लेनेको एक देव वहाँ वैद्यके रूपमें आया और उसने साधुसे कहा, मैं बहुत कुशल राजवैद्य हूँ। आपकी काया रोगका भोग बनी हुई है। यदि इच्छा हो तो तत्काल ही मैं इस रोगका निवारण कर दूँ। साधुने कहा हे वैद्य! कर्मरूपी रोग महा उन्मत्त है, इस रोगको दूर करनेकी यदि तुम्हारी सामर्थ्य हो तो खुशीसे मेरे इस रोगको दूर करो। यदि इस रोगको दूर करनेकी सामर्थ्य न हो तो यह रोग भले ही रहो। देवताने कहा, यह रोग दूर करनेकी मुझमें सामर्थ्य नहीं है। साधुने अपनी लब्धिकी परिपूर्ण प्रबलतासे थूकवाली अंगुली करके उसे रोगपर फेरी कि तत्काल ही उस रोगका नाश हो गया, और काया जैसी थी वैसी हो गई। उस समय देवने अपने स्वरूपको प्रगट किया, और वह धन्यवाद देकर और वंदन करके अपने स्थानको चला गया।

कोढके समान सदैव खून पीपसे खदबदाते हुए महारोगकी उत्पत्ति जिस कायामें है, पलभरमें विनस जानेका जिसका स्वभाव है, जिसके प्रत्येक रोममें पौने दो दो रोग होनेसे जो रोगका भंडार है,

अन्न आदिकी न्यूनाधिकतासे जो रोग प्रत्येक कायामे प्रकट होते है, मलमूत्र, विष्ठा, हाड़, मॉस, राद और श्लेष्मसे जिसकी ढाँचा टिका हुआ है, केवल त्वचासे जिसकी मनोहरता है, उस कायाका मोह सचमुच विभ्रम ही है। सनत्कुमारने जिसका लेशमात्र भी मान किया, वह भी उससे सहन नहीं हुआ, उस कायामे अहो पामर! तू क्या मोह करता है? यह मोह मंगलदायक नहीं।

७२ वत्तीस योग

सत्पुरुषोने नीचेके वत्तीस योगोका संग्रहकर आत्माको उज्ज्वलको वनानेका उपदेश दिया है:—

१ मोक्षसाधक योगके लिये शिष्यको आचार्यके प्रति आलोचना करनी।
२ आचार्यको आलोचनाको दूसरेसे प्रगट नहीं करनी।
३ आपत्तिकालमे भी धर्मकी दृढ़ता नहीं छोड़नी।
४ इस लोक और परलोकके सुखके फलकी वांछा विना तप करना।
५ शिक्षाके अनुसार यतनासे आचरण करना और नयी शिक्षाको विवेकसे ग्रहण करना।
६ ममत्वका त्याग करना।
७ गुप्त तप करना।
८ निर्लोभता रखनी।
९ परीषहके उपसर्गको जीतना।
१० सरल चित्त रखना।
११ आत्मसंयम शुद्ध पालना।
१२ सम्यक्त्व शुद्ध रखना।
१३ चित्तकी एकाग्र समाधि रखनी।
१४ कपट रहित आचारका पालना।
१५ विनय करने योग्य पुरुषोकी यथायोग्य विनय करनी।
१६ संतोषके द्वारा तृष्णाकी मर्यादा कम करना।
१७ वैराग्य भावनामे निमग्न रहना।
१८ माया रहित व्यवहार करना।
१९ शुद्ध क्रियामे सावधान होना।
२० संवरको धारण करना और पापको रोकना।
२१ अपने दोषोको समभावपूर्वक दूर करना।
२२ सव प्रकारके विषयोसे विरक्त रहना।
२३ मूलगुणोमे पॉच महाव्रतोको विशुद्ध पालना।
२४ उत्तरगुणोमे पॉच महाव्रतोंको विशुद्ध पालना।
२५ उत्साहपूर्वक कायोत्सर्ग करना।
२६ प्रमाद रहित ज्ञान ध्यानमे लगे रहना।

२७ हमेशा आत्मचरित्रमे सूक्ष्म उपयोगसे लगे रहना ।

२८ जितेन्द्रियताके लिये एकाग्रतापूर्वक ध्यान करना ।

२९ मृत्युके दुःखसे भी भयभीत नहीं होना ।

३० स्त्रियो आदिके संगको छोड़ना ।

३१ प्रायश्चित्तसे विशुद्धि करनी ।

३२ मरणकालमे आराधना करनी ।

ये एक एक योग अमूल्य हैं । इन सबका संग्रह करनेवाला अंतमे अनंत सुखको पाता है ।

७३ मोक्षसुख

इस पृथिवीमंडलपर कुछ ऐसी वस्तुयें और मनकी इच्छाये हैं जिन्हें कुछ अंशमे जाननेपर भी कहा नहीं जा सकता । फिर भी ये वस्तुये कुछ संपूर्ण शाश्वत अथवा अनंत रहस्यपूर्ण नहीं हैं । जब ऐसी वस्तुका वर्णन नहीं हो सकता तो फिर अनत सुखमय मोक्षकी तो उपमा कहॉसे मिल सकती है ? भगवान्‌से गौतमस्वामीने मोक्षके अनंत सुखके विषयमे प्रश्न किया तो भगवान्‌में उत्तरमे कहा, गौतम ! इस अनंत सुखको मैं जानता हूँ, परन्तु जिससे उसकी समता दी जा सके, ऐसी यहॉ कोई उपमा नहीं। जगत्‌मे इस सुखके तुल्य कोई भी वस्तु अथवा सुख नहीं, ऐसा कहकर उन्होने निम्नरूपसे एक भीलका दृष्टात दिया था ।

किसी जंगलमें एक भोलाभाला भील अपने बाल-बच्चों सहित रहता था । शहर वगैरहकी समृद्धिकी उपाधिका उसे लेशभर भी भान न था । एक दिन कोई राजा अश्वक्रीड़ाके लिये फिरता फिरता वहॉ आ निकला । उसे बहुत प्यास लगी थी । राजाने इशारेसे भीलसे पानी मॉगा । भीलने पानी दिया । शीतल जल पीकर राजा संतुष्ट हुआ । अपनेको भीलकी तरफसे मिले हुए अमूल्य जल-दानका बदला चुकानेके लिये भीलको समझाकर राजाने उसे साथ लिया । नगरमें आनेके पश्चात् राजाने भीलको उसकी जिन्दगीमें नहीं देखी हुई वस्तुओंमें रक्खा । सुंदर महल, पासमें अनेक अनुचर, मनोहर छत्र पलंग, स्वादिष्ट भोजन, मंद मंद पवन और सुगंधी विलेपनसे उसे आनंद आनंद कर दिया । वह विविध प्रकारके हीरा माणिक, मौक्तिक, मणिरत्न और रंगबिरंगी अमूल्य चीज़े निरंतर उस भीलको देखनेके लिये भेजा करता था, उसे बाग-बगीचोंमें घूमने फिरनेके लिये भेजा करता था, इस तरह राजा उसे सुख दिया करता था । एक रातको जब सब सोये हुए थे, उस समय भीलको अपने बाल-बच्चोंकी याद आई इसलिये वह वहॉसे कुछ लिये करे बिना एकाएक निकल पड़ा, और जाकर अपने कुटुम्बियोंसे मिला । उन सबोंने मिलकर पूँछा कि तू कहॉ था ? भीलने कहा, बहुत सुखमे । वहॉ मैंने बहुत प्रशंसा करने लायक वस्तुये देखीं ।

कुटुम्बी—परन्तु वे कैसी थी, यह तो हमे कह ।

भील—क्या कहूँ, यहॉ वैसी एक भी वस्तु ही नहीं ।

कुटुम्बी—यह कैसे हो सकता है ? ये शंख, सीप, कौड़े कैसे सुंदर पडे है ! क्या वहॉ कोई ऐसी देखने लायक वस्तु थी ?

भील—नही भाई, ऐसी चीज़ तो यहाँ एक भी नही । उनके सौवे अथवा हजारवे भागतकको भी मनोहर चीज़ यहाँ कोई नही ।

कुटुम्बी—तो तू चुपचाप बैठा रह । तुझे भ्रमणा हुई है । भला इससे अच्छा और क्या होगा ?

हे गौतम ! जैसे यह भील राज-वैभवके सुख भोगकर आया था; और उन्हे जानता भी था, फिर भी उपमाके योग्य वस्तु न मिलनेसे वह कुछ नही कह सकता था, इसी तरह अनुपमेय मोक्षको, सच्चिदानंद स्वरूपमय निर्विकारी मोक्षके सुखके असंख्यातवे भागको भी योग्य उपमाके न मिलनेसे मै तुझे कह नहीं सकता।

मोक्षके स्वरूपमे शंका करनेवाले तो कुतर्कवादी है। इनको क्षणिक सुखके विचारके कारण सत्सुखका विचार कहाँसे आ सकता है ? कोई आत्मिक-ज्ञानहीन ऐसा भी कहते है कि संसारसे कोई विशेष सुखका साधन मोक्षमे नही रहता इसलिये इसमे अनंत अव्याबाध सुख कह दिया है, इनका यह कथन विवेकयुक्त नही । निद्रा प्रत्येक मानवीको प्रिय है, परन्तु उसमे वे कुछ जान अथवा देख नही सकते, और यदि कुछ जाननेमे आता भी है, तो वह केवल मिथ्या स्वप्नोपाधि आती है । जिसका कुछ असर हो ऐसी स्वप्नरहित निद्रा जिसमे सूक्ष्म स्थूल सब कुछ जान और देख सकते हो, और निरुपाधिसे शात नीद ली जा सकती हो, तो भी कोई उसका वर्णन कैसे कर सकता है, और कोई इसकी उपमा भी क्या दे ? यह तो स्थूल दृष्टात है, परन्तु बालविवेकी इसके ऊपरसे कुछ विचार कर सके इसलिये यह कहा है ।

भीलका दृष्टात समझानेके लिये भाषा-भेदके फेरफारसे तुम्हे कहा है ।

७४ धर्मध्यान
(१)

भगवान्‌ने चार प्रकारके ध्यान बताये हैं—आर्त्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल। पहले दो ध्यान त्यागने योग्य है । पीछेके दो ध्यान आत्मसार्थक हैं । श्रुतज्ञानके भेदोको जाननेके लिये, शास्त्र-विचारमे कुशल होनेके लिये, निर्ग्रन्थ प्रवचनका तत्त्व पानेके लिये, सत्पुरुषोद्वारा सेवा करने योग्य, विचारने योग्य और ग्रहण करने योग्य धर्मध्यानके मुख्य सोलह भेद है । पहले चार भेदोको कहता हूँ—१ आणाविचय (आज्ञाविचय), २ आवायविचय (अपायविचय), ३ विवागविचय (विपाक-विचय), ४ संठाणविचय (संस्थानविचय) । १ आज्ञाविचय—आज्ञा अर्थात् सर्वज्ञ भगवान्‌ने धर्म-तत्त्वसंबंधी जो कुछ भी कहा है वह सब सत्य है, उसमे शंका करना योग्य नहीं । कालकी हीनतासे, उत्तम ज्ञानके विच्छेद होनेसे, बुद्धिकी मंदतासे अथवा ऐसे ही अन्य किसी कारणसे मेरी समझमे ये तत्त्व नही आते, परन्तु अर्हन्त भगवान्‌ने अंशमात्र भी मायायुक्त अथवा असत्य नहीं कहा, कारण कि वे वीतरागी, त्यागी और निस्पृही थे। इनको मृषा कहनेका कोई भी कारण न था। तथा सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी होनेके कारण अज्ञानसे भी वे मृषा नही कहेगे । जहाँ अज्ञान ही नहीं वहाँ तत्संबंधी मृषा कहाँसे हो सकता है ? इस प्रकार चिंतन करना ‘ आज्ञाविचय ’ नामका प्रथम भेद है । २ अपायविचय—राग, द्वेष, काम, क्रोध इत्यादिसे जीवको जो दुःख उत्पन्न होता है, उसीसे इसे भवमे भटकना पड़ता है । इसका चिंतवन करना ‘अपायविचय’ नामका दूसरा भेद है । अपायका अर्थ दुःख है । ३ विपाक-

विचय—मैं क्षण क्षणमे जो जो दुःख सहन कर रहा हूँ, भवाटवीमे पर्यटन कर रहा हूँ, अज्ञान आदि प्राप्त कर रहा हूँ, वह सब कर्मोंके फलके उदयसे है—ऐसा चिंतवन करना धर्मध्यान नामका तीसरा कर्मविपाकचिंतन भेद है। ४ संस्थानविचय—तीन लोकका स्वरूप चिंतवन करना। लोकस्वरूप सुप्रतिष्ठितके आकारका है; जीव अजीवसे सर्वत्र भरपूर है; यह असंख्यात योजनकी कोटानुकोटिसे तिरछा लोक है। इसमे असंख्यातो द्वीपसमुद्र है। असख्यातों ज्योतिषी, भवनवासी, व्यतरो आदिका इसमें निवास है। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यकी विचित्रता इसमे लगी हुई है। अढाई द्वीपमे जघन्य तीर्थकर बीस और उत्कृष्ट एकसौ सत्तर होते हैं। जहाँ ये तथा केवली भगवान् और निर्ग्रंथ मुनिराज विचरते हैं, उन्हें "वदामि, नमंसामि, सक्कारेमि, समाणेमि, कल्लाणं, मंगल, देवय, चेइयं, पज्जुवासामि" करता हूँ। इसी तरह वहाँके रहनेवाले श्रावक-श्राविकाओका गुणगान करता हूँ। उस तिरछे लोकसे असंख्यातगुना अधिक ऊर्ध्वलोक है। वहाँ अनेक प्रकारके देवताओका निवास है। इसके ऊपर ईषत् प्राग्भारा है। उसके ऊपर मुक्तात्मायें विराजती हैं। उन्हें "वदामि, यावत् पज्जुवासामि" करता हूँ। उस ऊर्ध्व-लोकसे भी कुछ विशेष अधोलोक है। उसमे अनंत दुःखोसे भरा हुआ नरकावास और भुवनपतियोंके भुवन आदि हैं। इन तीन लोकके सब स्थानोको इस आत्माने सम्यक्त्वरहित क्रियासे अनतबार जन्म-मरणसे स्पर्श किया है—ऐसा चिंतवन करना सस्थानविचय नामक धर्मध्यानका चौथा भेद है। इन चार भेदोको विचारकर सम्यक्त्वसहित श्रुत और चारित्र धर्मकी आराधना करनी चाहिये जिससे यह अनंत जन्म-मरण दूर हो। धर्मध्यानके इन चार भेदोको स्मरण रखना चाहिये।

७५ धर्मध्यान
(२)

धर्मध्यानके चार लक्षणोंको कहता हूँ। १ आज्ञारुचि—अर्थात् वीतराग भगवान्‌की आज्ञा अगीकार करनेकी रुचि उत्पन्न होना। २ निसर्गरुचि—आत्माका अपने स्वाभाविक जातिस्मरण आदि ज्ञानसे श्रुतसहित चारित्र-धर्मको धारण करनेकी रुचि प्राप्त करना उसे निसर्गरुचि कहते है। ३ सूत्ररुचि—श्रुतज्ञान और अनत तत्त्वके भेदोके लिये कहे हुए भगवान्‌के पवित्र वचनोंका जिनमे गूँथन हुआ है, ऐसे सूत्रोंको श्रवण करने, मनन करने और भावसे पठन करनेकी रुचिका उत्पन्न होना सूत्ररुचि है। ४ उपदेशरुचि—अज्ञानसे उपार्जित कर्मोको हम ज्ञानसे खपावे, और ज्ञानसे नये कर्मोको न बाँधे; मिथ्यात्वके द्वारा उपार्जित कर्मोंको सम्यक्‌भावसे खपावे और सम्यक्‌भावसे नये कर्मोंको न बाँधे; अवैराग्यसे उपार्जित कर्मोको वैराग्यसे खपावें और वैराग्यसे नये कर्मोको न बाँधे, कषायसे उपार्जित कर्मोंको कषायको दूर करके खपावे और क्षमा आदिसे नये कर्मोंको न बाँधे, अशुभ योगसे उपार्जित कर्मोंको शुभ योगसे खपावे और शुभ योगसे नये कर्मोंको न बाँधें, पाँच इन्द्रियोंके स्वादरूप आस्रवसे उपार्जित कर्मोंको सवरसे खपावे और तपरूप (इच्छारोध) संवरसे नये कर्मोंको न बाँधे—इसके लिये अज्ञान आदि आस्रव-मार्ग छोडकर ज्ञान आदि संवर-मार्ग ग्रहण करनेके लिये तीर्थंकर भगवान्‌के उपदेशको सुननेकी रुचिके उत्पन्न होनेको उपदेशरुचि कहते हैं। धर्मध्यानके ये चार लक्षण कहे।

धर्मध्यानके चार आलंबन कहता हूँ—१ वाचना, २ पृच्छना, ३ परावर्त्तना, ४ धर्मकथा।

१ वाचना—विनय सहित निर्जरा तथा ज्ञान प्राप्त करनेके लिये सूत्र-सिद्धातके मर्म जाननेवाले गुरु अथवा सत्पुरुषके समीप सूत्रतत्त्वके अभ्यास करनेको, वाचना आलंबन कहते है। २ पृच्छना—अपूर्व ज्ञान प्राप्त करनेके लिये जिनेश्वर भगवान्‌के मार्गको दिपाने तथा शंका-शल्यको निवारण करनेके लिये, तथा दूसरोके तत्त्वोकी मध्यस्थ परीक्षाके लिये यथायोग्य विनयसहित गुरु आदिसे प्रश्नोंके पूँछनेको पृच्छना कहते है। ३ परावर्त्तना—पूर्वमें जो जिनभाषित सूत्रार्थ पढे हो उन्हे स्मरणमे रखनेके लिये और निर्जराके लिये शुद्ध उपयोगसहित शुद्ध सूत्रार्थकी बारंबार सज्झाय करना परावर्त्तना आलंबन है। ४ धर्मकथा—वीतराग भगवान्‌ने जो भाव जैसा प्रणीत किया है, उस भावको उसी तरह समझकर, ग्रहणकर, विशेष रूपसे निश्चय करके, शंका काखा वितिगिच्छारहित अपनी निर्जराके लिये सभामे उन भावोको उसी तरह प्रणीत करना, जिससे सुननेवाले और श्रद्धा करनेवाले दोनो ही भगवान्‌की आज्ञाके आराधक हो, उसे धर्मकथा आलंबन कहते हैं। ये धर्मध्यानके चार आलबन कहे। अब धर्मध्यानकी चार अनुप्रेक्षाएँ कहता हूँ—१ एकत्वानुप्रेक्षा, २ अनित्यानुप्रेक्षा, ३ अशरणानुप्रेक्षा, ४ संसारानुप्रेक्षा। इन चारोका उपदेश बारह भावनाके पाठमे कहा जा चुका है। वह तुम्हे स्मरण होगा।

७६ धर्मध्यान

(३)

धर्मध्यानको पूर्व आचार्योंने और आधुनिक मुनीश्वरोने भी विस्तारपूर्वक बहुत समझाया है। इस ध्यानसे आत्मा मुनित्वभावमे निरंतर प्रवेश करती जाती है।

जो जो नियम अर्थात् भेद, लक्षण, आलम्बन और अनुप्रेक्षा कहे है, वे बहुत मनन करने योग्य है। अन्य मुनीश्वरोंके कहे अनुसार मैंने उन्हे सामान्य भाषामे तुम्हें कहा है। इसके साथ निरतर ध्यान रखनेकी आवश्यकता यह है कि इनमेंसे हमने कौनसा भेद प्राप्त किया, अथवा कौनसे भेदकी ओर भावना रक्खी है? इन सोलह भेदोमे हर कोई हितकारी और उपयोगी है, परन्तु जिस अनुक्रमसे उन्हे ग्रहण करना चाहिये उस अनुक्रमसे ग्रहण करनेसे वे विशेष आत्म-लाभके कारण होते है।

बहुतसे लोग सूत्र-सिद्धांतके अध्ययन कंठस्थ करते है। यदि वे उनके अर्थ, और उनमे कहे मूल-तत्त्वोकी ओर ध्यान दे तो वे कुछ सूक्ष्म भेदको पा सकते हैं। जैसे केलेके एक पत्रमे दूसरे और दूसरेमे तीसरे पत्रकी चमत्कृति है, वैसे ही सूत्रार्थमे भी चमत्कृति है। इसके ऊपर विचार करनेसे निर्मल और केवल दयामय मार्गके वीतराग-प्रणीत तत्त्वबोधका बीज अंतःकरणमे अकुरित होगा। वह अनेक प्रकारके शास्त्रावलोकनसे, प्रश्नोत्तरसे, विचारसे और सत्पुरुषोके समागमसे पोषण पाकर वृद्धि होकर वृक्षरूप होगा। यह पछि निर्जरा और आत्म-प्रकाशरूप फल देगा।

श्रवण, मनन और निदिध्यासनके प्रकार वेदातियोंने भी बताये है। परन्तु जैसे इस धर्मध्यानके पृथक् पृथक् सोलह भेद यहाँ कहे गये है वैसे तत्त्वपूर्वक भेद अन्यत्र कही पर भी नही कहे गये, यह अपूर्व है। इसमेसे शास्त्रोंका श्रवण करनेका, मनन करनेका, विचारनेका, अन्यको बोध करनेका, शंका कांखा दूर करनेका, धर्मकथा करनेका, एकत्व विचारनेका, अनित्यता विचारनेका, अशरणता विचारनेका,

वैराग्य पानेका, संसारके अनंत दुःख मनन करनेका और वीतराग भगवंतकी आज्ञासे समस्त लोकालोकका विचार करनेका अपूर्व उत्साह मिलता है। भेद भेदसे इसके और अनेक भाव समझाये हैं।

इसमे कुछ भावोके समझनेसे तप, शाति, क्षमा, दया, वैराग्य और ज्ञानका बहुत बहुत उदय होगा।

तुम कदाचित् इन सोलह भेदोका पठन कर गये होगे तो भी फिर फिरसे उसका पुनरावर्तन करना।

७७ ज्ञानके संबंधमें दो शब्द

(१)

जिसके द्वारा वस्तुका स्वरूप जाना जाय उसे ज्ञान कहते हैं, ज्ञान शब्दका यही अर्थ है। अब अपनी बुद्धिके अनुसार विचार करना है कि क्या इस ज्ञानकी कुछ आवश्यकता है? यदि आवश्यकता है तो उसकी प्राप्तिके क्या साधन है? यदि साधन है तो क्या इन साधनोंके अनुकूल द्रव्य, देश, काल और भाव मौजूद है? यदि देश, काल आदि अनुकूल हैं तो वे कहाँ तक अनुकूल है? और विशेष विचार करें तो इस ज्ञानके कितने भेद है? जानने योग्य क्या है? इसके भी कितने भेद है? जाननेके कौन कौन साधन है? किस किस मार्गसे इन साधनोंको प्राप्त किया जाता है? इस ज्ञानका क्या उपयोग अथवा क्या परिणाम है? ये सब बाते जानना आवश्यक है।

१. ज्ञानकी क्या आवश्यकता है? पहले इस विषयपर विचार करते हैं। यह आत्मा इस चौदह राजू प्रमाण लोकमें चारो गतियोंमें अनादिकालसे कर्मसहित स्थितिमे पर्यटन करती है। जहाँ क्षणभर भी सुखका भाव नहीं ऐसे नरक, निगोद आदि स्थानोंको इस आत्माने बहुत बहुत कालतक बारम्बार सेवन किया है; असह्य दुःखोंको पुनः पुनः और कहो तो अनंतोंबार सहन किया है। इस संतापसे निरंतर संतप्त आत्मा केवल अपने ही कर्मोंके विपाकसे घूमा करती है। इस घूमनेका कारण अनंत दुःख देनेवाले ज्ञानावरणीय आदि कर्म हैं, जिनके कारण आत्मा अपने स्वरूपको प्राप्त नहीं कर सकती, और विषय आदि मोहके बंधनको अपना स्वरूप मान रही है। इन सबका परिणाम केवल ऊपर कहे अनुसार ही होता है, अर्थात् आत्माको अनंत दुःख अनंत भावोंसे सहन करने पड़ते है। कितना ही अप्रिय, कितना ही खेददायक और कितना ही रौद्र होनेपर भी जो दुःख अनंत कालसे अनंतबार सहन करना पड़ा, उस दुःखको केवल अज्ञान आदि कर्मसे ही सहन किया, इसलिये अज्ञान आदिको दूर करनेके लिये ज्ञानकी अत्यंत आवश्यकता है।

७८ ज्ञानके संबंधमें दो शब्द

(२)

देह भी नहीं वहाँ ज्ञान-प्राप्ति भी किसकी हो ? इसलिये मानव-देहके साथ साथ सर्वज्ञके वचनामृतकी प्राप्ति और उसकी श्रद्धा भी साधनरूप है। सर्वज्ञके वचनामृत अकर्मभूमि अथवा केवल अनार्यभूमिमें नहीं मिलते, तो वहाँ मानव-देह किस कामका ? इसलिये कर्मभूमि और उसमे भी आर्यभूमि —यह भी साधनरूप है। तत्त्वकी श्रद्धा उत्पन्न होनेके लिये और ज्ञान होनेके लिये निर्ग्रन्थ गुरुकी आवश्यकता है। अन्यसे जो कुल मिथ्यात्वी है, उस कुलमे जन्म होना भी आत्म-ज्ञानकी प्राप्तिमे हानिरूप ही होता है। क्योंकि धर्ममतभेद अत्यन्त दुःखदायक है। परंपरासे पूर्वजोके द्वारा ग्रहण किये हुए दर्शन ही सत्य मालूम होने लगते है। इससे भी आत्म-ज्ञान रुकता है। इसलिये अच्छा कुल भी आवश्यक है। यह सब प्राप्त करने जितना भाग्यशाली होनेमे सत्पुण्य अर्थात् पुण्यानुबंधी पुण्य इत्यादि उत्तम साधन है। यह दूसरा साधन भेद कहा।

३. यदि साधन है तो क्या उनके अनुकूल देश और काल है, इस तीसरे भेदका विचार करें। भरत, महाविदेह इत्यादि कर्मभूमि और उनमे भी आर्यभूमि देशरूपसे अनुकूल है। जिज्ञासु भव्य ! तुम सब इस समय भरतमें हो, और भारत देश अनुकूल है। काल भावकी अपेक्षासे मति और श्रुतज्ञान प्राप्त कर सकनेकी अनुकूलता भी है। क्योकि इस दुःषम पंचमकालमें परमावधि, मनःपर्यव, और केवल ये पवित्र ज्ञान परम्परा आम्नायके अनुसार विच्छेद हो गये हैं। सारांश यह है कि कालकी परिपूर्ण अनुकूलता नहीं।

४. देश, काल आदि यदि कुछ भी अनुकूल है तो वे कहाँतक है ? इसका उत्तर यह है कि अवशिष्ट सैद्धांतिक मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, सामान्य मतसे ज्ञान, कालकी अपेक्षासे इक्कीस हज़ार वर्ष रहेगा; इनमेंसे अढ़ाई हज़ार वर्ष बीत गये, अब साढ़े अठारह हज़ार वर्ष बाकी है, अर्थात् पंचमकालकी पूर्णतातक कालकी अनुकूलता है। इस कारणसे देश और काल अनुकूल है।

७९ ज्ञानके संबंधमे दो शब्द

(३)

अब विशेष विचार करे।

१. आवश्यकता क्या है ? इस मुख्य विचारपर ज़रा और गंभीरतासे विचार करे तो मालूम होगा कि मुख्य आवश्यकता तो अपनी स्वरूप-स्थितिकी श्रेणी चढ़ना है। अनंत दुःखका नाश, और दुःखके नाशसे आत्माके श्रेयस्कर सुखकी सिद्धि यह हेतु है; क्योंकि आत्माको सुख निरन्तर ही प्रिय है। परन्तु यह सुख यदि स्वस्वरूपक सुख हो तभी प्रिय है। देश कालकी अपेक्षासे श्रद्धा ज्ञान इत्यादि उत्पन्न करनेकी आवश्यकता, और सम्यग् भावसहित उच्चगति, वहाँसे महाविदेहमे मानवदेहमे जन्म, वहाँ सम्यग् भावकी और भी उन्नति, तत्त्वज्ञानकी विशुद्धता और वृद्धि, अन्तमे परिपूर्ण आत्मसाधन, ज्ञान और उसका सत्य परिणाम, सम्पूर्णरूपसे सब दुःखोंका अभाव अर्थात् अखंड, अनुपम, अनंत शाश्वत, पवित्र मोक्षकी प्राप्ति—इन सबके लिये ज्ञानकी आवश्यकता है।

२. ज्ञानके कितने भेद है, तत्संबंधी विचार कहता हूँ। इस ज्ञानके अनंत भेद है; परन्तु सामान्य दृष्टिसे समझनेके लिये सर्वज्ञ भगवान्‌ने मुख्य पाँच भेद कहे है, उन्हे ज्यों का त्यों कहता

हूँ—पहला मति, दूसरा श्रुत, तीसरा अवधि, चौथा मनःपर्यव और पाँचवाँ सम्पूर्णस्वरूप केवल। इनके भी प्रतिभेद हैं और उनके भी अतीन्द्रिय स्वरूपसे अनन्त भंगजाल हैं।

३. जानने योग्य क्या है? अब इसका विचार करें। वस्तुके स्वरूपको जाननेका नाम ज्ञान है; तब वस्तु तो अनत हैं, इन्हे किस पक्तिसे जानें? सर्वज्ञ होनेपर वे सत्पुरुष सर्वदर्शितासे अनंत वस्तुओंके स्वरूपको सब भेदोसे जानते और देखते हैं, परन्तु उन्होंने इस सर्वज्ञ पदवीको किन किन वस्तुओंके जाननेसे प्राप्त किया? जबतक अनंत श्रेणियोंको नहीं जाना तबतक किस वस्तुको जानते जानते वे अनन्त वस्तुओंको अनन्तरूपसे जान पावेंगे? इस शंकाका अब समाधान करते हैं। जो अनंत वस्तुयें मानी हैं वे अनंत भंगोंकी अपेक्षासे है। परन्तु मुख्य वस्तुत्वकी दृष्टिसे उसकी दो श्रेणियाँ हैं—जीव और अजीव। विशेष वस्तुत्व स्वरूपसे नौ तत्त्व अथवा छह द्रव्यकी श्रेणियाँ मानी जा सकती हैं। इस पक्तिसे चढ़ते चढ़ते सर्व भावसे ज्ञात होकर लोकालोकके स्वरूपको हस्तामलककी तरह जान और देख सकते हैं। इसलिये जानने योग्य पदार्थ तो केवल जीव और अजीव हैं। इस तरह जाननेकी मुख्य दो श्रेणियाँ कहाईं।

८० ज्ञानके संबंधमें दो शब्द

(४)

४. इनके उपभेदोंको संक्षेपमें कहता हूँ। 'जीव' चैतन्य लक्षणसे एकरूप है। देहस्वरूपसे और द्रव्यरूपसे अनंतानत है। देहस्वरूपमें उसके इन्द्रिय आदि जानने योग्य है, उसकी गति, विगति इत्यादि जानने योग्य हैं; उसकी संसर्ग ऋद्धि जानने योग्य है। इसी तरह 'अजीव' के रूपी अरूपी पुद्गल आकाश आदि विचित्रभाव कालचक्र इत्यादि जानने योग्य हैं। प्रकारातरसे जीव, अजीवको जाननेके लिये सर्वज्ञ सर्वदर्शीने नौ श्रेणिरूप नव तत्त्वको कहा है—

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष।

इनमे कुछ ग्रहण करने योग्य और कुछ त्यागने योग्य हैं। ये सब तत्त्व जानने योग्य तो हैं ही।

५. जाननेके साधन। यद्यपि सामान्य विचारसे इन साधनोंको जान लिया है फिर भी कुछ विशेष विचार करते है। भगवान्‌की आज्ञा और उसके शुद्ध स्वरूपको यथार्थरूपसे जानना चाहिये। स्वय तो कोई विरले ही जानते हैं, नहीं तो इसे निर्ग्रन्थज्ञानी गुरु बता सकते हैं। रागहीन ज्ञाता सर्वोत्तम हैं। इसलिये श्रद्धाका बीज रोपण करनेवाला अथवा उसे पोषण करनेवाला गुरु केवल साधनरूप है। इन साधन आदिके लिये संसारकी निवृत्ति अर्थात् शम, दम, ब्रह्मचर्य आदि अन्य साधन हैं। इन्हे साधनोंको प्राप्त करनेका मार्ग कहा जाय तो भी ठीक है।

६. इस ज्ञानके उपयोग अथवा परिणामके उत्तरका आशय ऊपर आ गया है; परन्तु कालभेदसे कुछ कहना है, और वह इतना ही कि दिनमें दो घडीका वक्त भी नियमितरूपसे निकालकर जिनेश्वर भगवानके कहे हुए तत्त्वोपदेशकी पर्यटना करो। वीतरागके एक सैद्धातिक शब्दसे ज्ञानावरणीय कर्मका बहुत क्षयोपशम होगा ऐसा मैं विवेकसे कहता हूँ।

८१ पंचमकाल

कालचक्रके विचारोंको अवश्य जानना चाहिये। श्री जिनेश्वरने इस कालचक्रके दो मुख्य भेद कहे

हैं—उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी। एक एक भेदके छह छह आरे है। आज कलका चालू आरा पंचमकाल कहलाता है, और वह अवसर्पिणी कालका पाँचवा आरा है। अवसर्पिणी उतरते हुए कालको कहते है। इस उतरते हुए कालके पाँचवे आरेमे इस भरतक्षेत्रमे कैसा आचरण होना चाहिये इसके लिये सत्पुरुषोंने कुछ विचार बताये है, उन्हे अवश्य जानना चाहिये।

इन्होंने पंचमकालके स्वरूपको मुख्यरूपसे इस प्रकारका बताया है। निर्ग्रंथ प्रवचनके ऊपरसे मनुष्योकी श्रद्धा क्षीण होती जायेगी। धर्मके मूलतत्त्वोमे मतमतातरोकी वृद्धि होगी। पाखंडी और प्रपंची मतोका मंडन होगा। जन समूहकी रुचि अधर्मकी ओर फिरेगी। सत्य और दया धीमे धीमे पराभवको प्राप्त होगे। मोह आदि दोषोकी वृद्धि होती जायगी। दंभी और पापिष्ठ गुरु पूज्य होगे। दुष्टवृत्तिके मनुष्य अपने फंदेमे सफल होगे। मीठे किन्तु धूर्तवक्ता पवित्र माने जायँगे। शुद्ध ब्रह्मचर्य आदि शीलसे युक्त पुरुष मलिन कहलावेंगे। आत्म-ज्ञानके भेद नष्ट होते जायँगे। हेतुहीन क्रियाएँ बढती जायगी। अज्ञान क्रियाका बहुधा सेवन किया जायगा। व्याकुल करनेवाले विषयोके साधन बढ़ते जायँगे। एकातवादी पक्ष सत्ताधीश होंगे। शृंगारसे धर्म माना जावेगा।

सच्चे क्षत्रियोके बिना भूमि शोकसे पीडित होगी। निर्माल्य राजवशी वेश्याके विलासमे मोहको प्राप्त होगे; धर्म, कर्म और सच्ची राजनीति भूल जायँगे; अन्यायको जन्म देगे; जैसे लूटा जावेगा वैसे प्रजाको लूटेंगे; स्वयं पापिष्ट आचरणको सेवनकर प्रजासे उन आचरणोंका पालन करावेगे। राजवंशके नामपर शून्यता आती जायगी। नीच मन्त्रियोंकी महत्ता बढ़ती जायगी। ये लोग दीन प्रजाको चूसकर भंडार भरनेका राजाको उपदेश देगे; शील-भग करनेके धर्मको राजाको अंगीकार करायँगे; शौर्य आदि सद्गुणोंका नाश करायँगे, मृगया आदि पापोमे अँधे बनावेगे। राज्याधिकारी अपने अधिकारसे हजार गुना अहंकार रक्खेगे। ब्राह्मण लालची और लोभी हो जायँगे; सद्विद्याको छुपा देगे; संसारी साधनोको धर्म ठहरावेंगे। वैश्य लोग मायावी, सर्वथा स्वार्थी और कठोर हृदयके होते जायँगे। समग्र मनुष्यवर्गकी सद्वृत्तियाँ घटती जायँगी। अकृत और भयकर कृत्य करनेसे उनकी वृत्ति नही रुकेगी। विवेक, विनय, सरलता, इत्यादि सद्गुण घटते जायँगे। अनुकंपाका स्थान हीनता ले लेगी। माताकी अपेक्षा पत्नीमे प्रेम बढ़ेगा। पिताकी अपेक्षा पुत्रमें प्रेम बढ़ेगा। पातिव्रत्यको नियमसे पालनेवाली सुंदरियाँ घट जायँगी। स्नानसे पवित्रता मानी जायगी। धनसे उत्तम कुल गिना जायगा। शिष्य गुरुसे उलटा चलेगे। भूमिका रस घट जायगा। सक्षेपमे कहनेका भावार्थ यह है कि उत्तम वस्तुओकी क्षीणता और कनिष्ठ वस्तुका उदय होगा। पंचमकालका स्वरूप उक्त बातोमेका प्रत्यक्ष सूचन भी कितना अधिक करता है?

मनुष्य सद्धर्मतत्त्वमे परिपूर्ण श्रद्धावान नहीं हो सकता, सम्पूर्ण और तत्त्वज्ञान नहीं पा सकता। जम्बूस्वामीके निर्वाणके बाद दस निर्वाणी वस्तुएँ इस भरतक्षेत्रसे व्यवच्छेद हो गईं।

पचमकालका ऐसा स्वरूप जानकर विवेकी पुरुष तत्त्वको ग्रहण करेगे, कालानुसार धर्मतत्त्वकी श्रद्धा प्राप्त कर उच्चगति साधकर अन्तमे मोक्ष प्राप्त करेंगे। निर्ग्रन्थ प्रवचन, निर्ग्रन्थ गुरु इत्यादि धर्म-तत्त्वके पानेके साधन है। इनकी आराधनासे कर्मकी विराधना है।

८२ तत्त्वावबोध

१

दशवैकालिक सूत्रमें कथन है कि जिसने जीवाजीवके भावोंको नहीं जाना वह अबुध संयममे कैसे स्थिर रह सकता है ? इस वचनामृतका तत्पर्य यह है कि तुम आत्मा अनात्माके स्वरूपको जानो, इसके जाननेकी अत्यंत आवश्यकता है ।

आत्मा अनात्माका सत्य स्वरूप निर्ग्रन्थ प्रवचनमेसे ही प्राप्त हो सकता है । अनेक अन्य मतोंमे इन दो तत्त्वोके विषयमे विचार प्रगट किये गये है, परन्तु वे यथार्थ नहीं हैं । महाप्रज्ञावान आचार्यों-द्वारा किये गये विवेचन सहित प्रकारातरसे कहे हुए मुख्य नौ तत्त्वोको जो विवेक बुद्धिसे जानता है, वह सत्पुरुष आत्माके स्वरूपको पहचान सकता है ।

स्याद्वादकी शैली अनुपम और अनंत भाव-भेदोसे भरी है । इस शैलीको परिपूर्णरूपसे तो सर्वज्ञ और सर्वदर्शी ही जान सकते हैं, फिर भी इनके वचनामृतके अनुसार आगमकी मददसे बुद्धिके अनुसार नौ तत्त्वका स्वरूप जानना आवश्यक है । इन नौ तत्त्वोको प्रिय श्रद्धा भावसे जाननेसे परम विवेक-बुद्धि, शुद्ध सम्यक्त्व और प्रभाविक आत्म-ज्ञानका उदय होता है । नौ तत्त्वोंमें लोकालोकका सम्पूर्ण स्वरूप आ जाता है । जितनी जिसकी बुद्धिकी गति है, उतनी वे तत्त्वज्ञानकी ओर दृष्टि पहुँ-चाते हैं, और भावके अनुसार उनकी आत्माकी उज्ज्वलता होती है। इससे वे आत्म-ज्ञानके निर्मल रसका अनुभव करते हैं । जिनका तत्त्वज्ञान उत्तम और सूक्ष्म है, तथा जो सुशीलयुक्त तत्त्वज्ञानका सेवन करते हैं वे पुरुष महान् भाग्यशाली हैं ।

इन नौ तत्त्वोंके नाम पहिलेके शिक्षापाठमे मैं कह गया हूँ । इनका विशेष स्वरूप प्रज्ञावान् आचार्योंके महान् ग्रंथोंसे अवश्य जानना चाहिये; क्योंकि सिद्धांतमें जो जो कहा है उन सबके विशेष भेदोसे समझनेमे प्रज्ञावान् आचार्यों द्वारा विरचित ग्रंथ सहायभूत हैं। ये गुरुगम्य भी हैं । नय, निक्षेप और प्रमाणके भेद नवतत्त्वके ज्ञानमें आवश्यक हैं, और उनका यथार्थज्ञान इन प्रज्ञावंतोने बताया है।

८३ तत्त्वावबोध

(२)

सर्वज्ञ भगवान्ने लोकालोकके सम्पूर्ण भावोको जाना और देखा और उनका उपदेश उन्होने भव्य लोगोको दिया । भगवान्ने अनंत ज्ञानके द्वारा लोकालोकके स्वरूपविषयक अनंत भेद जाने थे; परन्तु सामान्य मनुष्योंको उपदेशके द्वारा श्रेणी चढ़नेके लिए उन्होंने मुख्य नव पदार्थको बताया। इससे लोकालोकके सब भावोंका इसमें समावेश हो जाता है। निर्ग्रन्थ प्रवचनका जो जो सूक्ष्म उपदेश है वह तत्त्वकी दृष्टिसे नवतत्त्वमे समाविष्ट हो जाता है । तथा सम्पूर्ण धर्ममतोंका सूक्ष्म विचार इस नवतत्त्व-विज्ञानके एक देशमे आ जाता है । आत्माकी जो अनंत शक्तियॉ ढ़ॅकी हुई हैं उन्हें प्रकाशित करनेके लिये अर्हत भगवान्का पवित्र उपदेश है। ये अनंत शक्तियॉ उस समय प्रफुल्लित हो सकती हैं जब कि नवतत्त्व-विज्ञानका पारगामी ज्ञानी हो जाय ।

सूक्ष्म द्वादशांगी ज्ञान भी इस नवतत्त्व स्वरूप ज्ञानका सहायरूप है, यह भिन्न भिन्न प्रकारसे इस नवतत्त्व स्वरूप ज्ञानका उपदेश करता है। इस कारण यह निःशंकरूपसे मानना चाहिये कि जिसने अनंत भावभेदसे नवतत्त्वको जान लिया वह सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो गया।

यह नवतत्त्व त्रिपदीकी अपेक्षासे घटाना चाहिये। हेय, ज्ञेय और उपादेय अर्थात् त्याग करने योग्य, जानने योग्य, और ग्रहण करने योग्य, ये तीन भेद नवतत्त्व स्वरूपके विचारमें अन्तर्हित है।

प्रश्न—जो त्यागने योग्य है उसे जानकर हम क्या करेंगे? जिस गॉवमे जाना नही है उसका मार्ग पूँछनेसे क्या प्रयोजन?

उत्तर—तुम्हारी इस शंकाका सहजमे ही समाधान हो सकता है। त्यागने योग्यको भी जानना आवश्यक है। सर्वज्ञ भी सब प्रकारके प्रपंचोको जान रहे हैं। त्यागने योग्य वस्तुको जाननेका मूल तत्त्व यह है कि यदि उसे न जाना हो तो कभी अत्याज्य समझकर उस वस्तुका सेवन न हो जाय। एक गॉवसे दूसरे गॉवमे पहुँचनेतक रास्तेमे जो जो गॉव आते हो उनका रास्ता भी पूँछना पड़ता है। नही तो इष्ट स्थानपर नहीं पहुँच सकते। जैसे उस गॉवके पूँछनेपर भी उसमे ठहरते नही है, उसी तरह पाप आदि तत्त्वोको जानना चाहिये किन्तु उन्हे ग्रहण नहीं करना चाहिये। जिस प्रकार रास्तेमे आनेवाले गॉवोको छोड़ते जाते है, उसी तरह उनका भी त्याग करना आवश्यक है।

८४ तत्त्वावबोध

(३)

नवतत्त्वका कालभेदसे जो सत्पुरुष गुरुके पाससे श्रवण, मनन और निदिध्यासनपूर्वक ज्ञान प्राप्त करते है, वे सत्पुरुष महापुण्यशाली और धन्यवादके पात्र है। प्रत्येक सुज्ञ पुरुषोको मेरा विनयभाव-भूषित यही उपदेश है कि नवतत्त्वको अपनी बुद्धि-अनुसार यथार्थ जानना चाहिये।

महावीर भगवान्के शासनमे बहुतसे मतमतांतर पड़ गये हैं, उसका मुख्य कारण यही है कि तत्त्वज्ञानकी ओरसे उपासक-वर्गका लक्ष फिर गया। वे लोग केवल क्रियाभावमे ही लगे रहे, जिसका परिणाम दृष्टिगोचर है। वर्तमान खोजमे आयी हुई पृथिवीकी आबादी लगभग डेढ अरबकी गिनी जाती है, उसमे सब गच्छोको मिलाकर जैन लोग केवल बीस लाख है। ये लोग श्रमणोपासक है। इनमेसे मै अनुमान करता हूँ कि दो हज़ार पुरुष भी मुश्किलसे नवतत्त्वको पढ़ना जानते होगे। मनन और विचारपूर्वक जाननेवाले पुरुष तो उँगलियोपर गिनने लायक भी न होंगे। तत्त्वज्ञानकी जब ऐसी पतित स्थिति हो गई है, तभी मतमतापर बढ़ गये है। एक कहावत है कि "सौ स्याने एक मत," इसी तरह अनेक तत्त्वविचारक पुरुषोंके मतमे बहुधा भिन्नता नही आती, इसलिये तत्त्वावबोध परम आवश्यक है।

इस नवतत्त्व-विचारके सबधमे प्रत्येक मुनियोसे मेरी विज्ञप्ति है कि वे विवेक और गुरुगम्यतासे इसके ज्ञानकी विशेषरूपसे वृद्धि करे, इससे उनके पवित्र पॉच महाव्रत दृढ होगे; जिनेश्वरके वचनामृतके अनुपम आनन्दकी प्रसादी मिलेगी, मुनित्व-आचार पालनेमे सरल हो जायगा, ज्ञान और क्रियाके विशुद्ध रहनेसे सम्यक्त्वका उदय होगा; और परिणाममे संसारका अंत होगा।

८५ तत्त्वावबोध

(४)

जो श्रमणोपासक नवतत्त्वको पढ़ना भी नहीं जानते उन्हे उसे अवश्य जानना चाहिये। जानने के बाद बहुत मनन करना चाहिये। जितना समझमे आ सके, उतने गंभीर आशयको गुरुगम्यतासे सद्भावसे समझना चाहिये। इससे आत्म-ज्ञानकी उज्ज्वलता होगी, और यमनियम आदिका बहुत पालन होगा।

नवतत्त्वका अभिप्राय नवतत्त्व नामकी किसी सामान्य लिखी हुई पुस्तकसे नही। परन्तु जिस जिस स्थल पर जिन जिन विचारोको ज्ञानियोंने प्रणीत किया है, वे सब विचार नवतत्त्वमेके किसी न किसी एक, दो अथवा विशेष तत्त्वोंके होते है। केवली भगवान्ने इन श्रेणियोसे सकल जगत्मडल दिखा दिया है। इससे जैसे जैसे नय आदिके भेदसे इस तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होगी वैसे वैसे अपूर्व आनन्द और निर्मलताकी प्राप्ति होगी। केवल विवेक, गुरुगम्यता और अप्रमादकी आवश्यकता है। यह नव तत्त्वज्ञान मुझे बहुत प्रिय है। इसके रसानुभवी भी मुझे सदैव प्रिय हैं।

कालभेदसे इस समय सिर्फ मति और श्रुत ये दो ज्ञान भरतक्षेत्रमे विद्यमान हैं, बाकीके तीन ज्ञान व्यवच्छेद हो गये हैं; तो भी ज्यो ज्यो पूर्ण श्रद्धासहित भावसे हम इस नवतत्त्वज्ञानके विचारोंकी गुफामें उतरते जाते हैं त्यों त्यो उसके भीतर अद्भुत आत्मप्रकाश, आनंद, समर्थ तत्त्वज्ञानकी स्फुरणा, उत्तम विनोद, गभीर चमक और आश्चर्यचकित करनेवाले शुद्ध सम्यग्ज्ञानके विचारोंका बहुत अधिक उदय करते हैं। स्याद्वादवचनामृतके अनत सुदर आशयोके समझनेकी शक्तिके इस कालमे इस क्षेत्रसे विच्छेद होनेपर भी उसके संबंधमें जो जो सुदर आशय समझमें आते हैं, वे आशय अत्यन्त ही गभीर तत्त्वोसे भरे हुए हैं। यदि इन आशयोंको पुनः पुनः मनन किया जाय तो ये आशय चार्वाक-मतिके चंचल मनुष्योंको भी सद्धर्ममें स्थिर कर देनेवाले हैं। सारांश यह है कि संक्षेपमे, सब प्रकारकी सिद्धि, पवित्रता, महाशील, सूक्ष्म और गभीर निर्मल विचार, स्वच्छ वैराग्यकी भेट, ये सब तत्त्वज्ञानसे मिलते है।

८६ तत्त्वावबोध

(५)

एकबार एक समर्थ विद्वान्के साथ निर्ग्रन्थ प्रवचनकी चमत्कृतिके सबधमे बातचीत हुई। इस संबंधमे उस विद्वान्ने कहा कि इतना मै मानता हूँ कि महावीर एक समर्थ तत्त्वज्ञानी पुरुष थे, उन्होंने जो उपदेश किया है उसे ग्रहण करके प्रज्ञावत पुरुषोंने अग उपागकी योजना की है; उनके जो विचार हैं वे चमत्कृतिसे पूर्ण है, परन्तु इसके ऊपरसे इसमे लोकालोकका सब ज्ञान आ जाता है, यह मै नही कह सकता। ऐसा होनेपर भी यदि आप इस सबधमे कुछ प्रमाण देतें हों तो मैं इस बातपर कुछ श्रद्धा कर सकता हूं। इसके उत्तरमे मैंने यह कहा कि मैं कुछ जैनवचनामृतको यथार्थ तो क्या, परन्तु विशेष भेद सहित भी नही जानता; परन्तु जो कुछ सामान्यरूपसे जानता हूं, इसके ऊपरसे भी प्रमाण अवश्य दे सकता हूँ। बादमे नव-तत्त्वविज्ञानके संबधमें बातचीत चली। मैंने कहा

इसमें समस्त सृष्टिका ज्ञान आ जाता है, परन्तु उसे यथार्थ समझनेकी शक्ति चाहिये। उन्होंने इस कथनका प्रमाण माँगा। मैने आठ कर्मोके नाम लिये। इसके साथ ही यह सूचित किया कि इनके सिवाय इससे भिन्न भावको दिखानेवाला आप कोई नौवा कर्म ढूँढ़ निकाले; पाप और पुण्य प्रकृतियोंके नाम लेकर मैने कहा कि आप इनके सिवाय एक भी अधिक प्रकृति ढूँढ़ दे। यह कहनेपर अनुक्रमसे बात चली। सबसे पहले जीवके भेद कहकर मैने पूँछा कि क्या इनमे आप कुछ न्यूनाधिक कहना चाहते हो? अजीव द्रव्यके भेद बताकर पूँछा कि क्या आप इससे कुछ विशेष कहते हो? इसी प्रकार जब नवतत्त्वके संबंधमे बातचीत हुई तो उन्होने थोड़ी देर विचार करके कहा, यह तो महावीरकी कहनेके अद्भुत चमत्कृति है कि जीवका एक भी नया भेद नही मिलता। इसी तरह पाप पुण्य आदिकी एक भी विशेष प्रकृति नहीं मिलती; तथा नौवा कर्म भी नहीं मिलता। ऐसे ऐसे तत्त्वज्ञानके सिद्धात जैन-दर्शनमे है, यह बात मेरे ध्यानमे न थी, इसमे समस्त सृष्टिका तत्त्वज्ञान कुछ अंशोमे अवश्य आ सकता है।

८७ तत्त्वावबोध

(६)

इसका उत्तर इस ओरसे यह दिया गया कि अभी जो आप इतना कहते है वह तभीतक कहते हैं जब तक कि जैनधर्मके तत्त्व-विचार आपके हृदयमे नहीं आये, परन्तु मै मध्यस्थतासे सत्य कहता हूँ कि इसमे जो विशुद्ध ज्ञान बताया गया है वह अन्यत्र कहीं भी नही है; और सर्व मतोंने जो ज्ञान बताया है वह महावीरके तत्त्वज्ञानके एक भागमे आ जाता है। इनका कथन स्याद्वाद है, एकपक्षीय नही।

आपने कहा कि कुछ अंशमें सृष्टिका तत्त्वज्ञान इसमे अवश्य आ सकता है, परन्तु यह मिश्र-वचन है। हमारे समझानेकी अल्पज्ञतासे ऐसा अवश्य हो सकता है परन्तु इससे इन तत्त्वोमे कोई अपूर्णता है, ऐसी बात तो नहीं है। यह कोई पक्षपातयुक्त कथन नहीं। विचार करनेपर समस्त सृष्टिमेसे इनके सिवाय कोई दसवॉ तत्त्व खोज करने पर कभी भी मिलनेवाला नही। इस सबधमे प्रसंग आने-पर जब हम लोगोंमे बातचीत और मध्यस्थ चर्चा होगी तब समाधान होगा।

उत्तरमें उन्होने कहा कि इसके ऊपरसे मुझे यह तो निस्सन्देह है कि जैनदर्शन एक अद्भुत दर्शन है। श्रेणीपूर्वक आपने मुझे नव तत्त्वोके कुछ भाग कहे है इससे मैं यह बेधड़क कह सकता हूँ कि महावीर गुप्तभेदको पाये हुए पुरुष थे। इस प्रकार थोड़ीसी बातचीत करके "उप्पन्नेवा" "विगमे वा" "धुवेइ वा" यह लब्धिवाक्य उन्होने मुझे कहा। यह कहनेके पश्चात् उन्होने बताया कि इन शब्दोके सामान्य अर्थमें तो कोई चमत्कृति दिखाई नहीं देती। उत्पन्न होना, नाश होना, और अचलता यही इन तीन शब्दोका अर्थ है। परन्तु श्रीमान् गणधरोने तो ऐसा उल्लेख किया है कि इन वचनोंके गुरुमुखसे श्रवण करनेपर पहलेके भाविक शिष्योको द्वादशागीका आशयपूर्ण ज्ञान हो जाता था। इसके लिये मैने कुछ विचार करके देखा भी, तो मुझे ऐसा माल्रम हुआ कि ऐसा होना असंभव है; क्योकि अत्यन्त-सूक्ष्म माना हुआ सैद्धातिक-ज्ञान इसमे कहॉसे समा सकता है? इस संबंधमें क्या आप कुछ लक्ष पहुँचा सकेंगे?

८८ तत्त्वावबोध
(७)

उत्तरमे मैंने कहा कि इस कालमे तीन महा ज्ञानोंका भारतसे विच्छेद हो गया है; ऐसा होनेपर मैं कोई सर्वज्ञ अथवा महा प्रज्ञावान् नहीं हूँ तो भी मेरा जितना सामान्य लक्ष पहुँच सकेगा उतना पहुँचाकर कुछ समाधान कर सकूँगा, यह मुझे संभव प्रतीत होता है। तब उन्होने कहा कि यदि यह संभव हो तो यह त्रिपदी जीवपर "नास्ति" और "अस्ति" विचारसे घटाइये। वह इस तरह कि जीव क्या उत्पत्तिरूप है? तो कि नहीं। जीव क्या व्ययरूप है? तो कि नहीं। जीव क्या ध्रौव्यरूप है? तो कि नहीं, इस तरह एक बार घटाइये, और दूसरी बार जीव क्या उत्पत्तिरूप है? तो कि हाँ। जीव क्या व्ययरूप है? तो कि हाँ। जीव क्या ध्रौव्यरूप है? तो कि हॉ, ऐसे घटाइये। ये विचार समस्त मंडलमे एकत्र करके योजित किये है। इसे यदि यथार्थ नहीं कह सकते तो अनेक प्रकारके दूषण आ सकते हैं। यदि वस्तु व्ययरूप हो तो वह ध्रुवरूप नहीं हो सकती—यह पहली शंका है। यदि उत्पत्ति, व्यय और ध्रुवता नहीं तो जीवको किन प्रमाणोंसे सिद्ध करोगे—यह दूसरी शका है। व्यय और ध्रुवताका परस्पर विरोधाभास है—यह तीसरी शका है। जीव केवल ध्रुव है तो उत्पत्तिमे अस्ति कहना असत्य हो जायगा—यह चौथा विरोध। उत्पन्न जीवको ध्रुवरूप कहो तो उसे उत्पन्न किसने किया—यह पाँचवीं शंका और विरोध। इससे उसका अनादिपना जाता रहता है—यह छठी शका है। केवल ध्रुव व्ययरूप है ऐसा कहो तो यह चार्वाक-मिश्रवचन हुआ—यह सातवाँ दोष है। उत्पत्ति और व्ययरूप कहोगे तो केवल चार्वाकका सिद्धात कहा जायेगा—यह आठवॉ दोष है। उत्पत्तिका अभाव, व्ययका अभाव और ध्रुवताका अभाव कहकर फिर तीनोका अस्तित्व कहना—ये छह दोष। इस तरह मिलाकर सब चौदह दोष होते हैं। केवल ध्रुवता निकाल देनेपर तीर्थंकरोंके वचन खडित हो जाते हैं—यह पन्द्रहवाँ दोष है। उत्पत्ति ध्रुवता लेनेपर कर्त्ताकी सिद्धि होती है इससे सर्वज्ञके वचन खडित हो जाते हैं—यह सोलहवाँ दोष है। उत्पत्ति व्ययरूपसे पाप पुण्य आदिका अभाव मान ले तो धर्माधर्म सबका लोप हो जाता है—यह सत्रहवॉ दोष है। उत्पत्ति व्यय और सामान्य स्थितिसे (केवल अचल नहीं) त्रिगुणात्मक माया सिद्ध होती है—यह अठारहवॉ दोष है।

८९ तत्त्वावबोध
(८)

इन कथनोंके सिद्ध न होनेपर इतने दोष आते हैं। एक जैन मुनिने मुझे और मेरे मित्र-मंडलसे ऐसा कहा था कि जैन सप्तभगीनय अपूर्व है और इससे सब पदार्थ सिद्ध होते हैं। इसमें नास्ति अस्तिका अगम्य भेद सन्निविष्ट है। यह कथन सुनकर हम सब घर आये, फिर योजना करते करते इस लब्धिवाक्यको जीवपर घटाया। मैं समझता हूँ कि इस प्रकार नास्ति अस्तिके दोनों भाव जीवपर नहीं घट सकते। इससे लब्धिवाक्य भी क्लेशरूप हो जावेंगे। फिर भी इस ओर मेरी कोई तिरस्कारकी दृष्टि नहीं है।

इसके उत्तरमे मैंने कहा कि आपने जो नास्ति और अस्ति नयोंको जीवपर घटानेका विचार

किया है वह सनिक्षेप शैलीसे नही, अर्थात् कभी इसमे एकात पक्षका ग्रहण किया जा सकता है। और फिर मै कोई स्याद्वाद-शैलीका यथार्थ जानकर नही, मंदबुद्धिसे लेशमात्र जानता हूँ। नास्ति अस्ति नयको भी आपने यथार्थ शैलीपूर्वक नही घटाया। इसलिये मैं तर्कसे जो उत्तर दे सकता हूँ उसे आप सुने।

उत्पत्तिमे "नास्ति" की जो योजना की है वह इस तरह यथार्थ हो सकती है कि "जीव अनादि अनंत है"। व्ययमे "नास्ति" की जो योजना की है वह इस तरह यथार्थ हो सकती है कि "इसका किसी कालमे नाश नहीं होता"।

ध्रुवतामे "नास्ति" की जो योजना की है वह इस तरह यथार्थ हो सकती है कि "एक देहमे वह सदैवके लिये रहनेवाला नहीं"।

९० तत्त्वावबोध

(९)

उत्पत्तिमे "अस्ति" की जो योजना की है वह इस तरह यथार्थ हो सकती है कि जीवको मोक्ष होनेतक एक देहमेसे च्युत होकर वह दूसरी देहमे उत्पन्न होता है"।

व्ययमें "अस्ति" की जो योजना की है वह इस तरह यथार्थ हो सकती है कि 'वह जिस देहमेसे आया वहाँसे व्यय प्राप्त हुआ, अथवा प्रतिक्षण इसकी आत्मिक ऋद्धि विषय आदि मरणसे रुकी हुई है, इस प्रकार व्यय घटा सकते है।

ध्रुवतामे "अस्ति" की जो योजना की है वह इस तरह यथार्थ हो सकती है कि "द्रव्यकी अपेक्षासे जीव किसी कालमे नाश नहीं होता, वह त्रिकाल सिद्ध है।"

अब इससे अर्थात् इन अपेक्षाओको ध्यानमें रखनेसे मुझे आशा है कि दिये हुए दोष दूर हो जावग।

१ जीव व्ययरूपसे नहीं है इसलिये ध्रौव्य सिद्ध हुआ—यह पहला दोष दूर हुआ।

२ उत्पत्ति, व्यय और ध्रुवता ये भिन्न भिन्न न्यायसे सिद्ध है, अर्थात् जीवका सत्यत्व सिद्ध हुआ—यह दूसरे दोषका परिहार हुआ।

३ जीवकी सत्य स्वरूपसे ध्रुवता सिद्ध हुई इससे व्यय नष्ट हुआ—यह तीसरे दोषका परिहार हुआ।

४ द्रव्यभावसे जीवकी उत्पत्ति असिद्ध हुई—यह चौथा दोष दूर हुआ।

५ जीव अनादि सिद्ध हुआ इसलिये उत्पत्तिसंबंधी पाँचवाँ दोष दूर हुआ।

६ उत्पत्ति असिद्ध हुई इसलिये कर्त्तासंबंधी छट्ठे दोषका परिहार हुआ।

७ ध्रुवताके साथ व्यय लेनेसे बाधा नहीं आती, इसलिये चार्वाक-मिश्र-वचन नामक सातवे दोषका निराकरण हुआ।

८ उत्पत्ति और व्यय पृथक् पृथक् देहमे सिद्ध हुए इससे केवल चार्वाक सिद्धान नामके आठवे दोषका परिहार हुआ।

१४ शंकाका परस्पर विरोधाभास निकल जानेसे चौदह तर्कके सब दोष दूर हुए।

१५ अनादि अनंतता सिद्ध होनेपर स्याद्वादका वचन सिद्ध हुआ यह पन्द्रहवे दोषका निराकरण हुआ।

१६ कर्त्ताके न सिद्ध होनेपर जिन-वचनकी सत्यता सिद्ध हुई इससे सोलहवे दोषका निराकरण हुआ।

१७ धर्माधर्म, देह आदिके पुनरावर्तन सिद्ध होनेसे सत्रहवें दोषका परिहार हुआ।

१८ ये सब बाते सिद्ध होनेपर त्रिगुणात्मक मायाके असिद्ध होनेसे अठारहवाँ दोष दूर हुआ।

९१ तत्त्वावबोध

(१०)

मुझे आशा है कि आपके द्वारा विचारकी हुई योजनाका इससे समाधान हुआ होगा। यह कुछ यथार्थ शैली नहीं घटाई, तो भी इसमे कुछ न कुछ विनोद अवश्य मिल सकता है। इसके ऊपर विशेष विवेचन करनेके लिए बहुत समयकी आवश्यकता है इसलिये अधिक नहीं कहता। परन्तु एक दो संक्षिप्त बात आपसे कहनी हैं, तो यदि यह समाधान ठीक ठीक हुआ हो तो उनको कहूँ। बादमे उनकी ओरसे संतोषजनक उत्तर मिला, और उन्होने कहा कि एक दो बात जो आपको कहनी हो उन्हें सहर्ष कहो।

बादमें मैंने अपनी बातको संजीवित करके लब्धिके संबंधकी बात कही। यदि आप इस लब्धिके संबंधमें शंका करें अथवा इसे क्लेशरूप कहे तो इन वचनोंके प्रति अन्याय होता है। इसमें अत्यन्त उज्ज्वल आत्मिकशक्ति, गुरुगम्यता, और वैराग्यकी आवश्यकता है। जबतक यह नहीं तबतक लब्धिके विषयमे शंका रहना निश्चित है। परन्तु मुझे आशा है कि इस समय इस संबंधमे दो शब्द कहने निरर्थक नहीं होंगे। वे ये हैं कि जैसे इस योजनाको नास्ति अस्तिपर घटाकर देखी वैसे ही इसमें भी बहुत सूक्ष्म विचार करनेके हैं। देहमें देहकी पृथक् पृथक् उत्पत्ति, च्यवन, विश्राम, गर्भाधान, पर्याप्ति, इन्द्रिय, सत्ता, ज्ञान, संज्ञा, आयुष्य, विषय इत्यादि अनेक कर्मप्रकृतियोंको प्रत्येक भेदसे लेनेपर जो विचार इस लब्धिमे निकलते हैं वे अपूर्व हैं। जहाँतक जिसका ध्यान पहुँचता है वहाँतक सब विचार करते हैं, परन्तु द्रव्यार्थिक भावार्थिक नयसे समस्त सृष्टिका ज्ञान इन तीन शब्दोंमें आ जाता है, उसका विचार कोई ही करते हैं; यह जब सद्गुरुके मुखकी पवित्र लब्धिरूपसे प्राप्त हो सकता है तो फिर इसमे द्वादशांगी ज्ञान क्यो नहीं हो सकता? जगत्के कहते ही मनुष्यको एक घर, एक वास, एक गाँव, एक शहर, एक देश, एक खंड, एक पृथिवी यह सब छोड़कर असंख्यात द्वीप समुद्रादिसे भरपूर वस्तुओंका ज्ञान कैसे हो जाता है? इसका कारण केवल इतना ही है कि वह इस शब्दकी व्यापकताको समझे हुआ है, अथवा इसका लक्ष इसकी अमुक व्यापकतातक पहुँचा हुआ है, जिससे जगत् शब्दके कहते ही वह इतने बड़े मर्मको समझ जाता है। इसी तरह ऋजु और सरल सत्पात्र शिष्य निर्ग्रन्थ गुरुसे इन तीन शब्दोंकी गम्यता प्राप्त करके द्वादशांगी ज्ञान प्राप्त करते थे। इस प्रकार वह लब्धि अल्पज्ञता होनेपर भी विवेकसे देखनेसे क्लेशरूप नहीं है।

९२ तत्त्वावबोध
(११)

यही नवतत्त्वके संबंधमे है। जिस मध्यवयके क्षत्रिय-पुत्रने जगत् अनादि है ऐसे बेधड़क कहकर कर्त्ताको उड़ाया होगा उस पुरुषने क्या इसे कुछ सर्वज्ञताके गुप्त भेदके विना किया होगा ? तथा इनकी निर्दोषताके विषयमे जब आप पढ़ेंगे तो निश्चयसे ऐसा विचार करेंगे कि ये परमेश्वर थे। कर्त्ता न था और जगत् अनादि था तो ऐसा उसने कहा। इनके निष्पक्ष और केवल तत्त्वमय विचारोंपर आपको अवश्य मनन करना योग्य है। जैनदर्शनके अवर्णवादी जैन दर्शनको नही जानते इससे वे इसके साथ अन्याय करते है, वे ममत्वसे अधोगतिको प्राप्त होंगे।

इसके बाद बहुतसी बातचीत हुई। प्रसंग पाकर इस तत्त्वपर विचार करनेका वचन लेकर मै सहर्ष वहॉसे उठा।

तत्त्वावबोधके सबधमे यह कथन कहा। अनन्त भेदोसे भरे हुए ये तत्त्वविचार कालभेदसे जितने जाने जायँ उतने जानने चाहिये, जितने ग्रहण किये जा सके उतने ग्रहण करने चाहिये, और जितने त्याज्य दिखाई दे उतने त्यागने चाहिये।

इन तत्त्वोको जो यथार्थ जानता है, वह अनन्त चतुष्टयसे विराजमान होता है, इसे सत्य समझना। इस नवतत्त्वके क्रमवार नाम रखनेमे जीवकी मोक्षसे निकटताका आधा अभिप्राय सूचित होता है।

९३ तत्त्वावबोध
(१२)

यह तो तुम्हारे ध्यानमे है कि जीव, अजीव इस क्रमसे अन्तमे मोक्षका नाम आता है। अब इसे एकके बाद एक रखते जायँ तो जीव और मोक्ष क्रमसे आदि और अतमे आवेंगे—

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष।

मैंने पहिले कहा था कि इन नामोके रखनेमे जीव और मोक्षकी निकटता है, परन्तु यह निकटता तो न हुई, किन्तु जीव और अजीवकी निकटता हुई। वस्तुतः ऐसा नहीं है। अज्ञानसे ही तो इन दोनोकी निकटता है; परन्तु ज्ञानसे जीव और मोक्षकी निकटता है, जैसेः—
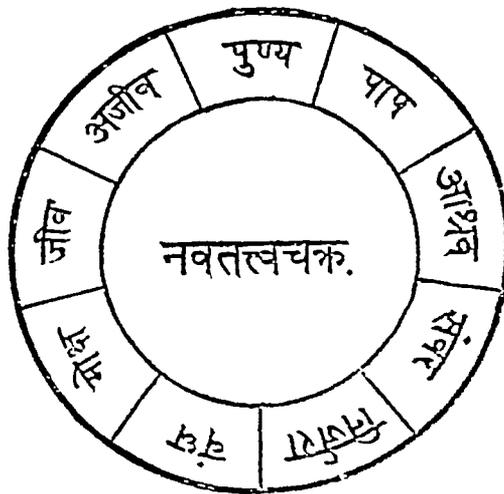
अब देखो, इन दोनोमे कुछ निकटता है ? हॉ, निर्दिष्ट निकटता आ गई है। परन्तु यह निकटता तो द्रव्यरूपसे है। जब भावसे निकटता आवे तभी इष्टसिद्धि होगी। द्रव्य-निकटताका साधन सत्परमात्मतत्त्व, सद्गुरुतत्त्व, और सद्धर्मतत्त्वको पहचानकर श्रद्धान करना है। भाव-निकटता अर्थात् केवल एक ही रूप होनेके लिये ज्ञान, दर्शन और चारित्र साधन रूप है।

इस चक्रसे यह भी आशंका हो सकती है कि यदि दोनों निकट है तो क्या बाकी रहे हुओंको छोड दें ? उत्तरमें मैं कहता हूँ कि यदि सम्पूर्णरूपसे त्याग कर सकते हो तो त्याग दो, इससे मोक्षरूप ही हो जाओगे। नहीं तो हेय, ज्ञेय और उपादेयका उपदेश ग्रहण करो, इससे आत्म-सिद्धि प्राप्त होगी।

९४ तत्त्वावबोध
(१३)

जो कुछ मैं कह गया हूँ वह कुछ केवल जैनकुलमें जन्म पानेवालोंके लिये ही नहीं, किन्तु सबके लिये है। इसी तरह यह भी निःसंदेह मानना कि मै जो कहता हूँ वह निष्पक्षपात और परमार्थ बुद्धिसे कहता हूँ।

मुझे तुमसे जो धर्मतत्त्व कहना है वह पक्षपात अथवा स्वार्थबुद्धिसे कहनेका मेरा कुछ प्रयोजन नहीं। पक्षपात अथवा स्वार्थसे मैं तुम्हें अधर्मतत्त्वका उपदेश देकर अधोगतिकी सिद्धि क्यों करूँ ? बारम्बार तुम्हें मैं निर्ग्रन्थके वचनामृतके लिये कहता हूँ, उसका कारण यही है कि वे वचनामृत तत्त्वमे परिपूर्ण है। जिनेश्वरोंके ऐसा कोई भी कारण न था कि जिसके निमित्तसे वे मृषा अथवा पक्षपातयुक्त उपदेश देते, तथा वे अज्ञानी भी न थे कि जिससे उनसे मृषा उपदेश दिया जाता। यहाँ तुम शंका करोगे कि ये अज्ञानी नहीं थे यह किस प्रमाणसे मालूम हो सकता है ? तो इसके उत्तरमे मैं इनके पवित्र सिद्धांतोके रहस्यको मनन करनेको कहता हूँ। और ऐसा जो करेगा वह पुन. लेश भी आशंका नहीं करेगा। जैनमतके प्रवर्तकोंके प्रति मुझे कोई राग बुद्धि नहीं है, कि जिससे पक्षपातवश मैं तुम्हे कुछ भी कह दूँ, इसी तरह अन्यमतके प्रवर्तकोंके प्रति मुझे कोई वैर बुद्धि नहीं कि मिथ्या ही इनका खडन करूँ। दोनोंमें मैं तो मंदमति मध्यस्थरूप हूँ। बहुत बहुत मननसे और मेरी बुद्धि जहॉतक पहुँची वहॉतक विचार करनेसे मैं विनयपूर्वक कहता हूँ कि हे प्रिय भव्यो ! जैन दर्शनके समान एक भी पूर्ण और पवित्र दर्शन नहीं; वीतरागके समान एक भी देव नहीं, तैरकरके अनंत दुःखसे पार पाना हो तो इस सर्वज्ञ दर्शनरूप कल्पवृक्षका सेवन करो।

९५ तत्त्वावबोध
(१४)

जैन दर्शन इतनी अधिक सूक्ष्म विचार संकलनाओंसे भरा हुआ दर्शन है कि इसमें प्रवेश करनेमें भी बहुत समय चाहिये। ऊपर ऊपरसे अथवा किसी प्रतिपक्षीके कहनेसे अमुक वस्तुके संबंधमे [illegible]भिप्राय बना लेना अथवा अभिप्राय दे देना यह विवेकियोंका कर्तव्य नहीं। जैसे कोई तालाब लबा[illegible] भरा हो, उसका जल ऊपरसे समान मालूम होता है. परन्तु जैसे जैसे आगे बढ़ते जाते है वैसे [illegible] अधिक अधिक गहरापन आता जाता है फिर भी ऊपर तो जल सपाट ही रहता है, इसी [illegible] जगत्के सब धर्ममत एक तालाबके समान है, उन्हें ऊपरसे सामान्य सपाट देखकर समान कह

देना उचित नहीं। ऐसे कहनेवालोंने तत्त्वको भी नही पाया। जैनदर्शनके एक एक पवित्र सिद्धात ऐसे है कि उनपर विचार करनेमे आयु पूर्ण हो जाय तो भी पार न मिले। अन्य सब धर्ममतोके विचार जिनप्रणीत वचनामृत-सिंधुके आगे एक बिंदुके समान भी नहीं। जिसने जैनमतको जाना और सेवन किया, वह केवल वीतरागी और सर्वज्ञ हो जाता है। इसके प्रवर्तक कैसे पवित्र पुरुष थे! इसके सिद्धात कैसे अखंड, सम्पूर्ण और दयामय है! इसमे दूषण तो कोई है ही नहीं! सर्वथा निर्दोष तो केवल जैन दर्शन ही है! ऐसा एक भी पारमार्थिक विषय नही कि जो जैनदर्शनमे न हो, और ऐसा एक भी तत्त्व नही कि जो जैनदर्शनमे न हो; एक विषयको अनत भेदोसे परिपूर्ण कहनेवाला जैनदर्शन ही है। इसके समान प्रयोजनभूत तत्त्व अन्यत्र कही भी नही है। जैसे एक देहमे दो आत्माएँ नही होतीं उसी तरह समस्त सृष्टिमे दो जैन अर्थात् जैनके तुल्य दूसरा कोई दर्शन नही। ऐसा कहनेका कारण क्या? केवल उसकी परिपूर्णता, वीतरागिता, सत्यता और जगद्हितैषिता।

९६ तत्त्वावबोध

(१५)

न्यायपूर्वक इतना तो मुझे भी मानना चाहिये कि जब एक दर्शनको परिपूर्ण कहकर बात सिद्ध करनी हो तब प्रतिपक्षकी मध्यस्थबुद्धिसे अपूर्णता दिखलानी चाहिये। परन्तु इन दोनो बातोपर विवेचन करनेकी यहाँ जगह नहीं, तो भी थोड़ा थोड़ा कहता आया हूँ। मुख्यरूपसे यही कहना है कि यह बात जिसे रुचिकर मालूम न होती हो अथवा असंभव लगती हो, उसे जैनतत्त्व-विज्ञानी शास्त्रोको और अन्यतत्त्व-विज्ञानी शास्त्रोंको मध्यस्थबुद्धिसे मननकर न्यायके काँटेपर तोलना चाहिये। इसके ऊपरसे अवश्य इतना महा वाक्य निकलेगा कि जो पहले डंकेकी चोट कहा गया था वही सच्चा है।

जगत् भेड़ियाधसान है। धर्मके मतभेदसंबंधी शिक्षापाठमे जैसा कहा जा चुका है कि अनेक धर्ममतोके जाल फैल गये है। विशुद्ध आत्मा तो कोई ही होती है। विवेकसे तत्त्वकी खोज कोई ही करता है। इसलिये जैनतत्त्वोको अन्य दार्शनिक लोग क्यो नही जानते, यह बात खेद अथवा आशंका करने योग्य नही।

फिर भी मुझे बहुत आश्चर्य लगता है कि केवल शुद्ध परमात्मतत्त्वको पाये हुए, सकलदूषणरहित, मृषा कहनेका जिनके कोई निमित्त नहीं ऐसे पुरुषके कहे हुए पवित्र दर्शनको स्वयं तो जाना नहीं, अपनी आत्माका हित तो किया नहीं, परन्तु अविवेकसे मतभेदमे पड़कर सर्वथा निर्दोष और पवित्र दर्शनको नास्तिक क्यो कहा? परन्तु ऐसा कहनेवाले जैनदर्शनके तत्त्वको नही जानते थे। तथा इसके तत्त्वको जाननेसे अपनी श्रद्धा डिग जावेगी, तो फिर लोग अपने पहले कहे हुए मतको नहीं मानेंगे; जिस लौकिक मतके आधारपर अपनी आजीविका टिकी हुई है, ऐसे वेद आदिकी महत्ता घटानेसे अपनी ही महत्ता घट जायगी; अपना मिथ्या स्थापित किया हुआ परमेश्वरपद नहीं चलेगा। इसलिये जैनतत्त्वमे प्रवेश करनेकी रुचिको मूलसे ही बद करनेके लिये इन्होने लोगोको ऐसी धोका-पट्टी दी है कि जैनदर्शन तो नास्तिक दर्शन है। लोग तो विचारे डरपोक भेड़के समान है; इसलिये वे विचार भी कहाँसे करे? यह कहना कितना मृषा और अनर्थकारक है, इस बातको वे

ही जान सकते है जिन्होंने वीतरागप्रणीत सिद्धात विवेकसे जाने है। संभव है, मेरे इस कहनेको मंदबुद्धि लोग पक्षपात मान बैठें।

९७ तत्त्वावबोध
(१६)

पवित्र जैनदर्शनको नास्तिक कहलानेवाले एक मिथ्या दलीलसे जीतना चाहते हैं और वह यह है कि जैनदर्शन परमेश्वरको इस जगत्का कर्त्ता नहीं मानता, और जो परमेश्वरको जगत्कर्त्ता नहीं मानता वह तो नास्तिक ही है इसप्रकारकी मान ली हुई बात भद्रिकजनोको शीघ्र ही जा लगती है, क्योकि उनमे यथार्थ विचार करनेकी प्रेरणा नहीं होती। परन्तु यदि इसके ऊपरसे यह विचार किया जाय कि फिर जैनदर्शन जगत्को अनादि अनत किस न्यायसे कहता है? जगत्कर्त्ता न माननेका इसका क्या कारण है? इस प्रकार एकके बाद एक भेदरूप विचार करनेसे वे जैनदर्शनकी पवित्रताको समझ सकते हैं। परमेश्वरको जगत् रचनेकी क्या आवश्यकता थी? परमेश्वरने जगत्को रचा तो सुख दु:ख बनानेका क्या कारण था? सुख दु:खको रचकर फिर मौतको किसलिये बनाया? यह लीला उसे किसको बतानी थी? जगत्को रचा तो किस कर्मसे रचा? उससे पहले रचनेकी इच्छा उसे क्यों न हुई? ईश्वर कौन है? जगत्के पदार्थ क्या हैं? और इच्छा क्या है? जगत्को रचा तो फिर इसमें एक ही धर्मकी प्रवृत्ति रखनी थी; इस प्रकार भ्रमणामें डालनेकी क्या जरूरत थी? कदाचित् यह मान लें कि यह उस बिचारेसे भूल हो गई! होगी! खैर क्षमा करते हैं, परन्तु ऐसी आवश्यकतासे अधिक अक्लमन्दी उसे कहाँसे सूझी कि उसने अपनेको ही मूलसे उखाड़नेवाले महावीर जैसे पुरुषोंको जन्म दिया? इनके कहे हुए दर्शनको जगत्मे क्यों मौजूद रक्खा? अपने पैरपर अपने हाथसे कुल्हाड़ा मारनेकी उसे क्या आवश्यकता थी? एक तो मानो इस प्रकारके विचार, और अन्य दूसरे प्रकारके ये विचार कि जैनदर्शनके प्रवर्तकोको क्या इससे कोई द्वेष था? यदि जगत्का कर्त्ता होता तो ऐसा कहनेसे क्या इनके लाभको कोई हानि पहुँचती थी? जगत्का कर्त्ता नहीं, जगत् अनादि अनंत है; ऐसा कहनेमें इनको क्या कोई महत्ता मिल जाती थी? इस प्रकारके अनेक विचारोंपर विचार करनेसे मालूम होगा कि जैसा जगत्का स्वरूप है, उसे वैसा ही पवित्र पुरुषोंने कहा है। इसमे भिन्नरूपसे कहनेको इनका लेशमात्र भी प्रयोजन न था। सूक्ष्मसे सूक्ष्म जंतुकी रक्षाका जिसने विधान किया है, एक रज-कणसे लेकर समस्त जगत्के विचार जिसने सब भेदोंसहित कहे है, ऐसे पुरुषोंके पवित्र दर्शनको नास्तिक कहनेवाले किस गतिको पावेंगे, यह विचारनेसे दया आती है।

९८ तत्त्वावबोध
(१७)

जो न्यायसे जय प्राप्त नहीं कर सकता वह पीछेसे गाली देने लगता है। इसी तरह पवित्र जैनदर्शनके अखड तत्त्वसिद्धातोंका जब **शं**कराचार्य, **द**यानन्द सन्यासी वगैरह खंडन न कर सके तो फिर वे "जैन नास्तिक है, सो चार्वाकमेसे उत्पन्न हुआ है"—ऐसा कहने लगे। परन्तु यहाँ कोई प्रश्न करे कि महाराज! यह विवेचन आप पीछेसे करें। इन शब्दोको कहनेमें समय विवेक अथवा

ज्ञानकी कोई जरूरत नही होती परन्तु आप इस बातका उत्तर दें कि जैनदर्शन वेदसे किस वस्तुमे उतरता हुआ है; इसका ज्ञान, इसका उपदेश, इसका रहस्य, और इसका सत्शील कैसा है उसे एक बार कहे तो सही। आपके वेदके विचार किस बाबतमे जैनदर्शनसे बढ़कर है? इस तरह जब वे मर्मस्थानपर आते है तो मौनके सिवाय उनके पास दूसरा कोई साधन नही रहता। जिन सत्पुरुषोके वचनामृत और योगके बलसे इस सृष्टिमे सत्य, दया, तत्त्वज्ञान और महाशील उदय होते हैं, उन पुरुषोकी अपेक्षा जो पुरुष शृंगारमे रचे पचे पड़े हुए है, जो सामान्य तत्त्वज्ञानको भी नहीं जानते, और जिनका आचार भी पूर्ण नहीं, उन्हे बढ़कर कहना, परमेश्वरके नामसे स्थापित करना, और सत्यस्वरूपकी निंदा करनी, परमात्मस्वरूपको पाये हुओंको नास्तिक कहना,—ये सब बाते इनके कितने अधिक कर्मकी बहुलताको सूचित करती है? परन्तु जगत् मोहसे अंध है; जहाँ मतभेद है वहाँ अँधेरा है; जहाँ ममत्व अथवा राग है वहाँ सत्य तत्त्व नही। ये बातें हमे क्यो न विचारनी चाहिये?

मै तुम्हे निर्ममत्व और न्यायकी एक मुख्य बात कहता हूँ। वह यह है कि तुम चाहे किसी भी दर्शनको मानो; फिर जो कुछ भी तुम्हारी दृष्टिमे आवे वैसा जैनदर्शनको कहो। सब दर्शनोके शास्त्र-तत्त्वोको देखो, तथा जैनतत्त्वोको भी देखो। स्वतंत्र आत्म-शक्तिसे जो योग्य माळ्म हो उसे अंगीकार करो। मेरे कहनेको अथवा अन्य किसी दूसरेके कहनेको भले ही एकदम तुम न मानो परन्तु तत्त्वको विचारो।

९९ समाजकी आवश्यकता

आंग्लदेशवासियोने संसारके अनेक कलाकौशलोमे किस कारणसे विजय प्राप्त की है? यह विचार करनेसे हमे तत्काल ही माळ्म होगा कि उनका बहुत उत्साह और इस उत्साहमे अनेकोका मिल जाना ही उनकी सफलताका कारण है। कलाकौशलके इस उत्साही काममे इन अनेक पुरुषोके द्वारा स्थापित सभा अथवा समाजको क्या परिणाम मिला? तो उत्तरमे यही कहा जायगा कि लक्ष्मी, कीर्ति और अधिकार। इनके इस उदाहरणके ऊपरसे इस जातिके कलाकौशलकी खोज करनेका मै यहाँ उपदेश नहीं देता, परन्तु सर्वज्ञ भगवान्का कहा हुआ गुप्त तत्त्व प्रमाद-स्थितिमे आ पड़ा है, उसे प्रकाशित करनेके लिये तथा पूर्वाचार्योंके गूँथे हुए महान् शास्त्रोको एकत्र करनेके लिये, पड़े हुए गच्छोके मतमतांतरको हटानेके लिये तथा धर्म-विद्याको प्रफुल्लित करनेके लिये सदाचरणी श्रीमान् और धीमान् दोनोंको मिलकर एक महान् समाजकी स्थापना करनेकी आवश्यकता है, यह कहना चाहता हूँ। पवित्र स्याद्वादमतके ढँके हुए तत्त्वोंको प्रसिद्धिमे लानेका जबतक प्रयत्न नहीं होता, तबतक शासनकी उन्नति भी नही होगी। संसारी कलाकौशलसे लक्ष्मी, कीर्ति और अधिकार मिलते है, परन्तु इस धर्म-कलाकौशलसे तो सर्व सिद्धि प्राप्त होगी। महान् समाजके अंतर्गत उपसमाजोको स्थापित करना चाहिये। सम्प्रदायके बाड़ेमे बैठे रहनेकी अपेक्षा मतमतांतर छोड़कर ऐसा करना उचित है। मैं चाहता हूँ कि इस उद्देश्यकी सिद्धि होकर जैनोके अंतर्गच्छ मतभेद दूर हो; सत्य वस्तुके ऊपर मनुष्य-समाजका लक्ष आवे; और ममत्व दूर हो।

१०० मनोनिग्रहके विघ्न

बारम्बार जो उपदेश किया गया है, उसमेसे मुख्य तात्पर्य यही निकलता है कि आत्माका

उद्धार करो और उद्धार करनेके लिये तत्त्वज्ञानका प्रकाश करो; तथा सत्शीलका सेवन करो। इसे प्राप्त करनेके लिये जो जो मार्ग बताये गये हैं वे सब मनोनिग्रहताके आधीन है। मनोनिग्रहता होनेके लिये लक्षकी बहुलता करना जरूरी है। बहुलता करनेमे निम्नलिखित दोप विघ्नरूप होते है:—

१ आलस्य.
२ अनियमित निद्रा.
३ विशेष आहार.
४ उन्माद प्रकृति.
५ मायाप्रपंच.
६ अनियमित काम.
७ अकरणीय विलास.
८ मान.
९ मर्यादासे अधिक काम.
१० अपनी बडाई.
११ तुच्छ वस्तुसे आनन्द
१२ रसगारवलुब्धता.
१३ अतिभोग.
१४ दूसरेका अनिष्ट चाहना.
१५ कारण विना सचय करना.
१६ बहुतोका स्नेह.
१७ अयोग्य स्थलमे जाना.
१८ एक भी उत्तम नियमका नहीं पालना.

जबतक इन अठारह विघ्नोंसे मनका सबंध है तबतक अठारह पापके स्थान क्षय नहीं होगे। इन अठारह दोषोंके नष्ट होनेसे मनोनिग्रहता और अभीष्ट सिद्धि हो सकती है। जबतक इन दोपोंकी मनसे निकटता है तबतक कोई भी मनुष्य आत्म-सिद्धि नहीं कर सकता। अति भोगके बदलेमें केवल सामान्य भोग ही नहीं, परन्तु जिसने सर्वथा भोग-त्याग व्रतको धारण किया है, तथा जिसके हृदयमे इनमेंसे किसी भी दोषका मूल न हो वह सत्पुरुष महान् भाग्यशाली है।

१०१ स्मृतिमें रखने योग्य महावाक्य

१ नियम एक तरहसे इस जगत्का प्रवर्तक है।

२ जो मनुष्य सत्पुरुषोंके चरित्रके रहस्यको पाता है वह परमेश्वर हो जाता है।

३ चंचल चित्त सब विषम दुःखोंका मूल है।

४ बहुतोंका मिलाप और थोड़ोंके साथ अति समागम ये दोनों समान दुःखदायक हैं।

५ समस्वभावीके मिलनेको ज्ञानी लोग एकात कहते है।

६ इन्द्रियाँ तुम्हें जीतें और तुम सुख मानो इसकी अपेक्षा तुम इन्द्रियोके जीतनेसे ही सुख, आनन्द और परमपद प्राप्त करोगे।

७ राग विना संसार नहीं और ससार विना राग नहीं।

८ युवावस्थाका सर्व संगका परित्याग परमपदको देता है।

९ उस वस्तुके विचारमें पहुँचो कि जो वस्तु अतीन्द्रियस्वरूप है।

१० गुणियोंके गुणोमे अनुरक्त होओ।

१०२ विविध प्रश्न

(१)

आज तुम्हें मै बहुतसे प्रश्नोंको निर्ग्रन्थ प्रवचनके अनुसार उत्तर देनेके लिये पूँछता हूँ।

प्र.—कहिये धर्मकी क्यों आवश्यकता है?

उ.—अनादि कालसे आत्माके कर्म-जाल दूर करनेके लिये।

प्र.—जीव पहला अथवा कर्म?

उ.—दोनो अनादि है। यदि जीव पहले हो तो इस विमल वस्तुको मल लगनेका कोई निमित्त चाहिये। यदि कर्मको पहले कहो तो जीवके विना कर्म किया किसने? इस न्यायसे दोनो अनादि हैं।

प्र.—जीव रूपी है अथवा अरूपी?

उ.—रूपी भी है और अरूपी भी है।

प्र.—रूपी किस न्यायसे और अरूपी किस न्यायसे, यह कहिये?

उ.—देहके निमित्तसे रूपी है और अपने स्वरूपसे अरूपी है।

प्र.—देह निमित्त किस कारणसे है?

उ.—अपने कर्मोके विपाकसे।

प्र.—कर्मोकी मुख्य प्रकृतियाँ कितनी हैं?

उ.—आठ।

प्र.—कौन कौन?

उ.—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय।

प्र.—इन आठो कर्मोका सामान्यस्वरूप कहो।

उ.—आत्माकी ज्ञानसंबंधी अनंत शक्तिके आच्छादन हो जानेको ज्ञानावरणीय कहते है। आत्माकी अनंत दर्शन शक्तिके आच्छादन हो जानेको दर्शनावरणीय कहते है। देहके निमित्तसे साता, असाता दो प्रकारके वेदनीय कर्मोसे अव्याबाध सुखरूप आत्माकी शक्तिके रुके रहनेको वेदनीय कहते हैं। आत्मचारित्ररूप शक्तिके रुके रहनेको मोहनीय कहते है। अक्षय स्थिति गुणके रुके रहनेको आयुकर्म कहते हैं। अमूर्तिरूप दिव्यशक्तिके रुके रहनेको नामकर्म कहते है। अटल अवगाहनारूप आत्मिक शक्तिके रुके रहनेको गोत्रकर्म कहते हैं। अनंत दान, लाभ, वीर्य, भोग और उपभोग शक्तिके रुके रहनेको अंतराय कहते हैं।

१०३ विविध प्रश्न
(२)

प्र.—इन कर्मोके क्षय होनेसे आत्मा कहाँ जाती है?

उ.—अनंत और शाश्वत मोक्षमे।

प्र.—क्या इस आत्माकी कभी मोक्ष हुई है?

उ.—नहीं।

प्र.—क्यों?

उ.—मोक्ष-प्राप्त आत्मा कर्म-मलसे रहित है, इसलिये इसका पुनर्जन्म नहीं होता।

प्र.—केवलीके क्या लक्षण है?

उ.—चार घनघाती कर्मोका क्षय करके और शेष चार कर्मोको कृश करके जो पुरुष त्रयोदश गुणस्थानकवर्ती होकर विहार करते है, वे केवली हैं।

प्र.—गुणस्थानक कितने हैं ?

उ.—चौदह ।

प्र.—उनके नाम कहिये ।

उ.—१ मिथ्यात्वगुणस्थानक। २ सास्वादन (सासादन) गुणस्थानक । ३ मिश्रगुणस्थानक । ४ अवरतिसम्यग्दृष्टिगुणस्थानक । ५ देशविरतिगुणस्थानक । ६ प्रमत्तसंयतगुणस्थानक । ७ अप्रमत्तसंयत-गुणस्थानक । ८ अपूर्वकरणगुणस्थानक । ९ अनिवृत्तिबादरगुणस्थानक । १० सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानक । ११ उपशातमोहगुणस्थानक । १२ क्षीणमोहगुणस्थानक । १३ सयोगकेवलीगुणस्थानक । १४ अयोग-केवलीगुणस्थानक ।

१०४ विविध प्रश्न

(३)

प्र.—केवली तथा तीर्थंकर इन दोनोंमे क्या अंतर है ?

उ.—केवली तथा तीर्थंकर शक्तिमें समान हैं, परन्तु तीर्थंकरने पहिले तीर्थंकर नामकर्मका बंध किया है, इसलिये वे विशेषरूपसे बारह गुण और अनेक अतिशयोंको प्राप्त करते हैं ।

प्र.—तीर्थंकर घूम घूम कर उपदेश क्यों देते हैं ? वे तो वीतरागी हैं ।

उ.—पूर्वमें बाँधे हुए तीर्थंकर नामकर्मके वेदन करनेके लिये उन्हें अवश्य ऐसा करना पड़ता है।

प्र.—आजकल प्रचलित शासन किसका है ?

उ.—श्रमण भगवान् महावीरका ।

प्र.—क्या महावीरसे पहले जैनदर्शन था ?

उ.—हाँ, था ।

प्र.—उसे किसने उत्पन्न किया था ?

उ.—उनके पहलेके तीर्थंकरोंने ।

प्र.—उनके और महावीरके उपदेशमें क्या कोई भिन्नता है ?

उ.—तत्त्वदृष्टिसे एक ही हैं । भिन्न भिन्न पात्रको लेकर उनका उपदेश होनेसे और कुछ कालभेद होनेके कारण सामान्य मनुष्यको भिन्नता अवश्य मालूम होती है, परन्तु न्यायसे देखनेपर उसमें कोई भिन्नता नहीं है ।

प्र.—इनका मुख्य उपदेश क्या है ?

उ.—उनका उपदेश यह है कि आत्माका उद्धार करो, आत्माकी अनंत शक्तियोंका प्रकाश करो और इसे कर्मरूप अनंत दुःखसे मुक्त करो ।

प्र.—इसके लिये उन्होंने कौनसे साधन बताये हैं ?

उ.—व्यवहार नयसे सद्देव, सद्धर्म और सद्गुरुका स्वरूप जानना; सद्देवका गुणगान करना, तीन प्रकारके धर्मका आचरण करना, और निर्ग्रन्थ गुरुसे धर्मका स्वरूप समझना ।

प्र.—तीन प्रकारका धर्म कौनसा है ?

उ.—सम्यग्ज्ञानरूप, सम्यग्दर्शनरूप और सम्यक्चारित्ररूप ।

१०५ विविध प्रश्न

(४)

प्र.—ऐसा जैनदर्शन यदि सर्वोत्तम है तो सब जीव इसके उपदेशको क्यो नहीं मानते ?

उ.—कर्मकी बाहुल्यतासे, मिथ्यात्वके जमे हुए मलसे और सत्समागमके अभावसे।

प्र.—जैनदर्शनके मुनियोका मुख्य आचार क्या है ?

उ.—पॉच महाव्रत, दश प्रकारका यतिधर्म, सत्रह प्रकारका संयम, दस प्रकारका वैयावृत्य, नव प्रकारका ब्रह्मचर्य, बारह प्रकारका तप, क्रोध आदि चार प्रकारकी कषायोका निग्रह; इनके सिवाय ज्ञान, दर्शन तथा चारित्रका आराधन इत्यादि अनेक भेद है।

प्र.—जैन मुनियोके समान ही सन्यासियोके पॉच याम है; बौद्धधर्मके पॉच महाशील है, इसलिये इस आचारमे तो जैनमुनि, सन्यासी तथा बौद्धमुनि एकसे हैं न ?

उ.—नही।

प्र.—क्यो नही ?

उ.—इनके पंचयाम और पंच महाशील अपूर्ण है। जैनदर्शनमे महाव्रतके भेद प्रतिभेद अति सूक्ष्म है। पहले दोनोके स्थूल हैं।

प्र.—इसकी सूक्ष्मता दिखानेके लिये कोई दृष्टांत दीजिये।

उ.—दृष्टात स्पष्ट है। पंचयामी कंदमूल आदि अभक्ष्य खाते है; सुखशय्यामे सोते है; विविध प्रकारके वाहन और पुष्पोका उपभोग करते हैं; केवल शीतल जलसे अपना व्यवहार चलाते हैं; रात्रिमे भोजन करते है। इसमे होनेवाला असंख्याता जीवोका नाश, ब्रह्मचर्यका भंग इत्यादिकी सूक्ष्मताको वे नहीं जानते। तथा बौद्धमुनि माँस आदि अभक्ष्य और सुखशील साधनोसे युक्त हैं। जैन मुनि तो इनसे सर्वथा विरक्त है।

१०६ विविध प्रश्न

(५)

प्र.—वेद और जैनदर्शनकी प्रतिपक्षता क्या वास्तविक है ?

उ.—जैनदर्शनकी इससे किसी विरोधी भावसे प्रतिपक्षता नहीं, परन्तु जैसे सत्यका असत्य प्रतिपक्षी गिना जाता है, उसी तरह जैनदर्शनके साथ वेदका संबंध है।

प्र.—इन दोनोंमे आप किसे सत्य कहते हैं ?

उ.—पवित्र जैनदर्शनको।

प्र.—वेद दर्शनवाले वेदको सत्य बताते हैं, उसके विषयमे आपका क्या कहना है ?

उ.—यह तो मतभेद और जैनदर्शनके तिरस्कार करनेके लिये है, परन्तु आप न्यायपूर्वक दोनोके मूलतत्त्वोको देखे।

प्र.—इतना तो मुझे भी लगता है कि महावीर आदि जिनेश्वरका कथन न्यायके काँटेपर है; परन्तु वे जगत्के कर्त्ताका निषेध करते है, और जगत्को अनादि अनंत कहते हैं, इस विषयमें कुछ कुछ शंका होती है कि यह असंख्यात द्वीपसमुद्रसे युक्त जगत् विना बनाये कहाँसे आ गया ?

उ.—हमें जबतक आत्माकी अनंत शक्तिकी लेशभर भी दिव्य प्रसादी नहीं मिलती तभीतक ऐसा लगा करता है; परन्तु तत्त्वज्ञान होनेपर ऐसा नहीं होगा। सन्मतितर्क आदि ग्रंथोका आप अनुभव करेंगे तो यह शंका दूर हो जावेगी।

प्र.—परन्तु समर्थ विद्वान् अपनी मृषा बातको भी दृष्टात आदिसे सिद्धांतपूर्ण सिद्ध कर देते है; इसलिये यह खंडित नहीं हो सकती परन्तु इसे सत्य कैसे कह सकते हैं ?

उ.—परन्तु इन्हें मृषा कहनेका कुछ भी प्रयोजन न था, और थोडी देरके लिये ऐसा मान भी लें कि हमें ऐसी शंका हुई कि यह कथन मृषा होगा, तो फिर जगत्कर्त्ताने ऐसे पुरुषको जन्म भी क्यों दिया? ऐसे नाम डुबानेवाले पुत्रको जन्म देनेकी उसे क्या जरूरत थी? तथा ये पुरुष तो सर्वज्ञ थे; जगत्का कर्त्ता सिद्ध होता तो ऐसे कहनेसे उनकी कुछ हानि न थी।

१०७ जिनेश्वरकी वाणी

जो अनंत अनंत भाव-भेदोंसे भरी हुई है, अनंत अनंत नय निक्षेपोंसे जिसकी व्याख्या की गई है, जो सम्पूर्ण जगत्की हित करनेवाली है, जो मोहको हटानेवाली है, संसार-समुद्रसे पार करनेवाली है, जो मोक्षमे पहुँचानेवाली है, जिसे उपमा देनेकी इच्छा रखना भी व्यर्थ है, जिसे उपमा देना मानो अपनी बुद्धिका ही माप दे देना है ऐसा मैं मानता हूँ, अहो रायचन्द्र! इस बातको बाल-मनुष्य ध्यानमे नहीं लाते कि ऐसी जिनेश्वरकी वाणीको विरले ही जानते हैं ॥ १ ॥

१०८ पूर्णमालिका मंगल

जो तप और ध्यानसे रविरूप होता है और उनकी सिद्धि करके जो सोमरूपसे शोभित होता है। बादमें वह महामंगलकी पदवी प्राप्त करता है, जहाँ वह बुधको प्रणाम करनेके लिये आता है। तत्पश्चात् वह सिद्धिदायक निर्ग्रन्थ गुरु अथवा पूर्ण व्याख्याता स्वयं शुक्रका स्थान ग्रहण करता है। उस दशामें तीनों योग मंद पड़ जाते हैं, और आत्मा स्वरूप-सिद्धिमें विचरती हुई विश्राम लेती है।

---

१०७ जिनेश्वरनी वाणी

मनहर छंद

अनत अनत भाव भेदथी भरेली भली, अनत अनत नय निक्षेपे व्याख्यानी छे
सकळ जगत हितकारिणी हारिणी मोह, तारिणी भवाब्धि मोक्षचारिणी प्रमाणी छे
उपमा आप्यानी जेने, तमा राखवी ते व्यर्थ, आपवाथी निज मति मपाई मे मानी छे,
अहो ! राज्यचन्द्र बाळ ख्याल नथी पामता ए, जिनेश्वरतणी वाणी जाणी तेणे जाणी छे ॥ १ ॥

१०८ पूर्णमालिका मगल

उपजाति

तपोपध्याने रविरूप थाय, ए साधिने सोम रही सुहाय,
महान ते मगळ पंक्ति पामे, आवे पछी ते बुधना प्रणामे ॥ १ ॥
निर्ग्रन्थ ज्ञाता गुरु सिद्धि दाता, कातो स्वय शुक्र प्रपूर्ण ख्याता,
त्रियोग त्या केवळ मद पामे, स्वरूप सिद्धे विचरी विरामे ॥ २ ॥

ॐ

भावनाबोध

उपोद्घात

सच्चा सुख किसमे है? चाहे जैसे तुच्छ विषयमें प्रवेश होनेपर भी उज्ज्वल आत्माओकी स्वाभाविक अभिरुचि वैराग्यमे लग जानेकी ओर रहा करती है। बाह्य दृष्टिसे जबतक उज्ज्वल आत्माये संसारके मायामय प्रपंचमे लगी हुई दिखाई देती है तबतक इस कथनका सिद्ध होना शायद कठिन है, तो भी सूक्ष्म दृष्टिसे अवलोकन करनेपर इस कथनका प्रमाण बहुत आसानीसे मिल जाता है, इसमे संदेह नहीं।

सूक्ष्मसे सूक्ष्म जंतुसे लेकर मदोन्मत्त हाथी तकके सब प्राणियों, मनुष्यो, और देव-दानवो आदि सबकी स्वाभाविक इच्छा सुख और आनद प्राप्त करनेकी है, इस कारण वे इसकी प्राप्तिके उद्योगमे लगे रहते है; परन्तु उन्हे विवेक-बुद्धिके उदयके विना उसमे भ्रम होता है। वे संसारमें नाना प्रकारके सुखका आरोप कर लेते है। गहरा अवलोकन करनेंसे यह सिद्ध होता है कि यह आरोप वृथा है। इस आरोपको उड़ा देनेवाले विरले मनुष्य अपने विवेकके प्रकाशके द्वारा अद्भुत इनके अतिरिक्त अन्य विषयोको प्राप्त करनेके लिये कहते आये है। जो सुख भयसे युक्त है, वह सुख सुख नही परन्तु दुःख है। जिस वस्तुके प्राप्त करनेमे महाताप है, जिस वस्तुके भोगनेमे इससे भी विशेष संताप सन्निविष्ट है, तथा परिणाममे महाताप, अनंत शोक, और अनंत भय छिपे हुए है, उस वस्तुका सुख केवल नामका सुख है; अथवा बिलकुल है ही नही। इस कारण विवेकी लोग उसमे अनुराग नहीं करते। संसारके प्रत्येक सुखसे संपन्न राजेश्वर होनेपर भी सत्य तत्त्वज्ञानकी प्रसादी प्राप्त होनेके कारण उसका त्याग करके योगमे परमानंद मानकर **भर्तृहरि** सत्य मनोवीरतासे अन्य पामर आत्माओको उपदेश देते है किः—

> **भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं**
> **माने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे तरुण्या भयं।**
> **शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतांताद्भयं**
> **सर्व वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयं॥ १॥**

भावार्थः—भोगमे रोगका भय है, कुलीनतामे च्युत होनेका भय है, लक्ष्मीमे राजाका भय है, मानमे दीनताका भय है, बलमे शत्रुताका भय है, रूपमे स्त्रीका भय है, शास्त्रमें वादका भय है, गुणमें खलका भय है, और कायामे कालका भय है; इस प्रकार सब वस्तुयें भयसे युक्त है; केवल एक वैराग्य ही भयरहित है!!!

महायोगी भर्तृहरिका यह कथन सृष्टिमान्य अर्थात् समस्त उज्ज्वल आत्माओंको सदैव मान्य रखने योग्य है। इसमे समस्त तत्त्वज्ञानका दोहन करनेके लिये इन्होंने सकल तत्त्ववेत्ताओंके सिद्धातका रहस्य और संसार-शोकके स्वानुभवका जैसेका तैसा चित्र खींच दिया है। इन्होने जिन जिन वस्तुओंपर भयकी छाया दिखाई है वे सब वस्तुये संसारमें मुख्यरूपसे सुखरूप मानी गई है। संसारकी सर्वोत्तम विभूति जो भोग हैं, वे तो रोगोंके धाम ठहरे; मनुष्य ऊँचे कुलोसे सुख माननेवाला है, वहाँ च्युत होनेका भय दिखाया; ससार-चक्रमें व्यवहारका ठाठ चलानेमें जो दडस्वरूप लक्ष्मी, वह राजा इत्यादिके भयसे भरपूर है; किसी भी कृत्यद्वारा यशकीर्तिसे मान प्राप्त करना अथवा मानना ऐसी संसारके पामर जीवोंकी अभिलाषा रहा करती है, इसमें महादीनता और कंगालपनेका भय है, बल पराक्रमसे भी इसी प्रकारकी उत्कृष्टता प्राप्त करनेकी चाह रहा करती है, उसमे शत्रुका भय रहा हुआ है; रूप-काति भोगीको मोहिनीरूप है, उसमे रूप-क्रांति धारण करनेवाली स्त्रियाँ निरंतर भयरूप हैं; अनेक प्रकारकी गुत्थियोंसे भरपूर शास्त्र-जालमे विवादका भय रहता है; किसी भी सासारिक सुखके गुणको प्राप्त करनेसे जो आनंद माना जाता है, वह खल मनुष्योंकी निंदाके कारण भयान्वित है; जो अनत प्यारी लगती है ऐसी यह काया भी कभी न कभी कालरूपी सिंहके मुखमें पड़नेके भयसे पूर्ण है। इस प्रकार संसारके मनोहर किन्तु चपल सुख-साधन भयसे भरे हुए हैं। विवेकसे विचार करनेपर जहाँ भय है वहाँ केवल शोक ही है। जहाँ शोक है वहाँ सुखका अभाव है, और जहाँ सुखका अभाव है वहाँ तिरस्कार करना उचित ही है।

अकेले योगीन्द्र भर्तृहरि ही ऐसा कह गये हैं, यह बात नहीं। कालके अनुसार सृष्टिके निर्माणके समयसे लेकर भर्तृहरिसे उत्तम, भर्तृहरिके समान और भर्तृहरिसे कनिष्ठ कोटिके असंख्य तत्त्वज्ञानी हो गये है। ऐसा कोई काल अथवा आर्यदेश नहीं जिसमें तत्त्वज्ञानियोंकी बिलकुल भी उत्पत्ति न हुई हो। इन तत्त्ववेत्ताओंने संसार-सुखकी हरेक सामग्रीको शोकरूप बताई हैं। यह उनके अगाध विवेकका परिणाम है। व्यास, वाल्मीकि, शंकर, गौतम, पातंजलि, कपिल, और युवराज शुद्धोदनने अपने प्रवचनोमें मार्मिक रीतिसे और सामान्य रीतिसे जो उपदेश किया है, उसका रहस्य नीचेके शब्दोंमें कुछ कुछ आ जाता है:—

" अहो प्राणियो! संसाररूपी समुद्र अनत और अपार है। इसका पार पानेके लिये पुरुषार्थका उपयोग करो! उपयोग करो! "

इस प्रकारका उपदेश देनेमे इनका हेतु समस्त प्राणियोको शोकसे मुक्त करनेका था। इन सब ज्ञानियोकी अपेक्षा परम मान्य रखने योग्य सर्वज्ञ महावीरका उपदेश सर्वत्र यही है कि संसार एकात और अनत शोकरूप तथा दुःखप्रद है। अहो! भव्य लोगो! इसमे मधुर मोहिनीको प्राप्त न होकर इससे निवृत्त होओ! निवृत्त होओ!!

महावीरका एक समयके लिये भी ससारका उपदेश नहीं है। इन्होने अपने समस्त उपदेशोंमें यही बताया है और यही अपने आचरणद्वारा सिद्ध भी कर दिखाया है। कंचन वर्णकी काया, यशोमती जैसी रानी, अतुल साम्राज्यलक्ष्मी और महाप्रतापी स्वजन परिवारका समूह होनेपर भी उनका

मोह त्यागकर और ज्ञानदर्शन-योगमे परायण होकर इन्होने जो अद्भुतता दिखलायी है, वह अनुपम है। इसी रहस्यका प्रकाश करते हुए पवित्र उत्तराध्ययनसूत्रके आठवे अध्ययनकी पहली गाथामें तत्त्वाभिलाषी कपिल केवलीके मुखकमलसे महावीरने कहलवाया है कि:—

अधुवे असासयंमि संसारंमि दुक्खपउराए।
किं नाम हुज्ज कम्मं जेणाहं दुग्गई न गच्छिज्जा ॥ १ ॥

" अध्रुव और अशाश्वत संसारमे अनेक प्रकारके दुःख है। मै ऐसी कौनसी करणी करूँ कि जिस करणीसे दुर्गतिमे न जाऊँ ? " इस गाथामे इस भावसे प्रश्न होनेपर कपिल मुनि फिर आगे उपदेश देते है।

" अधुवे असासयंमि "—प्रवृत्तिमुक्त योगीश्वरके ये महान् तत्त्वज्ञानके प्रसादीभूत वचन सतत ही वैराग्यमे ले जानेवाले है। अति बुद्धिशालीको संसार भी उत्तम रूपसे मानता है फिर भी वे बुद्धिशाली संसारका त्याग कर देते हैं। यह तत्त्वज्ञानका प्रशंसनीय चमत्कार है। ये अत्यन्त मेधावी अंतमे पुरुषार्थकी स्फुरणाकर महायोगका साधनकर आत्माके तिमिर-पटको दूर करते है। संसारको शोकाब्धि कहनेमें तत्त्वज्ञानियोकी भ्रमणा नही है, परन्तु ये सभी तत्त्वज्ञानी कहीं तत्त्वज्ञान-चंद्रकी सोलह कलाओंसे पूर्ण नहीं हुआ करते; इसी कारणसे सर्वज्ञ महावीरके वचनोसे तत्त्वज्ञानके लिये जो प्रमाण मिलता है वह महान् अद्भुत, सर्वमान्य और सर्वथा मंगलमय है। महावीरके समान ऋषभदेव आदि जो जो और सर्वज्ञ तीर्थंकर हुए है उन्होने भी निस्पृहतासे उपदेश देकर जगद्हितैषीकी पदवी प्राप्त की है।

संसारमे जो केवल और अनंत भरपूर ताप है, वे ताप तीन प्रकारके हैं—आधि, व्याधि और उपाधि। इनसे मुक्त होनेका उपदेश प्रत्येक तत्त्वज्ञानी करते आये है। संसार-त्याग, शम, दम, दया, शांति, क्षमा, धृति, अप्रभुत्व, गुरुजनका विनय, विवेक, निस्पृहता, ब्रह्मचर्य, सम्यक्त्व और ज्ञान इनका सेवन करना; क्रोध, लोभ, मान, माया, अनुराग, अप्रीति, विषय, हिंसा, शोक, अज्ञान, मिथ्यात्व इन सबका त्याग करना, यह सब दर्शनोका सामान्य रीतिसे सार है। नीचेके दो चरणोमे इस सारका समावेश हो जाता है:—

प्रभु भजो नीति सजो, परठो परोपकार

अरे! यह उपदेश स्तुतिके योग्य है। यह उपदेश देनेमें किसीने किसी प्रकारकी और किसीने किसी प्रकारकी विचक्षणता दिखाई है। ये सब स्थूल दृष्टिसे तो समतुल्य दिखाई देते हैं, परन्तु सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेपर उपदेशकके रूपमे सिद्धार्थ राजाके पुत्र श्रमण भगवान् पहिले नम्बर आते हैं। निवृत्तिके लिये जिन जिन विषयोको पहले कहा है उन उन विषयोका वास्तविक स्वरूप समझकर संपूर्ण मंगलमय उपदेश करनेमे ये राजपुत्र सबसे आगे बढ़ गये है। इसके लिये वे अनंत धन्यवादके पात्र हैं।

इन सब विषयोंका अनुकरण करनेका क्या प्रयोजन और क्या परिणाम है ? अब इसका निर्णय करें। सब उपदेशक यह कहते आये हैं कि इसका परिणाम मुक्ति प्राप्त करना है और इसका प्रयोजन दुःखकी निवृत्ति है। इसी कारण सब दर्शनोंमे सामान्यरूपसे मुक्तिको अनुपम श्रेष्ठ कहा है। सूत्रकृतांग नामक द्वितीय अंगके प्रथम श्रुतस्कंधके छठे अध्ययनकी चौबीसवीं गाथाके तीसरे चरणमें कहा गया है कि:—

निव्वाणसेट्ठा जह सव्वधम्मा

सब धर्मोंमें मुक्तिको श्रेष्ठ कहा है.

साराश यह है कि मुक्ति उसे कहते है कि संसार-शोकसे मुक्त होना, और परिणाममे ज्ञान दर्शन आदि अनुपम वस्तुओंको प्राप्त करना। जिसमे परम सुख और परमानंदका अखंड निवास है, जन्म-मरणकी विडम्बनाका अभाव है, शोक और दुःखका क्षय है; ऐसे इस विज्ञानयुक्त विषयका विवेचन किसी अन्य प्रसंगपर करेंगे।

यह भी निर्विवाद मानना चाहिये कि उस अनत शोक और अनंत दुःखकी निवृत्ति इन्हीं सासारिक विषयोंसे नहीं होगी। जैसे रुधिरसे रुधिरका दाग नहीं जाता, परन्तु वह दाग जलसे दूर हो जाता है इसी तरह शृंगारसे अथवा शृंगारमिश्रित धर्मसे संसारकी निवृत्ति नही होती। इसके लिये तो वैराग्य-जलकी आवश्यकता निःसशय सिद्ध होती है; और इसीलिये वीतरागके वचनोमे अनुरक्त होना उचित है। कमसे कम इससे विषयरूपी विषका जन्म नहीं होता। अतमे यही मुक्तिका कारण हो जाता है। हे मनुष्य! इन वीतराग सर्वज्ञके वचनोको विवेक-बुद्धिसे श्रवण, मनन और निदिध्यासन करके आत्माको उज्ज्वल कर!

प्रथम दर्शन

वैराग्यकी और आत्महितैषी विषयोंकी सुदृढता होनेके लिये बारह भावनाओका तत्त्वज्ञानियोंने उपदेश किया है:—

१ अनित्यभावना:—शरीर, वैभव, लक्ष्मी, कुटुम्ब परिवार आदि सब विनाशीक है। जीवका केवल मूलधर्म ही अविनाशी है, ऐसा चिंतवन करना पहली अनित्यभावना है।

२ अशरणभावना:—संसारमे मरणके समय जीवको शरण रखनेवाला कोई नहीं, केवल एक शुभ धर्मकी ही शरण सत्य है, ऐसा चिंतवन करना दूसरी अशरणभावना है।

३ संसारभावना:—इस आत्माने संसार-समुद्रमे पर्यटन करते हुए सब योनियोंमे जन्म लिया है, इस संसाररूपी जंजीरसे मैं कब छूटूँगा? यह संसार मेरा नहीं, मैं मोक्षमयी हूँ, इस प्रकार चिंतवन करना तीसरी संसारभावना है।

४ एकत्वभावना:—यह मेरी आत्मा अकेली है, यह अकेली ही आती है, और अकेली जायगी, और अपने किए हुए कर्मोंको अकेली ही भोगेगी, इस प्रकार अंतःकरणसे चिंतवन करना यह चौथी एकत्वभावना है।

५ अन्यत्वभावना:—इस संसारमें कोई किसीका नहीं, ऐसा विचार करना पाँचवीं

८ संवरभावना:—ज्ञान, ध्यानमे प्रवृत्त होकर जीव नये कर्म नहीं बॉधता, यह आठवीं संवरभावना है।

९ निर्जराभावना:—ज्ञानसहित क्रिया करनी निर्जराका कारण है, ऐसा चिंतवन करना नौवी निर्जराभावना है।

१० लोकस्वरूपभावना:—चौदह राजू लोकके स्वरूपका विचार करना लोकस्वरूपभावना है।

११ बोधिदुर्लभभावना:—संसारमे भ्रमण करते हुए आत्माको सम्यग्ज्ञानकी प्रसादी प्राप्त होना अति कठिन है। और यदि सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति भी हुई तो चारित्र–सर्वविरतिपरिणामरूप धर्म–का पाना तो अत्यंत ही कठिन है, ऐसा चिंतवन करना वह ग्यारहवीं बोधिदुर्लभभावना है।

१२ धर्मदुर्लभभावना:—धर्मके उपदेशक तथा शुद्ध शास्त्रके बोधक गुरु और इनके मुखसे उपदेशका श्रवण मिलना दुर्लभ है, ऐसा चिंतवन करना बारहवी धर्मदुर्लभभावना है।

इस प्रकार मुक्ति प्राप्त करनेके लिये जिस वैराग्यकी आवश्यकता है, उस वैराग्यको दृढ़ करनेवाली बारह भावनाओमेसे कुछ भावनाओका इस दर्शनके अंतर्गत वर्णन करेंगे। कुछ भावनाओको अमुक विषयमे बॉट दी हैं; और कुछ भावनाओके लिये अन्य प्रसंगकी आवश्यकता है, इस कारण उनका यहाँ विस्तार नहीं किया।

प्रथम चित्र

अनित्यभावना

उपजाति

विद्युल्लक्ष्मी प्रभुता पतंग, आयुष्य ते तो जलना तरंग,
पुरंदरी चाप अनंगरंग, शुं राचिये त्यां क्षणनो प्रसंग !

विशेषार्थ:—लक्ष्मी बिजलीके समान है। जिस प्रकार बिजलीकी चमक उत्पन्न होकर तत्क्षण ही लय हो जाती है, उसी तरह लक्ष्मी आकर चली जाती है। अधिकार पतंगके रंगके समान है। जिस प्रकार पतंगका रंग चार दिनकी चॉदनी है, उसी तरह अधिकार केवल थोड़े काल तक रहकर हाथसे जाता रहता है। आयु पानीकी हिलोरके समान है। जैसे पानीकी हिलोरें इधर आईं और उधर निकल गईं, उसी तरह जन्म पाया और एक देहमे रहने पाया अथवा नहीं, इतनेमे ही दूसरी देहमे जाना पड़ता है। कामभोग आकाशके इन्द्रधनुषके समान है। जैसे इन्द्रधनुष वर्षाकालमे उत्पन्न होकर क्षणभरमे लय हो जाता है, उसी प्रकार यौवनमे कामनाके विकार फलीभूत होकर बुढापेमे नष्ट हो जाते है। संक्षेपमें, हे जीव ! इन सब वस्तुओका संबंध क्षणभरका है। इसमे प्रेम-बंधनकी सॉकलसे बॅधकर लवलीन क्या होना ? तात्पर्य यह है कि ये सब चपल और विनाशीक हैं, तू अखंड और अविनाशी है, इसलिये अपने जैसी नित्य वस्तुको प्राप्तकर।

भिखारीका खेद

(देखो मोक्षमाला पृष्ठ ४३–४५, पाठ ४१–४२)

* * * *

प्रमाणशिक्षा:—जिस प्रकार उस भिखारीने स्वप्नमे सुख-समुदाय देखे, उनका भोग किया और उनमे आनंद माना उसी तरह पामर प्राणी ससारके स्वप्नके समान सुख-समुदायको महा आनंदरूप मान बैठे है। जिस प्रकार भिखारीको वे सुख-समुदाय जागनेपर मिथ्या मालूम हुए थे, उसी तरह तत्त्वज्ञानरूपी जागृतिसे ससारके सुख मिथ्या मालूम होते हैं। जिस प्रकार स्वप्नके भोगोंको न भोगनेपर भी उस भिखारीको शोककी प्राप्ति हुई उसी तरह पामर भव्य संसारमें सुख मान बैठते हैं, और उन्हे भोगे हुओंके समान गिनते हैं, परन्तु उस भिखारीकी तरह वे अंतमे खेद, पश्चात्ताप, और अधोगतिको पाते हैं। जैसे स्वप्नकी एक भी वस्तु सत्य नहीं उसी तरह ससारकी एक भी वस्तु सत्य नहीं। दोनो ही चपल और शोकमय है, ऐसा विचारकर बुद्धिमान् पुरुष आत्म-कल्याणकी खोज करते है।

द्वितीय चित्र

अशरणभावना

उपजाति

सर्वज्ञनो धर्म सुशर्ण जाणी, आराध्य आराध्य प्रभाव आणी
अनाथ एकात सनाथ थाशे, एना विना कोई न बाह्य स्हाशे।

विशेषार्थ:—हे चेतन! सर्वज्ञ जिनेश्वरदेवके द्वारा निस्पृहतासे उपदेश किये हुए धर्मको उत्तम शरणरूप जानकर मन, वचन और कायाके प्रभावसे उसका तू आराधन कर आराधना कर! तू केवल अनाथरूप है उससे सनाथ होगा। इसके विना भवाटवीके भ्रमण करनेमें तेरी बॉह पकड़नेवाला कोई नहीं।

जो आत्मायें संसारके मायामय सुखको अथवा अवदर्शनको शरणरूप मानतीं हैं, वे अधोगतिको पातीं हैं और सदैव अनाथ रहतीं हैं, ऐसा उपदेश करनेवाले भगवान् अनाथीमुनिके चरित्रको प्रारंभ करते हैं, इससे अशरण भावना सुदृढ होगी।

अनाथीमुनि

(देखो मोक्षमाला पृष्ठ १३-१५, पाठ ५-६-७)

* * * *

प्रमाणशिक्षा:—अहो भव्यो! महातपोधन, महामुनि, महाप्रज्ञावान्, महायशवंत, महानिर्ग्रंथ और महाश्रुत अनाथी मुनिने मगधदेशके राजाको अपने बीते हुए चरित्रसे जो उपदेश दिया वह सच-मुच ही अशरण भावना सिद्ध करता है। महामुनि अनाथीके द्वारा सहन की हुई वेदनाके समान अथवा इससे भी अत्यन्त विशेष असह्य दु:खोंको अनंत आत्माये सामान्य दृष्टिसे भोगतीं हुईं दीख पडतीं है, इनके संबंधमें तुम कुछ विचार करो। संसारमे छायी हुई अनंत अशरणताका त्यागकर सत्य शरणरूप उत्तम तत्त्वज्ञान और परम सुशीलका सेवन करो। अतमें यही मुक्तिका कारण है। जिस प्रकार संसारमें रहता हुआ अनाथी अनाथ था उसी तरह प्रत्येक आत्मा तत्त्वज्ञानकी उत्तम प्राप्तिके विना सदैव अनाथ ही है। सनाथ होनेके लिये पुरुषार्थ करना ही श्रेयस्कर है।

तृतीय चित्र

एकत्वभावना

उपजाति

शरीरमें व्याधि प्रत्यक्ष थाय, ते कोई अन्ये लई ना शकाय;
ए भोगवे एक स्व आत्मा पोते, एकत्व एथी नय सुज्ञ गोते।

विशेषार्थः—शरीरमे प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाले रोग आदि जो उपद्रव होते है उन्हे स्नेही, कुटुम्बी, स्त्री अथवा पुत्र कोई भी नही ले सकते। उन्हे केवल एक अपनी आत्मा ही स्वयं भोगती है। इसमे कोई भी भागीदार नहीं होता। तथा पाप, पुण्य आदि सब विपाकोको अपनी आत्मा ही भोगती है। यह अकेली आती है और अकेली जाती है, इस तरह सिद्ध करके विवेकको भली भाँति जाननेवाले पुरुष एकत्वकी निरतर खोज करते है।

नमिराजर्षि

महापुरुषके उस न्यायको अचल करनेवाले नमिराजर्षि और शक्रेन्द्रके वैराग्यके उपदेशक संवादको यहाँ देते है। नमिराजर्षि मिथिला नगरीके राजेश्वर थे। स्त्री, पुत्र आदिसे विशेष दुःखको प्राप्त न करने पर भी एकत्वके स्वरूपको परिपूर्णरूपसे पहिचाननेमे राजेश्वरने किंचित् भी विभ्रम नहीं किया। शक्रेन्द्र सबसे पहले जहाँ नमिराजर्षि निवृत्तिमें विराजते थे, वहाँ विप्रके रूपमे आकर परीक्षाके लिये अपने व्याख्यानको शुरु करता है:—

विप्र :—हे राजन् ! मिथिला नगरीमे आज प्रबल कोलाहल व्याप्त हो रहा है। हृदय और मनको उद्वेग करनेवाले विलापके शब्दोसे राजमंदिर और सब घर छाये हुए है। केवल तेरी एक दीक्षा ही इन सब दुःखोका कारण है। अपने द्वारा दूसरेकी आत्माको जो दुःख पहुँचता है उस दुःखको संसारके परिभ्रमणका कारण मानकर तू वहाँ जा, भोला मत बन।

नमिराजः—(गौरव भरे वचनोंसे) हे विप्र ! जो तू कहता है वह केवल अज्ञानरूप है। मिथिला नगरीमे एक बगीचा था, उसके बीचमे एक वृक्ष था, वह शीतल छायासे रमणीय था, वह पत्र, पुष्प और फलोंसे युक्त था और वह नाना प्रकारके पक्षियोको लाभ देता था। इस वृक्षके वायुद्वारा कंपित होनेसे वृक्षमें रहनेवाले पक्षी दुःखार्त और शरणरहित होनेसे आक्रन्दन कर रहे हैं। ये पक्षी स्वय वृक्षके लिये विलाप नही कर रहे किन्तु वे अपने सुखके नष्ट होनेके कारण ही शोकसे पीडित हो रहे है।

विप्र :—परन्तु यह देख ! अग्नि और वायुके मिश्रणसे तेरा नगर, तेरा अंतःपुर, और मन्दिर जल रहे है, इसलिये वहाँ जा और इस अग्निको शात कर।

नमिराजः—हे विप्र ! मिथिला नगरीके उन अंतःपुर और उन मंदिरोंके जलनेसे मेरा कुछ भी नही जल रहा। मै उसी प्रकारकी प्रवृति करता हूँ जिससे मुझे सुख हो। इन मंदिर आदिमें मेरा अल्प मात्र भी राग नहीं। मैने पुत्र, स्त्री आदिके व्यवहारको छोड दिया है। मुझे इनमेंसे कुछ भी प्रिय नही, और कुछ भी अप्रिय नही।

विप्रः—परन्तु हे राजन्। अपनी नगरीका सघन किला बनवाकर, राजद्वार, अट्टालिकायें, फाटक, और मोहल्ले बनवाकर, खाई और शतघ्नी यंत्र बनवाकर बादमे जाना।

नमिराजः—(हेतु कारणसे प्रेरित) हे विप्र ! मैं श्रद्धारूपी नगरी करके, सम्वर रूपी मोहल्ले करके क्षमारूपी शुभ किला बनाऊँगा; शुभ मनोयोग रूपी अट्टालिका बनाऊँगा; वचनयोगरूपी खाई खुदाऊँगा; काया योगरूपी शतघ्नी करूँगा; पराक्रमरूपी धनुप चढाऊँगा; ईर्यासमितिरूपी डोरी लगाऊँगा; धीरजरूपी कमान लगाऊँगा; धैर्यको मूठ बनाऊँगा; सत्यरूपी चापसे धनुषको बाँधूँगा, तपरूपी बाण लगाऊँगा; और कर्मरूपी वैरीकी सेनाका भेदन करूँगा, लौकिक संग्रामकी मुझे रुचि नही है, मैं केवल ऐसे भाव-संग्रामको चाहता हूँ।

विप्रः—(हेतु कारणसे प्रेरित) हे राजन् ! शिखरबंद ऊँचे महल बनवाकर, मणि काचनके झरोखे आदि लगवाकर, तालाबमें क्रीड़ा करनेके मनोहर स्थान बनवाकर फिर जाना।

नमिराजः—(हेतु कारणसे प्रेरित) तूने जिस जिस प्रकारके महल गिनाये वे महल मुझे अस्थिर और अशाश्वत जान पड़ते हैं। वे मार्गमे बनी हुई सरायके समान मालूम होते हैं, अतएव जहाँ स्वधाम है, जहाँ शाश्वतता है और जहाँ स्थिरता है मैं वहीं निवास करना चाहता हूँ।

विप्रः—(हेतु कारणसे प्रेरित) हे क्षत्रियशिरोमणि ! अनेक प्रकारके चोरोके उपद्रवोंको दूरकर इसके द्वारा नगरीका कल्याण करके जाना।

नमिराजः—हे विप्र ! अज्ञानी मनुष्य अनेक बार मिथ्या दंड देते है। चोरीके नहीं करनेवाले शरीर आदि पुद्गल लोकमें बाँधे जाते हैं, तथा चोरीके करनेवाले इन्द्रिय-विकारको कोई नहीं बाँध सकता फिर ऐसा करनेकी क्या आवश्यकता है ?

विप्र—हे क्षत्रिय ! जो राजा तेरी आज्ञाका पालन नहीं करते और जो नराधिप स्वतंत्रतासे आचरण करते हैं तू उन्हे अपने वशमे करके पीछे जाना।

नमिराजः—(हेतु कारणसे प्रेरित) दसलाख सुभटोको संग्राममे जीतना दुर्लभ गिना जाता है, फिर भी ऐसी विजय करनेवाले पुरुष अनेक मिल सकते हैं, परन्तु अपनी आत्माको जीतनेवाले एकका मिलना भी अनत दुर्लभ हैं। दसलाख सुभटोंसे विजय पानेवालोकी अपेक्षा अपनी स्वात्माको जीतनेवाला पुरुप परमोत्कृष्ट है। आत्माके साथ युद्ध करना उचित है। बाह्य युद्धका क्या प्रयोजन हैं ? ज्ञानरूपी आत्मासे क्रोध आदि युक्त आत्माको जीतनेवाला स्तुतिका पात्र है। पाँच इन्द्रियोको, क्रोधको, मानको, मायाको और लोभको जीतना दुष्कर है। जिसने मनोयोग आदिको जीत लिया उसने सब कुछ जीत लिया।

विप्र—(हेतु कारणसे प्रेरित) हे क्षत्रिय ! समर्थ यज्ञोको करके, श्रमण, तपस्वी, ब्राह्मण आदिको भोजन देकर, सुवर्ण आदिका दान देकर, मनोज्ञ भोगोंको भोगकर, तू फिर पीछेसे जाना।

नमिराज—(हेतु कारणसे प्रेरित) हर महीने यदि दस-लाख गायोका दान दे फिर भी जो दस लाख गायोके दानकी अपेक्षा सयम ग्रहण करके संयमकी आराधना करता है वह उसकी अपेक्षा विशेष मंगलको प्राप्त करता है।

विप्रः—निर्वाह करनेके लिये भिक्षा माँगनेके कारण सुशील प्रव्रज्यामे असह्य परिश्रम सहना पड़ता है, इस कारण उस प्रव्रज्याको त्यागकर अन्य प्रव्रज्या धारण करने की रुचि हो जाती है। अतएव उस उपाधिको दूर करनेके लिये तू गृहस्थाश्रममे रहकर ही पौषध आदि व्रतोंमे तत्पर रह। हे मनुष्यके अधिपति ! मै ठीक कहता हूँ।

नमिराजः—(हेतु कारणसे प्रेरित) हे विप्र ! बाल अविवेकी चाहे जितना भी उग्र तप करे परन्तु वह सम्यक् श्रुतधर्म तथा चारित्रधर्मके बराबर नही होता। एकाध कला सोलह कलाओके समान कैसे मानी जा सकती है ?

विप्रः—अहो क्षत्रिय ! सुवर्ण, मणि, मुक्ताफल, वस्त्रालंकार और अश्व आदिकी वृद्धि करके फिर जाना।

नमिराजः—(हेतु कारणसे प्रेरित) कदाचित् मेरु पर्वतके समान सोने चाँदीके असंख्यातो पर्वत हो जाँय उनसे भी लोभी मनुष्यकी तृष्णा नहीं बुझती, उसे किंचित्मात्र भी संतोष नहीं होता। तृष्णा आकाशके समान अनंत है। यदि धन, सुवर्ण, पशु इत्यादिसे सकल लोक भर जाय उन सबसे भी एक लोभी मनुष्यकी तृष्णा दूर नहीं हो सकती। लोभकी ऐसी कनिष्ठता है ! अतएव विवेकी पुरुष संतोषनिवृत्तिरूपी तपका आचरण करते है।

विप्रः—(हेतु कारणसे प्रेरित) हे क्षत्रिय ! मुझे अत्यन्त आश्चर्य होता है कि तू विद्यमान भोगोको छोड़ रहा है ! बादमें तू अविद्यमान काम-भोगके संकल्प-विकल्पोके कारणसे खेदखिन्न होगा। अतएव इस मुनिपनेकी सब उपाधिको छोड़ दे।

नमिराजः—(हेतु कारणसे प्रेरित) काम-भोग शल्यके समान है; काम-भोग विषके समान है; काम-भोग सर्पके तुल्य है; इनकी वाँछा करनेसे जीव नरक आदि अधोगतिमे जाता है; इसी तरह क्रोध और मानके कारण दुर्गति होती है, मायासे सद्गतिका विनाश होता है; लोभसे इस लोक और परलोकका भय रहता है, इसलिये हे विप्र ! इनका तू मुझे उपदेश न कर। मेरा हृदय कभी भी चलायमान होनेवाला नही, और इस मिथ्या मोहिनीमे अभिरुचि रखनेवाला नही। जानबूझकर विष कौन पियेगा ? जानबूझकर दीपक लेकर कुँएमे कौन गिरेगा ? जानबूझकर विभ्रममे कौन पडेगा ? मै अपने अमृतके समान वैराग्यके मधुर रसको अप्रिय करके इस ज़हरको प्रिय करनेके लिये मिथिलामे आनेवाला नहीं।

महर्षि नमिराजकी सुदृढ़ता देखकर शक्रेन्द्रको परमानंद हुआ। बादमे ब्राह्मणके रूपको छोडकर उसने इन्द्रपनेकी विक्रिया धारण की। फिर वह वन्दन करके मधुर वचनोसे राजर्षीश्वरकी स्तुति करने लगा कि हे महायशस्वि ! बड़ा आश्चर्य है कि तूने क्रोध जीत लिया। आश्चर्य है कि तूने अहंकारको पराजित किया। आश्चर्य है कि तूने मायाको दूर किया। आश्चर्य है कि तूने लोभको वशमें किया। आश्चर्यकारी है तेरा सरलपना, आश्चर्यकारी है तेरा निर्ममत्व, आश्चर्यकारी है तेरी प्रधान क्षमा और आश्चर्यकारी है तेरी निर्लोभिता। हे पूज्य ! तू इस भवमे उत्तम है और परभवमे उत्तम होगा। तू कर्मरहित

होकर सर्वोच्च सिद्धगतिको प्राप्त करेगा। इस तरह स्तुति करते करते, प्रदक्षिणा करते हुए श्रद्धा-भक्तिसे उसने उस ऋषिके चरणकमलोंको वन्दन किया। तत्पश्चात् वह सुंदर मुकुटवाला शक्रेन्द्र आकाश-मार्गसे चला गया।

प्रमाणशिक्षाः—विप्रके रूपमें नमिराजाके वैराग्यकी परीक्षा करनेमें इन्द्रने क्या न्यूनता की है? कुछ भी नहीं की। संसारकी जो लोलुपतायें मनुष्यको चलायमान करनेवाली है उन सब लोलुपताओंके विषयमे महागौरवपूर्ण प्रश्न करनेमे उस इन्द्रने निर्मल भावनासे प्रशंसायोग्य चातुर्य दिखाया है, तो भी देखनेकी बात तो यही है कि नमिराज अंततक केवल कंचनमय रहे है। शुद्ध और अखड वैराग्यके वेगमें अपने प्रवाहित होनेको इन्होंने अपने उत्तरोंमें प्रदर्शित किया है। हे विप्र! तू जिन वस्तुओंको मेरी कहलवाता है वे वस्तुयें मेरी नहीं हैं। मै अकेला ही हूॅ, अकेला जानेवाला हूॅ; और केवल प्रशंसनीय एकत्वको ही चाहता हूॅ। इस प्रकारके रहस्यमें नमिराज अपने उत्तरको और वैराग्यको दृढ़ बनाते गये हैं। ऐसी परम प्रमाणशिक्षासे भरा हुआ उस महर्षिका चरित्र है। दोनों महात्माओंका परस्परका संवाद शुद्ध एकत्वको सिद्ध करनेके लिये तथा अन्य वस्तुओके त्याग करनेके उपदेशके लिये यहॉ कहा गया है। इसे भी विशेष दृढ़ करनेके लिये नमिराजको एकत्वभाव किस तरह प्राप्त हुआ, इस विषयमे नमिराजके एकत्वसंबंधको संक्षेपमे यहॉ नीचे देते हैं:—

ये विदेह देश जैसे महान् राज्यके अधिपति थे। ये अनेक यौवनवंती मनोहारिणी स्त्रियोंके समुदायसे घिरे हुए थे। दर्शनमोहिनीके उदय न होनेपर भी वे संसार-लुब्ध जैसे दिखाई देते थे। एक बार इनके शरीरमें दाहज्वर रोगकी उत्पत्ति हुई। मानो समस्त शरीर जल रहा हो ऐसी जलन समस्त शरीरमें व्याप्त हो गई। रोम रोममें हज़ार बिच्छुओंके डँसने जैसी वेदनाके समान दुःख होने लगा। वैद्य-विद्यामे प्रवीण पुरुषोके औषधोपचारका अनेक प्रकारसे सेवन किया; परन्तु वह सब वृथा हुआ। यह व्याधि लेशमात्र भी कम न होकर अधिक ही होती गई। सम्पूर्ण औषधियॉ दाह-ज्वरकी हितैषी ही होती गईं। कोई भी औषधि ऐसी न मिली कि जिसे दाहज्वरसे कुछ भी द्वेष हो। निपुण वैद्य हताश हो गये, और राजेश्वर भी इस महाव्याधिसे तंग आ गये। उसको दूर करने वाले पुरुष-की खोज चारों तरफ़ होने लगी। अंतमे एक महाकुशल वैद्य मिला, उसने मलयागिरि चंदनका लेप करना बताया। रूपवन्ती रानियाँ चंदन घिसनेमे लग गईं। चंदन घिसनेसे प्रत्येक रानीके हाथमें पहिने हुए कंकणोंके समुदायसे खलभलाहट होने लगा। मिथिलेशके अंगमें दाहज्वरकी एक असह्य वेदना तो थी ही और दूसरी वेदना इन कंकणोंके कोलाहलसे उत्पन्न हो गई। जब यह खलभलाहट उनसे सहन न हो सका तो उन्होने रानियोंको आज्ञा की कि चंदन घिसना बन्द करो। तुम यह क्या शोर करती हो? मुझसे यह सहा नहीं जाता। मैं एक महाव्याधिसे तो ग्रसित हूॅ ही, और दूसरी व्याधिके समान यह कोलाहल हो रहा है, यह असह्य है। सब रानियोंने केवल एक एक कंकणको मंगल-स्वरूप रखकर बाकी कंकणोंको निकाल डाला इससे होता हुआ खलभलाहट शात हो गया। नमिराजने रानियोंसे पूँछा, क्या तुमने चंदन घिसना बन्द कर दिया? रानियोंने कहा कि नहीं, केवल कोलाहल शात करनेके लिये हम एक एक कंकणको रखकर बाकी कंकणोंका परित्याग करके चंदन

घिस रही हैं। अब हमने कंकणोको समूहको अपने हाथमे नही रक्खा इसलिये कोलाहल नहीं होता। रानियोंके इतने वचनोको सुनते ही नमिराजके रोमरोममे एकत्व उदित हुआ—एकत्व व्याप्त हो गया, और उनका ममत्व दूर हो गया। सचमुच! बहुतोंके मिलनेसे बहुत उपाधि होती है। देखो! अब इस एक कंकणसे लेशमात्र भी खलभलाहट नही होता। कंकणोंके समूहसे सिरको घुमा देनेवाला खलभलाहट होता था। अहो चेतन! तू मान कि तेरी सिद्धि एकत्वमे ही है। अधिक मिलनेसे अधिक ही उपाधि बढ़ती है। संसारमे अनन्त आत्माओके संबन्धसे तुझे उपाधि भोगनेकी क्या आवश्यकता है? उसका त्याग कर और एकत्वमे प्रवेश कर। देख! अब यह एक कंकण खलभलाहटके विना कैसी उत्तम शान्तिमे रम रहा है। जब अनेक थे तब यह कैसी अशांतिका भोग कर रहा था इसी तरह तू भी कंकणरूप है। उस कंकणकी तरह तू भी जबतक स्नेही कुटुंबीरूपी कंकण-समुदायमें पड़ा रहेगा तबतक भवरूपी खलभलाहटका सेवन करना पडेगा। और यदि इस कंकणकी वर्तमान स्थितिकी तरह एकत्वकी आराधना करेगा तो सिद्धगतिरूपी महापवित्र शातिको प्राप्त करेगा। इस प्रकार वैराग्यके उत्तरोत्तर प्रवेशमे ही उन नमिराजको पूर्वभवका स्मरण हो आया। वे प्रव्रज्या धारण करनेका निश्चय करके सो गये। प्रभातमे मंगलसूचक बाजो की ध्वनि हुई; नमिराज दाहज्वरसे मुक्त हुए। एकत्वका परिपूर्ण सेवन करनेवाले श्रीमान् नमिराज ऋषिको अभिवंदन हो!

शार्दूलविक्रीड़ित

राणी सर्व मळी सुचंदन घसी, ने चर्चवामां हती,
बूझ्यो त्या ककळाट कंकणतणो, श्रोती नमिभूपति;
संवादे पण इन्द्रथी दृढ रह्यो, एकत्व साचुं कर्युं,
एवा ए मिथिलेशनुं चरित आ, सम्पूर्ण अत्रे थयुं ॥ १ ॥

विशेषार्थ:—सब रानियॉ मिलकर चंदन घिसकर लेप करनेमे लगीं हुईं थीं। उस समय कंकणोंका कोलाहल सुनकर नमिराजको बोध प्राप्त हुआ। वे इन्द्रके साथ संवादमें भी अचल रहे; और उन्होंने एकत्वको सिद्ध किया। ऐसे इस मुक्तिसाधक महावैरागी मिथिलेशका चरित्र भावनाबोध ग्रंथके तृतीय चित्रमें पूर्ण हुआ।

चतुर्थ चित्र

अन्यत्वभावना

शार्दूलविक्रीड़ित

ना मारां तन रूप कांति युवती, ना पुत्र के भ्रात ना,
ना मारां भृत स्नेहियो स्वजन के, ना गोत्र के ज्ञात ना;
ना मारा धन धाम यौवन धरा, ए मोह अज्ञात्वना,
रे! रे! जीव विचार एमज सदा, अन्यत्वदा भावना ॥ २ ॥

विशेषार्थ:—यह शरीर मेरा नही, यह रूप मेरा नहीं, यह काति मेरी नहीं, यह स्त्री मेरी नहीं, यह पुत्र मेरा नही, ये भाई मेरे नहीं, ये दास मेरे नहीं, ये स्नेही मेरे नहीं, ये संबंधी मेरे नहीं, यह गोत्र मेरा नहीं, यह ज्ञाति मेरी नहीं, यह लक्ष्मी मेरी नहीं, यह महल मेरा नहीं, यह यौवन मेरा नहीं, और यह भूमि मेरी नहीं, यह सब मोह केवल अज्ञानपनेका है। हे जीव! सिद्धगति पानेके लिये अन्यत्वका उपदेश देनेवाली अन्यत्वभावनाका विचार कर! विचार कर!

मिथ्या ममत्वकी भ्रमणा दूर करनेके लिये और वैराग्यकी वृद्धिके लिये भावपूर्वक मनन करने योग्य राजराजेश्वर भरतके चरित्रको यहाँ उद्धृत करते हैं:—

भरतेश्वर

जिसकी अश्वशालामे रमणीय, चतुर और अनेक प्रकारके तेजी अश्वोका समूह शोभायमान होता था, जिसकी गजशालामे अनेक जातिके मदोन्मत्त हाथी झूम रहे थे; जिसके अंतःपुरमे नवयौवना, सुकुमारिका और मुग्धा स्त्रियाँ हजारोकी सख्यामे शोभित हो रही थीं; जिसके खजानेमें विद्वानोद्वारा चंचला उपमासे वर्णन की हुई समुद्रकी पुत्री लक्ष्मी स्थिर हो गई थी; जिसकी आज्ञाको देव-देवागनाये आधीन होकर अपने मुकुट पर चढ़ा रहे थे; जिसके वास्ते भोजन करनेके लिये नाना प्रकारके षट्रस भोजन पल पलमे निर्मित होते थे, जिसके कोमल कर्णके विलासके लिये बारीक और मधुर स्वरसे गायन करनेवाली वारागनायें तत्पर रहतीं थी, जिसके निरीक्षण करनेके लिये अनेक प्रकारके नाटक तमाशे किये जाते थे, जिसकी यशःकीर्ति वायु रूपसे फैलकर आकाशके समान व्याप्त हो गई थी; जिसके शत्रुओको सुखसे शयन करनेका समय न आया था, अथवा जिसके वैरियोंकी वनिताओंके नयनोंमेंसे सदा आँसू ही टपकते रहते थे; जिससे कोई शत्रुता दिखानेको तो समर्थ था ही नहीं, परन्तु जिसके सामने निर्दोषतासे उँगली दिखानेमे भी कोई समर्थ न था, जिसके समक्ष अनेक मंत्रियोका समुदाय उसकी कृपाकी याचना करता था, जिसका रूप, काति और सौंदर्य मनोहारक थे; जिसके अगमें महान् बल, वीर्य, शक्ति और उग्र पराक्रम उछल रहे थे, जिसके क्रीड़ा करनेके लिये महासुगंधिमय बाग-बगीचे और वन उपवन बने हुए थे; जिसके यहाँ मुख्य कुलदीपक पुत्रोंका समुदाय था; जिसकी सेवामें लाखो अनुचर सज्ज होकर खड़े रहा करते थे, वह पुरुष जहाँ जहाँ जाता था वहाँ वहाँ क्षेम क्षेमके उद्गारोसे, कंचनके फूल और मोतियोंके थालसे वधाई दिया जाता था, जिसके कुंकमवर्णके चरणकमलोंका स्पर्श करनेके लिये इन्द्र जैसे भी तरसते रहते थे, जिसकी आयुधशालामें महायशोमान दिव्य चक्रकी उत्पत्ति हुई थी; जिसके यहाँ साम्राज्यका अखंड दीपक प्रकाशमान था, जिसके सिरपर महान् छह खंडकी प्रभुताका तेजस्वी और प्रकाशमान मुकुट सुशोभित था, कहनेका अभिप्राय यह है कि जिसकी साधन-सामग्रीका, जिसके दलका, जिसके नगर, पुर और पट्टनका, जिसके वैभवका, और जिसके विलासका संसारमें किसी भी प्रकारसे न्यूनभाव न था, ऐसा वह श्रीमान् राजराजेश्वर भरत अपने सुंदर आदर्श-भुवनमें वस्त्राभूषणोंसे विभूषित होकर मनोहर सिंहासन पर बैठा था। चारों तरफके द्वार खुले थे; नाना प्रकारकी धूपोंका धूम्र सूक्ष्म रीतिसे फैल रहा था, नाना प्रकारके सुगधित पदार्थ ज़ोरसे महॅक रहे थे, नाना प्रकारके सुन्दर स्वरयुक्त वादित्र यान्त्रिक-कलासे स्वर खींच रहे थे, शीतल, मंद और सुगंधित वायुकी लहरें छूट रहीं थीं। आभूपण आदि पदार्थोंका निरीक्षण करते हुए वे श्रीमान् राजराजेश्वर भरत उस भुवनमें अनुपम जैसे दिखाई देते थे।

इनके हाथकी एक उँगलीमेंसे अँगूठी निकल पड़ी। भरतका ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ और उन्हें अपनी उँगली बिलकुल शोभाहीन मालूम होने लगी। नौ उँगलियें अँगूठियोंद्वारा जिस मनोहरताको धारण करतीं थीं उस मनोहरतासे रहित इस उँगलीको देखकर इसके ऊपरसे भरतेश्वरको अद्भुत गंभीर

विचारकी स्फूरणा हुई। किस कारणसे यह उँगली ऐसी लगती है? यह विचार करनेपर उसे मालूम हुआ कि इसका कारण केवल उँगलीमेंसे अँगूठीका निकल जाना ही है। इस बातको विशेषरूपसे प्रमाणित करनेके लिये उसने दूसरी उँगलीकी अँगूठी भी निकाल ली। जैसे ही दूसरी उँगलीमेंसे अँगूठी निकाली, वैसे ही वह उँगली भी शोभाहीन दिखाई देने लगी। फिर इस बातको सिद्ध करनेके लिये उसने तीसरी उँगलीमेंसे भी अँगूठी निकाल ली, इससे यह बात और भी प्रमाणित हुई। फिर चौथी उँगलीमेंसे भी अँगूठी निकाल ली, यह भी इसी तरह शोभाहीन दिखाई दी। इस तरह भरतने क्रमसे दसो उँगलियाँ खाली कर डालीं। खाली हो जानेसे ये सबकी सब उँगलियाँ शोभाहीन दिखाई देने लगी। इनके शोभाहीन मालूम होनेसे राजराजेश्वर अन्यत्वभावनामे गद्गद होकर इस तरह बोले:—

अहो हो! कैसी विचित्रता है कि भूमिसे उत्पन्न हुई वस्तुको कूटकर कुशलतापूर्वक घड़नेसे मुद्रिका बनी, इस मुद्रिकासे मेरी उँगली सुंदर दिखाई दी, इस उँगलीमेंसे इस मुद्रिकाके निकल पड़नेसे इससे विपरीत ही दृश्य दिखाई दिया। विपरीत दृश्यसे उँगलीकी शोभाहीनता और नंगापन खेदका कारण हो गया। शोभाहीन मालूम होनेका कारण केवल अँगूठीका न होना ही ठहरा न? यदि अँगूठी होती तो मै ऐसी अशोभा न देखता। इस मुद्रिकासे मेरी यह उँगली शोभाको प्राप्त हुई; इस उँगलीसे यह हाथ शोभित होता है; इस हाथसे यह शरीर शोभित होता है, फिर इसमे मै किसकी शोभा मानूँ? बडे आश्चर्यकी बात है! मेरी इस मानी जाती हुई मनोहर कातिको और भी विशेष दीप्त करनेवाले ये मणि माणिक्य आदिके अलंकार और रंगबिरंगे वस्त्र ही सिद्ध हुए; यह काति मेरी त्वचाकी शोभा सिद्ध हुई; यह त्वचा शरीरकी गुप्तताको ढँककर सुंदरता दिखाती है; अहो हो! यह कैसी उलटी बात है! जिस शरीरको मैं अपना मानता हूँ वह शरीर केवल त्वचासे, वह त्वचा कातिसे, और वह काति वस्त्रालंकारसे शोभित होती है; तो क्या फिर मेरे शरीरकी कुछ शोभा ही नहीं? क्या यह केवल रुधिर, मांस और हाड़ोंका ही पंजर है? और इस पंजरको ही मै सर्वथा अपना मान रहा हूँ। कैसी भूल! कैसी भ्रमणा! और कैसी विचित्रता है! मै केवल परपुद्गलकी शोभासे ही शोभित हो रहा हूँ। किसी और चीज़से रमणीयता धारण करनेवाले शरीरको मै अपना कैसे मानूँ? और कदाचित् ऐसा मानकर यदि मै इसमें ममत्व भाव रक्खूँ तो वह भी केवल दुःखप्रद और वृथा है। इस मेरी आत्माका इस शरीरसे कभी न कभी वियोग होनेवाला है। जब आत्मा दूसरी देहको धारण करने चली जायगी तब इस देहके यहीं पड़े रहनेमे कोई भी शंका नहीं है। यह काया न तो मेरी हुई और न होगी, फिर मै इसे अपनी मानता हूँ अथवा मानूँ यह केवल मूर्खता ही है। जिसका कभी न कभी वियोग होनेवाला है और जो केवल अन्यत्वभावको ही धारण किये हुए है उसमे ममत्व क्यो रखना चाहिये? जब यह मेरी नहीं होती तो फिर क्या मुझे इसका होना उचित है? नहीं, नहीं। जब यह मेरी नहीं तो मै भी इसका नहीं, ऐसा विचारूँ, दृढ करूँ और आचरण करूँ यही विवेक-बुद्धिका अर्थ है। यह समस्त सृष्टि अनंत वस्तुओंसे और अनंत पदार्थोंसे भरी हुई है, उन सब पदार्थोंकी अपेक्षा जिसके समान मुझे एक भी वस्तु प्रिय नहीं वह वस्तु भी जब मेरी न हुई, तो फिर दूसरी कोई वस्तु मेरी कैसे हो?

सकती है ? अहो ! मैं बहुत भूल गया । मिथ्या मोहमें फँस गया । वे नवयौवनाये, वे माने हुए कुल-दीपक पुत्र, वह अतुल लक्ष्मी, वह छह खंडका महान् राज्य—मेरा नहीं । इसमेंका लेशमात्र भी मेरा नहीं । इसमें मेरा कुछ भी भाग नहीं । जिस कायासे मैं इन सब वस्तुओंका उपभोग करता हूँ, जब वह भोग्य वस्तु ही मेरी न हुई तो मेरी दूसरी मानी हुई वस्तुयें—स्नेही, कुटुंबी इत्यादि—फिर क्या मेरे हो सकते हैं ? नहीं, कुछ भी नहीं । इस ममत्वभावकी मुझे कोई आवश्यकता नहीं ! यह पुत्र, यह मित्र, यह कलत्र, यह वैभव और इस लक्ष्मीको मुझे अपना मानना ही नहीं ! मैं इनका नहीं; और ये मेरे नहीं ! पुण्य आदिको साधकर मैंने जो जो वस्तुएँ प्राप्त कीं वे वे वस्तुये मेरी न हुईं, इसके समान संसारमें दूसरी और क्या खेदकी बात है ? मेरे उग्र पुण्यत्वका क्या यही परिणाम है ? अन्तमें इन सबका वियोग ही होनेवाला है न ? पुण्यत्वके इस फलको पाकर इसकी वृद्धिके लिये मैंने जो जो पाप किये उन सबको मेरी आत्माको ही भोगना है न ? और वह भी क्या अकेले ही ? क्या इसमें कोई भी साथी न होगा ? नहीं नहीं । ऐसा अन्यत्वभाववाला होकर भी मैं ममत्वभाव बताकर आत्माका अहितैषी होऊँ और इसको रौद्र नरकका भोक्ता बनाऊँ, इसके समान दूसरा और क्या अज्ञान है ? ऐसी कौनसी भ्रमणा है ? ऐसा कौनसा अविवेक है ? त्रेसठ शलाका पुरुषोंमेंसे मैं भी एक गिना जाता हूँ, फिर भी मैं ऐसे कृत्यको दूर न कर सकूँ और प्राप्त की हुई प्रभुताको भी खो बैठूँ, यह सर्वथा अनुचित है । इन पुत्रोंका, इन प्रमदाओंका, इस राज-वैभवका, और इन वाहन आदिके सुखका मुझे कुछ भी अनुराग नहीं ! ममत्व नहीं !

राजराजेश्वर भरतके अंतःकरणमें वैराग्यका ऐसा प्रकाश पड़ा कि उनका तिमिर-पट दूर हो गया । उन्हें शुक्लध्यान प्राप्त हुआ, जिससे समस्त कर्म जलकर भस्मीभूत हो गये !! महादिव्य और सहस्र-किरणोंसे भी अनुपम कांतिमान केवलज्ञान प्रगट हुआ । उसी समय इन्होंने पंचमुष्टि केशलोंच किया । शासनदेवीने इन्हें साधुके उपकरण प्रदान किये; और वे महावीतरागी सर्वज्ञ सर्वदर्शी होकर चतुर्गति, चौवीस दंडक, तथा आधि, व्याधि और उपाधिसे विरक्त हुए, चपल संसारके सम्पूर्ण सुख विलासोंसे इन्होंने निवृत्ति प्राप्त की, प्रिय अप्रियका भेद दूर हुआ, और वे निरन्तर स्तवन करने योग्य परमात्मा हो गये ।

प्रमाणशिक्षाः—इस प्रकार छह खंडके प्रभु, देवोंके देवके समान, अतुल साम्राज्य लक्ष्मीके भोक्ता, महाआयुके धनी, अनेक रत्नोंके धारक राजराजेश्वर भरत आदर्श-भुवनमें केवल अन्यत्वभावनाके उत्पन्न होनेसे शुद्ध वैराग्यवान् हुए !

भरतेश्वरका वस्तुत. मनन करने योग्य चरित्र ससारकी शोकार्तता और उदासीनताका पूरा पूरा भाव, उपदेश और प्रमाण उपस्थित करता है । कहो ! इनके घर किस बातकी कमी थी ? न इनके घर नवयौवना स्त्रियोंकी कमी थी, न राज-ऋद्धिकी कमी थी, न पुत्रोंको समुदायकी कमी थी, न कुटुंब-परिवारकी कमी थी, न विजय-सिद्धिकी कमी थी, न नवनिधिकी कमी थी, न रूपकांति-की कमी थी और न यश-कीर्ति की ही कमी थी ।

इस तरह पहले कही हुई उनकी ऋद्धिका पुनः स्मरण कराकर प्रमाणके द्वारा हम शिक्षा-प्रसादी देना चाहते हैं कि भरतेश्वरने विवेकसे अन्यत्वके स्वरूपको देखा, जाना, और सर्प—कंचुकवत् संसारका

परित्याग करके उसके ममत्वको मिथ्या सिद्ध कर बताया। महावैराग्यकी अचलता, निर्ममत्व, और आत्मशक्तिकी प्रफुल्लता ये सब इन महायोगीश्वरके चरित्रमे गर्भित हैं।

एक ही पिताके सौ पुत्रोमेसे निन्यानवें पुत्र पहलेसे ही आत्मकल्याणका साधन करते थे। सौवे इन भरतेश्वरने आत्मसिद्धि की। पिताने भी इसी कल्याणका साधन किया। उत्तरोत्तर होनेवाले भरतेश्वरके राज्यासनका भोग करनेवाले भी इसी आदर्श-भुवनमें इसी सिद्धिको पाये हुए कहे जाते है। यह सकल सिद्धिसाधक मंडल अन्यत्वको ही सिद्ध करके एकत्वमे प्रवेश कराता है। उन परमात्माओको अभिवन्दन हो!

शार्दूलविक्रीडित

देखी आंगलि आप एक अडवी, वैराग्य वेगे गया,
छांडी राजसमाजने भरतजी, कैवल्यज्ञानी थया;
चोथुं चित्र पवित्र एज चरिते, पाम्युं अही पूर्णता;
ज्ञानीनां मन तेज रंजन करो, वैराग्य भावे यथा ॥ १ ॥

विशेषार्थः—अपनी एक उंगली शोभारहित देखकर जिसने वैराग्यके प्रवाहमे प्रवेश किया, जिसने राज-समाजको छोड़कर केवलज्ञानको प्राप्त किया, ऐसे उस भरतेश्वरके चरित्रको बतानेवाला यह चौथा चित्र पूर्ण हुआ। वह यथायोग्यरूपसे वैराग्यभाव प्रदर्शन करके ज्ञानी पुरुषके मनको रंजन करनेवाला होओ!

पंचम चित्र

अशुचिभावना

गीतीवृत्त

खाण मूत्र ने मळनी, रोग जरानुं निवासनु धाम;
काया एवी गणि ने, मान त्यजीने कर सार्थक आम ॥ १ ॥

विशेषार्थः—हे चैतन्य! इस कायाको मल और मूत्रकी खान, रोग और वृद्धताके रहनेका धाम मानकर उसका मिथ्याभिमान त्याग करके सनत्कुमारकी तरह उसे सफल कर!

इन भगवान् सनत्कुमारका चरित्र यहाँ अशुचिभावनाकी सत्यता बतानेके लिये आरंभ किया जाता है।

सनत्कुमार

(देखो पृष्ठ ६९–७१; पाठ ७०–७१)

* * * *

ऐसा होनेपर भी आगे चलकर मनुष्य देहको सब देहोमे उत्तम कहना पड़ेगा। कहनेका तात्पर्य यह है कि इससे सिद्धगतिकी सिद्धि होती है। तत्संबंधी सब शंकाओको दूर करनेके लिये यहा नाममात्र व्याख्यान किया गया है।

जब आत्माके शुभकर्मका उदय आया तब यह मनुष्य देह मिली। मनुष्य अर्थात् दो हाथ, दो पैर, दो ऑख, दो कान, एक मुँह, दो ओष्ठ और एक नाकवाले देहका स्वामी नहीं, परन्तु इसका मर्म

कुछ जुदा ही है। यदि हम इस प्रकार अविवेक दिखावे तो फिर बदरको भी मनुष्य गिननेमें क्या दोष है? इस विचारेको तो एक पूँछ और भी अधिक प्राप्त हुई है। परन्तु नहीं, मनुष्यत्वका मर्म यह है कि जिसके मनमे विवेक-बुद्धि उदय हुई है वही मनुष्य है, बाकी इसके सिवाय तो सभी दो पैरवाले पशु ही हैं। मेधावी पुरुष निरंतर इस मानवपनेका मर्म इसी तरह प्रकाशित करते हैं। विवेक-बुद्धिके उदयसे मुक्तिके राजमार्गमें प्रवेश किया जाता है, और इस मार्गमें प्रवेश करना ही मानवदेहकी उत्तमता है। फिर भी यह बात सदैव ध्यानमें रखनी उचित है कि वह देह तो सर्वथा अशुचिमय और अशुचिमय ही है। इसके स्वभावमें इसके सिवाय और कुछ नहीं।

भावनाबोध ग्रथमें अशुचिभावनाके उपदेशके लिये प्रथम दर्शनके पॉचवें चित्रमे सनत्कुमारका दृष्टान्त और प्रमाणशिक्षा पूर्ण हुए।

अंतर्दर्शन

षष्ठ चित्र

निवृत्ति-बोध

हरिगीत छंद

अनत सौख्य नाम दुःख त्या रही न मित्रता !
अनत दुःख नाम सौख्य प्रेम त्या, विचित्रता !!
उघाड न्याय नेत्रने निहाळरे ! निहाळ तुं !
निवृत्ति शीघ्रमेव धारि ते प्रवृत्ति बाळ तुं ॥ १ ॥

विशेपार्थः—जिसमें एकात और अनंत सुखकी तरंगें उछल रहीं हैं ऐसे शील-ज्ञानको केवल नाममात्रके दुःखसे तंग आकर उन्हें मित्ररूप नहीं मानता, और उनको एकदम भुला डालता है; और केवल अनंत दुःखमय ऐसे ससारके नाममात्र सुखमें तेरा परिपूर्ण प्रेम है, यह कैसी विचित्रता है ! अहो चेतन ! अब तू अपने न्यायरूपी नेत्रोंको खोलकर देख ! रे देख !! देखकर शीघ्र ही निवृत्ति अर्थात् महावैराग्यको धारण कर और मिथ्या काम-भोगकी प्रवृत्तिको जला दे !

ऐसी पवित्र महानिवृत्तिको दृढ़ करनेके लिये उच्च वैराग्यवान् युवराज मृगापुत्रका मनन करने योग्य चरित्र यहाँ उद्धृत किया है। तू कैसे दुःखको सुख मान बैठा है? और कैसे सुखको दुःख मान बैठा है? इसे युवराजके मुख-वचन ही याथातथ्य सिद्ध करेगे।

मृगापुत्र

नाना प्रकारके मनोहर वृक्षोसे भरे हुए उद्यानोसे सुशोभित सुग्रीव नामका एक नगर था। उस नगरमें बलभद्र नामका एक राजा राज्य करता था। उसकी मिष्टभाषिणी पटरानीका नाम मृगा था। इस दंपतिके बलश्री नामक एक कुमार उत्पन्न हुआ, किन्तु सब लोग इसे मृगापुत्र कहकर ही पुकारा करते थे। वह अपने माता पिताको अत्यन्त प्रिय था। इस युवराजने गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी संयतिके गुणोंको प्राप्त किया था। इस कारण यह दमीश्वर अर्थात् यतियोंमे अग्रेसर गिने जाने योग्य था। वह मृगापुत्र शिखरबद्ध आनन्दकारी प्रासादमे अपनी प्राणप्रियाके साथ दोगदुक देवके समान विलास किया करता था। वह निरंतर प्रमोदसहित मनसे रहता था। उसके प्रासादका फर्श चंद्रकात आदि मणि

और विविध रत्नोसे जड़ा हुआ था। एक दिन वह कुमार अपने झरोखेमे बैठा हुआ था। वहाँसे नगरका परिपूर्णरूपसे निरीक्षण होता था। इतनेमे मृगापुत्रकी दृष्टि चार राजमार्ग मिलनेवाले चौरायेके उस संगम-स्थानपर पड़ी जहाँ तीन राजमार्ग मिलते थे। उसने वहाँ महातप, महानियम, महासंयम, महाशील और महागुणोके धामरूप एक शांत तपस्वी साधुको देखा। ज्यो ज्यो समय बीतता जाता था, त्यो त्यो उस मुनिको वह मृगापुत्र निरख निरखकर देख रहा था।

ऐसा निरीक्षण करनेसे वह इस तरह बोल उठा—जान पड़ता है कि मैंने ऐसा रूप कही देखा है, और ऐसा बोलते बोलते उस कुमारको शुभ परिणामोकी प्राप्ति हुई, उसका मोहका पड़दा हट गया, और उसके भावोंकी उपशमता होनेसे उसे तत्क्षण जातिस्मरण ज्ञान उदित हुआ। पूर्वजातिका स्मरण उत्पन्न होनेसे महाऋद्धिके भोक्ता उस मृगापुत्रको पूर्वके चारित्रका भी स्मरण हो आया। वह शीघ्र ही उस विषयसे विरक्त हुआ, और संयमकी ओर आकृष्ट हुआ। उसी समय वह माता पिताके समीप आकर बोला कि मैने पूर्वभवमे पाँच महाव्रतोके विषयमे सुना था; नरकके अनंत दुःखोको सुना था, और तिर्यचगतिके भी अनंत दुःखोको सुना था। इन अनंत दुःखोसे दुःखित होकर मै उनसे निवृत्त होनेका अभिलाषी हुआ हूँ। हे गुरुजनो! संसाररूपी समुद्रसे पार होनेके लिये मुझे उन पॉच महाव्रतोको धारण करनेकी आज्ञा दो।

कुमारके निवृत्तिपूर्ण वचनोको सुनकर उसके माता पिताने उसे भोगोको भोगनेका आमंत्रण दिया। आमंत्रणके वचनोसे खेदखिन्न होकर मृगापुत्र ऐसे कहने लगा, कि हे माता पिता! जिन भोगोको भोगनेका आप मुझे आमंत्रण कर रहे है उन भोगोको मैने खूब भोग लिया है। वे भोग विषफल—किंपाक वृक्षके फलके समान है; वे भोगनेके बाद कडवे विपाकको देते है; और सदैव दुःखोत्पत्तिके कारण है। यह शरीर अनित्य और सर्वथा अशुचिमय है; अशुचिसे उत्पन्न हुआ है; यह जीवका अशाश्वत वास है, और अनंत दुःखका हेतु है। यह शरीर रोग, जरा और क्लेश आदिका भाजन है। इस शरीरमे मै रति कैसे करूँ? इस बातका कोई नियम नही कि इस शरीरको बालकपनेमे छोड़ देना पड़ेगा अथवा वृद्धपनेमे? यह शरीर पानीके फेनके बुलबुलेके समान है। ऐसे शरीरमे स्नेह करना कैसे योग्य हो सकता है? मनुष्यत्वमे इस शरीरको पाकर यह शरीर कोढ़, ज्वर वगैरे व्याधिसे और जरा मरणसे ग्रस्त रहता है, उसमे मै क्यो प्रेम करूँ?

जन्मका दुःख, जराका दुःख, रोगका दुःख, मरणका दुःख—इस तरह इस संसारमे केवल दुःख ही दुःख है। भूमि—क्षेत्र, घर, कंचन, कुटुंब, पुत्र, प्रमदा, बाधव इन सबको छोड़कर केवल क्लेश पाकर इस शरीरको छोड़कर अवश्य ही जाना पड़ेगा। जिस प्रकार किंपाक वृक्षके फलका परिणाम सुखदायक नही होता वैसे ही भोगका परिणाम भी सुखदायक नही होता। जैसे कोई पुरुप महाप्रवास शुरू करे किन्तु साथमे अन्न-जल न ले, तो आगे जाकर जैसे वह क्षुधा-तृषासे दुःखी होता है, वैसे ही धर्मके आचरण न करनेसे परभवमे जाता हुआ पुरुष दुःखी होता है, और जन्म, जरा आदिसे पीड़ित होता है। जिस प्रकार महाप्रवासमें जानेवाला पुरुप अन्न-जल आदि साथमे लेनेसे क्षुधा-तृपासे रहित होकर सुखको प्राप्त करता है वैसे ही धर्मका आचरण करनेवाला पुरुष परभवमे जाता हुआ सुखको पाता है; अल्प कर्मरहित होता है, और असातावेदनीयसे रहित होता है। हे गुरुजनो! जैसे जिस समय किसी गृहस्थका घर जलने लगता है, उस समय उस घरका मालिक केवल अमूल्य वस्त्र आदिको ही लेकर बाकीके जीर्ण वस्त्र आदिको छोड़ देता है, वैसे ही लोकको जलता देखकर जीर्ण वस्त्ररूप जरा मरणको छोड़कर उस दाहसे (आप आज्ञा दे तो मै) अमूल्य आत्माको उबार लूँ।

मृगापुत्रके ऐसे वचनोंको सुनकर मृगापुत्रके माता पिता शोकार्त होकर बोले, हे पुत्र ! यह तू क्या कहता है ? चारित्रका पालना बहुत कठिन है । उसमे यतियोंको क्षमा आदि गुणोंको धारण करना पडता है, उन्हें निबाहना पड़ता है, और उनकी यत्नसे रक्षा करनी पड़ती है । संयतिको मित्र और शत्रुमें समभाव रखना पड़ता है । संयतिको अपनी और दूसरोकी आत्माके ऊपर समबुद्धि रखनी पड़ती है, अथवा सम्पूर्ण जगत्के ही ऊपर समानभाव रखना पडता है—ऐसे पालनेमें दुर्लभ प्राणातिपातविरति नामके प्रथम व्रतको जीवनपर्यन्त पालना पड़ता है। संयतिको सदैव अप्रमादपनेसे मृषा वचनका त्यागना, हितकारी वचनका बोलना—ऐसे पालनेमे दुष्कर दूसरे व्रतको धारण करना पड़ता है । संयतिको दत-शोधनके लिये एक सींकतक भी विना दिये हुए न लेना, निर्वद्य और दोषरहित भिक्षाका ग्रहण करना—ऐसे पालनेमें दुष्कर तीसरे व्रतको धारण करना पड़ता है । काम-भोगके स्वादको जानने और अब्रह्मचर्य धारण करनेका त्याग करके संयतिको ब्रह्मचर्यरूप चौथे व्रतको धारण करना पड़ता है, जिसका पालन करना बहुत कठिन है । धन, धान्य, दासका समुदाय, परिग्रह ममत्वका त्याग, सब प्रकारके आरंभका त्याग, इस तरह सर्वथा निर्ममत्वसे यह पॉचवा महाव्रत धारण करना संयतिको अत्यन्त ही विकट है । रात्रिभोजनका त्याग, और घृत आदि पदार्थोंके वासी रखनेका त्याग, यह भी अति दुष्कर है।

हे पुत्र ! तू चारित्र चारित्र क्या रटता है ? क्या चारित्र जैसी दूसरी कोई भी दुःखप्रद वस्तु है ? हे पुत्र ! क्षुधाका परिषह सहन करना, तृषाका परिषह सहन करना, ठंडका परिषह सहन करना, उष्ण-तापका परिषह सहन करना, डॉस मच्छरका परिषह सहन करना, आक्रोश परिषह सहन करना, उपाश्रयका परिषह सहन करना, तृण आदि स्पर्शका परिषह सहन करना, मलका परिषह सहन करना; निश्चय मान कि ऐसा चारित्र कैसे पाला जा सकता है ? वधका परिषह, और बंधके परिषह कैसे विकट हैं ! भिक्षाचरी कैसी दुर्लभ है ! याचना करना कैसा दुर्लभ है ! याचना करनेपर भी वस्तुका न मिलना यह अलाभ परिषह कितना कठिन है ? कायर पुरुषोंके हृदयको भेद डालनेवाला केशलोंच कैसा विकट है ? तू विचार कर, कर्म-वैरीके लिये रौद्ररूप ब्रह्मचर्य व्रतका पालना कैसा दुर्लभ है ? सचमुच, अधीर आत्माको यह सब अति अति विकट है ।

प्रिय पुत्र ! तु सुख भोगनेके योग्य है । तेरा सुकुमार शरीर अति रमणीय रीतिसे निर्मल स्नान करनेके तो सर्वथा योग्य है । प्रिय पुत्र ! निश्चय ही तू चारित्रको पालनेमें समर्थ नहीं है । चारित्रमें यावज्जीवन भी विश्राम नहीं । संयतिके गुणोंका महासमुदाय लोहेकी तरह बहुत भारी है । संयमके भारका वहन करना अत्यन्त ही विकट है । जैसे आकाश-गगाके प्रवाहके सामने जाना दुष्कर है, वैसे ही यौवन वयमें सयमका पालना महादुष्कर है । जैसे स्रोतके विरुद्ध जाना कठिन है, वैसे ही यौवन अवस्थामें संयमका पालना महाकठिन है । जैसे भुजाओंसे समुद्रका पार करना दुष्कर है, वैसे ही युवा वयमें संयमगुण-समुद्रका पार करना महादुष्कर है । जैसे रेतका कौर नीरस है, वैसे ही सयम भी नीरस है । जैसे खड्गकी धारके ऊपर चलना विकट है वैसे ही तपका आचरण करना महाविकट है । जैसे सर्प एकात अर्थात् सीधी दृष्टिसे चलता है, वैसे ही चारित्रमे ईर्यासमितिके कारण एकान्तरूपसे चलना महादुष्कर है । हे प्रिय पुत्र ! जैसे लोहेके चनोको चबाना कठिन है वैसे ही संयमका पालना भी कठिन है । जैसे अग्निकी शिखाका पान करना दुष्कर है वैसे ही यौवनमें यतिपना अंगीकार करना महादुष्कर है । जैसे अत्यंत मंद संहननके धारक कायर पुरुषका यतिपनेको धारण करना और पालना दुष्कर है; जैसे तराजूसे मेरु पर्वतका तोलना दुष्कर है, वैसे ही निश्चलपनेसे,

शंकारहित दश प्रकारके यतिधर्मका पालना दुष्कर है। जैसे भुजाओसे स्वयंभूरमण समुद्रका पार करना दुष्कर है वैसे ही उपशमहीन मनुष्योका उपशमरूपी समुद्रको पार कर जाना दुष्कर है।

हे पुत्र ! शब्द, रूप, गध, रस, स्पर्श इन पॉच प्रकारके मनुष्यसंबंधी भोगोंको भोगकर भुक्तभोगी होकर तू वृद्ध अवस्थामे धर्मका आचरण करना। माता पिताके भोगसंबंधी उपदेश सुनकर वह मृगापुत्र माता पितासे इस तरह बोला:—

जिसके विषयकी ओर रुचि ही नहीं उसे संयमका पालना कुछ भी दुष्कर नहीं। इस आत्माने शारीरिक और मानसिक वेदनाको असातारूपसे अनंत बार सहन की है—भोगी है। इस आत्माने महादुःखसे पूर्ण भयको उत्पन्न करनेवाली अति रौद्र वेदनाएँ भोगी है। जन्म, जरा और मरण ये भयके धाम हैं। चतुर्गतिरूपी संसार-अटवीमे भटकते हुए मैने अति रौद्र दुःख भोगे है। हे गुरुजनो! मनुष्य लोकमें अग्नि जो अतिशय उष्ण मानी गई है, इस अग्निसे भी अनंतगुनी उष्ण ताप-वेदना इस आत्माने नरकमे भोगी है। मनुष्यलोकमे ठंड जो अति शीतल मानी गई है, इस ठंडसे भी अनंतगुनी ठडको असातापूर्वक इस आत्माने नरकमे भोगी है। लोहेके भाजनमें ऊपर पैर बाँधकर और नीचे मस्तक करके देवताओद्वारा विक्रियासे बनाई हुई धधकती हुई अग्निमे आक्रंदन करते हुए इस आत्माने अत्यन्त उग्र दुःख भोगा है। महादवकी अग्नि जैसी मरुदेशकी वज्रमय बालूके समान कदंब नामकी नदीकी बालू है, पूर्वकालमे ऐसी उष्ण बालूमे मेरी यह आत्मा अनंतबार जलाई गई है।

आक्रंदन करते हुए मुझे भोजन पकानेके बरतनमे पकानेके लिये अनंतबार पटका गया है। नरकमें महारौद्र परमाधार्मिकोंने मुझे मेरे कड़वे विपाकके लिये अनंतोबार ऊँचे वृक्षकी शाखासे बॉधा है; बांधवरहित मुझे लम्बी लम्बी आरियोसे चीरा है; अति तीक्ष्ण कंटकोसे व्याप्त ऊँचे शाल्मलि वृक्षसे बाँधकर मुझे महान् खेद पहुँचाया है; पाशमे बाँधकर आगे पीछे खींचकर मुझे अत्यन्त दुःखी किया है; महा असह्य कोल्हूमें ईखकी तरह अति रौद्रतासे आक्रन्दन करता हुआ मै पेला गया हूँ। यह सब जो भोगना पड़ा वह केवल अपने अशुभ कर्मके अनंतोबारके उदयसे ही भोगना पड़ा। साम नामके परमाधार्मिकोने मुझे कुत्ता बनाया; शबल नामके परमाधार्मिकोने उस कुत्तेके रूपमे मुझे जमीनपर गिराया; जीर्ण वस्त्रकी तरह फाड़ा; वृक्षकी तरह काटा; इस समय मैं अत्यन्त छटपटाता था।

विकराल खड्गसे, भालेसे तथा दूसरे शस्त्रोसे उन प्रचंडोंने मेरे टुकड़े टुकड़े किये। नरकमे पापकर्मसे जन्म लेकर महान्से महान् दुःखोके भोगनेमें तिलभर भी कमी न रही थी। परतंत्र मुझको अत्यंत प्रज्ज्वलित रथमे रोजकी तरह जबर्दस्ती जोता गया था। मै देवताओकी वैक्रियक अग्निमे महिषकी तरह जलाया गया था। मै भाड़मे भूना जाकर असातासे अत्युग्र वेदना भोगता था। मैं ढंक और गिद्ध नामके विकराल पक्षियोंकी सणसीके समान चोंचोंसे चूँथा जाकर अनंत वेदनासे कायर होकर विलाप करता था। तृषाके कारण जल पीनेकी आतुरतामे वेगसे दौडते हुए मैं छुरेकी धारके समान अनंत दुःख देनेवाले वैतरणीके पानीको पाता था। वहाँ मैं तीव्र खड्गकी धारके समान पत्तोंवाले और महातापसे संतप्त ऐसे असिपत्र वनमे जाता था। वहॉपर पूर्वकालमें मुझे अनंत बार छेदा गया था। मुद्गरसे, तीव्र शस्त्रसे, त्रिशूलसे, मूसलसे और गदासे मेरा शरीर भग्न किया गया था। शरणरूप सुखके बिना मै अशरणरूप अनंत दुःखको पाता था। मुझे वस्त्रके समान छुरेकी तीक्ष्ण धारसे, छुरीसे और कैचीसे काटा गया था। मेरे खंड खंड टुकड़े किये गये थे। मुझे आड़ा आरपार काटा गया था। चररर शब्द करती हुई मेरी त्वचा उतारी गई थी। इस प्रकार मैंने अनंत दुःख पाये थे।

मै परवशतासे मृगकी तरह अनंतवार पाशमें पकडा गया था। परमाधार्मिकोने मुझे मगर मच्छके रूपमे जाल डालकर अनंतवार दुःख दिया था। मुझे बाजके रूपमे पक्षीकी तरह जालमे फँसाकर अनंतबार मारा था। फरसा इत्यादि शस्त्रोसे मुझे अनंतोवार वृक्षकी तरह काटकर मेरे छोटे छोटे टुकड़े किये थे। जैसे लुहार हथोड़ो आदिके प्रहारसे लोहेको पीटता है वैसे ही मुझे भी पूर्वकालमे परमाधार्मिकोने अनतोंबार कूटा था। तावा, लोहा और सीसेको अग्निमें गालकर उनका कलकल शब्द करता हुआ रस मुझे अनंतबार पिलाया था। अति रौद्रतासे वे परमाधार्मिक मुझे ऐसा कहते जाते थे कि पूर्वभवमे तुझे माँस प्रिय था, अब ले यह मॉस। इस तरह मैने अपने ही शरीरके खंड खंड टुकड़े अनंतबार गटके थे। मद्यकी प्रियताके कारण भी मुझे इससे कुछ कम दुःख नहीं सहने पड़े। इस तरह मैंने महाभयसे, महात्राससे और महादुःखसे थरथर कांपते हुए अनंत वेदना भोगी थी। जो वेदनायें सहनेमें अति तीव्र, रौद्र और उत्कृष्ट काल स्थितिकी है, और जो सुननेमें भी अति भयंकर हैं ऐसी वेदनायें उस नरकमें मैंने अनतवार भोगीं थीं। जैसी वेदना मनुष्यलोकमे दिखाई देती है उससे भी अनंतगुनी अधिक असातावेदनीय नरकमें थी। मैंने सर्व भवोमें असातावेदनीय भोगी है। वहाँ क्षणमात्र भी सुख न था।

इस प्रकार मृगापुत्रने वैराग्यभावसे संसारके परिभ्रमणके दुःखको कहा। इसके उत्तरमें उसके माता पिता इस तरह बोले, कि हे पुत्र। यदि तेरी इच्छा दीक्षा लेनेकी है तो तू दीक्षा ग्रहण कर, परंतु चारित्रमें रोगोत्पत्तिके समय तेरी दवाई कौन करेगा? दुःखनिवृत्ति कौन करेगा? इसके बिना वडी कठिनता होगी? मृगापुत्रने कहा यह ठकि है, परन्तु आप विचार करें कि वनमें मृग और पक्षी अकेले ही रहते हैं, जब उन्हें रोग उत्पन्न होता है तो उनकी चिकित्सा कौन करता है? जैसे वनमें मृग अकेले ही विहार करते हैं वैसे ही मैं भी चारित्र-वनमें विहार करूँगा, और सत्रह प्रकारके शुद्ध सयममे अनुरागी होऊँगा, बारह प्रकारके तपका आचरण करूँगा, तथा मृगचर्यासे विचरूँगा। जब मृगको वनमें रोगका उपद्रव होता है, तो वहाँ उसकी चिकित्सा कौन करता है? ऐसा कहकर वह पुनः बोला, कि उस मृगको कौन औषधि देता है? उस मृगके आनन्द, शाति और सुखको कौन पूँछता है? उस मृगको आहार जल कौन लाकर देता है? जैसे वह मृग उपद्रवरहित होनेके बाद गहन वनमें जहाँ सरोवर होता है, वहाँ जाता है, और घास पानी आदिका सेवन करके फिर यथेच्छ रूपसे विचरता है वैसे ही मैं भी विचरूँगा। साराश यह है कि मै इस प्रकारकी मृगचर्याका आचरण करूँगा। इस तरह मैं भी मृगके समान संयमवान होऊँगा। अनेक स्थलोंमें विचरता हुआ यति मृगके समान अप्रतिबद्ध रहे; यतिको चाहिये वह मृगके समान विचरकर मृगचर्याका सेवन करके, सावद्य दूर करके विचरे। जैसे मृग, तृण जल आदिकी गोचरी करता है वैसे ही यति भी गोचरी करके संयम-भारका निर्वाह करे। वह दुराहारके लिये गृहस्थका तिरस्कार अथवा उसकी निंदा न करे, मैं ऐसे ही संयमका आचरण करूँगा।

'एवं पुत्तो जहासुखं'—हे पुत्र! जैसे तुझे सुख हो वैसे कर। इस प्रकार माता पिताने आज्ञा दे दी। आज्ञा मिलते ही जैसे महानाग काचली त्यागकर चला जाता है, वैसे ही वह मृगापुत्र ममत्वभावको नष्ट करके संसारको त्यागकर संयम-धर्ममें सावधान हुआ और कंचन, कामिनी, मित्र, पुत्र, ज्ञाति और सगे संबंधियोंका परित्यागी हुआ। जैसे वस्त्रको झटककर धूलको झाड़ डालते हैं वैसे ही भी समस्त प्रपचको त्यागकर दीक्षा लेनेके लिये निकल पड़ा। वह पवित्र पॉच महाव्रतोंसे युक्त

हुआ; पाँच समितियोसे सुशोभित हुआ; त्रिगुप्तियोसे गुप्त हुआ; बाह्य और अभ्यंतर द्वादश तपसे संयुक्त हुआ; ममत्वरहित हुआ; निरहंकारी हुआ; स्त्रियो आदिके संगसे रहित हुआ, और इसका समस्त प्राणियोमे समभाव हुआ। आहार जल प्राप्त हो अथवा न हो, सुख हो या दुःख हो, जीवन हो या मरण हो, कोई स्तुति करो अथवा कोई निंदा करो, कोई मान करो अथवा अपमान करो, वह उन सवपर समभावी हुआ। वह ऋद्धि, रस और सुख इन तीन गर्वोके अहंपदसे विरक्त हुआ; मनदंड, वचनदंड और कायदंडसे निवृत्त हुआ; चार कषायोसे मुक्त हुआ; वह मायाशल्य, निदानशल्य और मिथ्यात्वशल्य इन तीन शल्योसे विरक्त हुआ; सात महाभयोसे भयरहित हुआ; हास्य और शोकसे निवृत्त हुआ, निदानरहित हुआ, राग द्वेषरूपी बंधनसे छूट गया; वॉछारहित हुआ, सब प्रकारके विलाससे रहित हुआ; और कोई तलवारसे काटे या कोई चंदनका विलेप करे उसपर समभावी हुआ। उसने पापके आनेके सब द्वारोको बंद कर दिया; वह शुद्ध अंतःकरण सहित धर्मध्यान आदि व्यापारमे प्रशस्त हुआ; जिनेन्द्र-शासनके तत्त्वोमे परायण हुआ; वह ज्ञानसे, आत्मचारित्रसे, सम्यक्त्वसे, तपसे और प्रत्येक महाव्रतकी पॉच पॉच भावनाओसे अर्थात् पॉचो महाव्रतोकी पच्चीस भावनाओंसे, और निर्मलतासे अनुपम-रूपसे विभूषित हुआ। अंतमे वह महाज्ञानी युवराज मृगापुत्र सम्यक् प्रकारसे बहुत वर्षतक आत्म-चारित्रकी सेवा करके एक मासका अनशन करके सर्वोच्च मोक्षगतिमे गया।

प्रमाणशिक्षाः—तत्त्वज्ञानियोद्वारा सप्रमाण सिद्धकी हुई द्वादश भावनाओमे की संसारभावनाको दृढ़ करनेके लिये यहॉ मृगापुत्रके चरित्रका वर्णन किया गया है। संसार-अटवीमे परिभ्रमण करनेमें अनंत दुःख है यह विवेक-सिद्ध है; और इसमे भी जिसमे निमेषमात्र भी सुख नहीं ऐसी नरक अधोगतिके अनंत दुःखोको युवक ज्ञानी योगीन्द्र मृगापुत्रने अपने माता पिताके सामने वर्णन किया है। वह केवल संसारसे मुक्त होनेका वीतरागी उपदेश देता है। आत्म-चारित्रके धारण करनेपर तप, परिषह आदिके बाह्य दुःखको दुःख मानना और महा अधोगतिके भ्रमणरूप अनंत दुःखको बहिर्भाव मोहिनीसे सुख मानना, यह देखो कैसी भ्रमविचित्रता है! आत्म-चारित्रका दुःख दुःख नहीं, परन्तु वह परम सुख है, और अन्तमे वह अनंतसुख-तरंगकी प्राप्तिका कारण है। इसी तरह भोगविलास आदिका सुख भी क्षणिक और बहिर्दृश्य सुख केवल दुःख ही है, वह अन्तमे अनंत दुःखका कारण है; यह बात सप्रमाण सिद्ध करनेके लिये महाज्ञानी मृगापुत्रके वैराग्यको यहॉ दिखाया है। इस महाप्रभाववान, महा-यशोमान मृगापुत्रकी तरह जो साधु तप आदि और आत्म-चारित्र आदिका शुद्धाचरण करता है, वह उत्तम साधु त्रिलोकमे प्रसिद्ध और सर्वोच्च परमसिद्धिदायक सिद्धगतिको पाता है। तत्त्वज्ञानी संसारके ममत्वको दुःखवृद्धिरूप मानकर इस मृगापुत्रकी तरह परम सुख और परमानंदके कारण ज्ञान, दर्शन चारित्ररूप दिव्य चिंतामणिकी आराधना करते है।

महर्षि मृगापुत्रका सर्वोत्तम चरित्र (संसारभावनाके रूपसे) संसार-परिभ्रमणकी निवृत्तिका और उसके साथ अनेक प्रकारकी निवृत्तियोका उपदेश करता है। इसके ऊपरसे अंतर्दर्शनका नाम निवृत्ति-बोध रखकर आत्म-चारित्रकी उत्तमताका वर्णन करते हुए मृगापुत्रका यह चरित्र यहॉ पूर्ण होता है। तत्त्व-ज्ञानी सदा ही संसार-परिभ्रमणकी निवृत्ति और सावद्य उपकरणकी निवृत्तिका पवित्र विचार करते रहते है।

इस प्रकार अंतर्दर्शनके संसारभावनारूप छठे चित्रमे मृगापुत्र चरित्र समाप्त हुआ।

सप्तम चित्र

आश्रवभावना

बारह अविरति, सोलह कषाय, नव नोकषाय, पाँच मिथ्यात्व और पन्द्रह योग ये सब मिलकर सत्तावन आश्रव-द्वार अर्थात् पापके प्रवेश होनेकी प्रनालिकायें हैं।

कुंडरीक

महाविदेहमे विशाल पुडरिकिणी नगरीके राज्यसिंहासनपर पुण्डरीक और कुण्डरीक नामके दो भाई राज करते थे। एक समय वहाँ तत्त्वविज्ञानी मुनिराज विहार करते हुए आये। मुनिके वैराग्य-वचनामृतसे कुंडरीक दीक्षामे अनुरक्त हो गया, और उसने घर आनेके पश्चात् पुंडरीकको राज्य सौंपकर चारित्रको अगीकार किया। रूखा सूखा आहार करनेके कारण वह थोड़े समयमें ही रोगग्रस्त हो गया, इस कारण अतमें उसका चारित्र भंग हो गया। उसने पुंडरीकिणी महानगरीकी अशोकवाटिकामें आकर ओघा और मुखपत्ती वृक्षपर लटका दिये; और वह इस बातका निरंतर सोच करने लगा कि अब पुंडरीक मुझे राज देगा या नहीं ? वनरक्षकने कुंडरीकको पहचान लिया। उसने जाकर पुंडरीकसे कहा कि बहुत व्याकुल अवस्थामें आपके भाई अशोक बागमें ठहरे हुए हैं। पुडरीकने वहाँ आकर कुंडरीकके मनोगत भावोंको जान लिया, और उसे चारित्रसे डगमगाते देखकर बहुतसा उपदेश दिया, और अन्तमें राज सौंपकर घर चला आया।

कुंडरीककी आज्ञाको सामंत अथवा मंत्री लोग कोई भी न मानते थे, और वह हजार वर्षतक प्रव्रज्याका पालन करके पतित हो गया है, इस कारण सब कोई उसे धिक्कारते थे। कुडरीकने राज होनेके बाद अति आहार कर लिया, इस कारण उसे रात्रिमे बहुत पीड़ा हुई और वमन हुआ उसपर अप्रीति होनेके कारण उसके पास कोई भी न आया, इससे कुण्डरीकके मनमे प्रचंड क्रोध उत्पन्न हुआ। उसने निश्चय किया कि यदि इस रोगसे मुझे शाति मिले तो फिर मैं सुबह होते ही इन सबको देख लूँगा। ऐसे महादुर्ध्यानसे मरकर वह सातवें नरकमें अपयठाण पाथड़ेमें तैंतीस-सागरकी आयुके साथ अनत दु.खमे जाकर उत्पन्न हुआ। कैसा विपरीत आश्रव-द्वार !!!

इस प्रकार सप्तम चित्रमें आश्रवभावना समाप्त हुई।

अष्टम चित्र

संवरभावना

सम्वर भावना—जो ऊपर कहा है वह आश्रव-द्वार है। और पाप-प्रनालिकाको सर्व प्रकारसे रोकना (आते हुए कर्म-समूहको रोकना) वह संवरभाव है।

पुंडरीक

(कुंडरीककी कथा अनुसंधान) कुडरीकके मुखपत्ती इत्यादि उपकरणोंको ग्रहणकर पुंडरीकने निश्चय किया कि मुझे पहिले महर्षि गुरुके पास जाना चाहिये, और उसके बाद ही अन्न जल ग्रहण करना चाहिये।

नंगे पैरोंसे चलनेके कारण उसके पैरोंमें कंकरों और काँटोंके चुभनेसे खूनकी धारायें निकलने लगीं तो भी वह उत्तम ध्यानमें समताभावसे अवस्थित रहा। इस कारण यह महानुभाव पुंडरीक मरकर सर्वार्थसिद्धि विमानमें तैंतीस सागरकी उत्कृष्ट आयुसहित देव हुआ। आश्रवसे कुंडरीककी कैसी दु:खदशा हुई और संवरसे पुण्डरीकको कैसी सुखदशा मिली।

संवरभावना—द्वितीय दृष्टांत

श्रीवज्रस्वामी

श्रीवज्रस्वामी कंचन-कामिनीके द्रव्य-भावसे सम्पूर्णतया परित्यागी थे। किसी श्रीमंतकी रुक्मिणी नामकी मनोहारिणी पुत्री वज्रस्वामीके उत्तम उपदेशको श्रवण करके उनपर मोहित हो गई। उसने घर आकर माता पितासे कहा कि यदि मै इस देहसे किसीको पति बनाऊँ तो केवल वज्रस्वामीको ही बनाऊंगी ? किसी दूसरेके साथ संलग्न न होनेकी मेरी प्रतिज्ञा है। रुक्मिणीको उसके माता पिताने बहुत कुछ समझाया, और कहा कि पगली ! विचार तो सही कि कही मुनिराज भी विवाह करते है ? इन्होने तो आश्रव-द्वारकी सत्य प्रतिज्ञा ग्रहण की है, तो भी रुक्मिणीने न माना। निरुपाय होकर धनावा सेठने बहुतसा द्रव्य और सुरूपा रुक्मिणीको साथमे लिया, और जहाँ वज्रस्वामी विराजते थे, वहाँ आकर उनसे कहा कि इस लक्ष्मीका आप यथारुचि उपयोग करे, इसे वैभव-विलासमे काममे ले; और इस मेरी महासुकोमला रुक्मिणी पुत्रीसे पाणिग्रहण करे। ऐसा कहकर वह अपने घर चला आया।

यौवन-सागरमे तैरती हुई रूपकी राशि रुक्मिणीने वज्रस्वामीको अनेक प्रकारसे भोगोका उपदेश दिया; अनेक प्रकारसे भोगके सुखोका वर्णन किया; मनमोहक हावभाव तथा अनेक प्रकारके चलायमान करनेवाले बहुतसे उपाय किये, परन्तु वे सब वृथा गये। महासुंदरी रुक्मिणी अपने मोह-कटाक्षमें निष्फल हुई। उग्रचरित्र विजयमान वज्रस्वामी मेरुकी तरह अचल और अडोल रहे। रुक्मिणीके मन, वचन और तनके सब उपदेशो और हावभावसे वे लेशमात्र भी नही पिघले। ऐसी महाविशाल दृढ़ता देखकर रुक्मिणी समझ गई, और उसने निश्चय किया कि ये समर्थ जितेन्द्रिय महात्मा कभी भी चलायमान होनेवाले नही। लोहे और पत्थरका पिघलाना सुलभ है, परन्तु इस महापवित्र साधु वज्रस्वामीको पिघलानेकी आशा निरर्थक ही है, और वह अधोगतिका कारण है। ऐसे विचार कर उस रुक्मिणीने अपने पिताकी दी हुई लक्ष्मीको शुभ क्षेत्रमें लगाकर चारित्रको ग्रहण किया; मन, वचन और कायाको अनेक प्रकारसे दमन करके आत्म-कल्याणकी साधना की, इसे तत्त्वज्ञानी सम्वरभावना कहते हैं।

इस प्रकार अष्टम चित्रमे संवरभावना समाप्त हुई।

नवम चित्र

निर्जराभावना

बारह प्रकारके तपसे कर्मोंके समूहको जलाकर भस्मीभूत कर डालनेका नाम निर्जराभावना है। बारह प्रकारके तपमे छह प्रकारका बाह्य और छह प्रकारका अभ्यतर तप है। अनशन, ऊणोदरी वृत्तिसंक्षेप, रसपरित्याग, कायक्लेश और संलीनता ये छह बाह्य तप है। प्रायश्चित्त, विनय, वैयावच्च, शास्त्रपठन, ध्यान, और कायोत्सर्ग ये छह अभ्यंतर तप है। निर्जरा दो प्रकारकी है—एक अकाम निर्जरा और दूसरी सकाम निर्जरा। निर्जराभावनापर हम एक विप्र-पुत्रका दृष्टांत कहते हैं।

दृढप्रहारी

किसी ब्राह्मणने अपने पुत्रको सप्तव्यसनका भक्त जानकर अपने घरसे निकाल दिया। वह वहाँसे निकल पड़ा, और जाकर चारोकी मंडलीमे जा मिला। उस मंडलीके अगुआने उसे अपने काममें पराक्रमी देखकर उसे अपना पुत्र बनाकर रक्खा। यह विप्रपुत्र दुष्टोके दमन करनेमे दृढप्रहारी सिद्ध हुआ, इसके ऊपरसे इसका उपनाम दृढप्रहारी पडा। यह दृढप्रहारी चोरोंका अगुआ हो गया, और नगर और ग्रामोंके नाश करनेमे प्रबल छातीवाला सिद्ध हुआ। उसने बहुतसे प्राणियोंके

प्राण लिये। एक समय अपने साथी डाकुओंको लेकर उसने एक महानगरको लूटा। दृढप्रहारी एक विप्रके घर बैठा था। उस विप्रके यहाँ बहुत प्रेमभावसे क्षीर-भोजन बनाया गया था। उस क्षीर-भोजनके भाजनसे उस विप्रके लोलुपी बालक चिपट रहे थे। दृढप्रहारी उस भोजनको छूने लगा। ब्राह्मणीने कहा, हे मूर्खराज! इसे क्यो छूता है? यह फिर हमारे काममे नहीं आवेगा, तू इतना भी नहीं समझता। दृढप्रहारीको इन वचनोंसे प्रचड क्रोध आ गया, और उसने उस दीन स्त्रीको मार डाला। नहाते नहाते ब्राह्मण सहायताके लिये दौडा आया, उसने उसे भी परभवको पहुँचाया। इतनेमें घरमेंसे एक दौड़ती हुई गाय आयी और वह अपने सींगोसे दृढप्रहारीको मारने लगी। उस महादुष्टने उसे भी कालके सुपुर्द की। उसी समय इस गायके पेटमेंसे एक बछड़ा निकलकर नीचे पड़ा। उसे तड़फता देख दृढ़प्रहारीके मनमें बहुत बड़ा पश्चात्ताप हुआ। मुझे धिक्कार है कि मैने महाघोर हिंसाएँ कर डालीं! अपने इस पापसे मेरा कब छुटकारा होगा! सचमुच आत्म-कल्याणके साधन करनेमें ही श्रेय है।

ऐसी उत्तम भावनासे उसने पंचमुष्टि केशलोंच किया। वह नगरीके किसी मुहल्लेमें आकर उग्र कायोत्सर्गसे अवस्थित हो गया। दृढ़प्रहारी पहिले इस समस्त नगरको संतापका कारण हुआ था, इस कारण लोगोंने इसे अनेक तरहसे संताप देना आरंभ किया। आते जाते हुए लोगोंके धूल-मिट्टी और ईंट पत्थरके फेकनेसे और तलवारकी मूठसे मारनेसे उसे अत्यन्त संताप हुआ। वहाँ लोगोंने डेढ़ महिनेतक उसका अपमान किया। बादमे जब लोग थक गये तो उन्होंने उसे छोड़ दिया। दृढ़प्रहारी वहाँसे कायोत्सर्गका पालनकर दूसरे मुहल्लेमे ऐसे ही उग्र कायोत्सर्गमें अवस्थित हो गया। उस दिशाके लोगोंने भी उसका इसी तरह अपमान किया। उन्होने भी उसे डेढ़ महीने तंग करके छोड़ दिया। वहाँसे कायोत्सर्गका पालनकर दृढ़प्रहारी तीसरे मुहल्लेमे गया। वहाँके लोगोंने भी उसका इसी तरह महाअपमान किया। वहाँसे डेढ़ महीने बाद वह चौथे मुहल्लेमे डेढ़ मासतक रहा। वहाँ अनेक प्रकारके परिषहोंको सहनकर वह क्षमामें लीन रहा। छठे मासमें अनंत कर्म-समुदायको जलाकर अत्यन्त शुद्ध होते होते वह कर्मरहित हो गया। उसने सब प्रकारके ममत्वका त्याग किया। वह अनुपम कैवल्यज्ञान पाकर मुक्तिके अनंत सुखानंदसे युक्त हुआ। यह निर्जराभावना दृढ़ हुई। अब—

दशमचित्र

लोकस्वरूपभावना

लोकस्वरूपभावना.—इस भावनाका स्वरूप यहाँ सक्षेपमे कहना है। यदि पुरुष दो हाथ कमरपर रखकर पैरोंको चौडे करके खड़ा हो तो वैसा ही लोकनाल अथवा लोकका स्वरूप जानना चाहिये। वह लोक स्वरूप तिरछे थालके आकारका है, अथवा खड़े मृदगके समान है। लोकके नीचे भुवनपति, व्यतर, और सात नरक हैं; मध्य भागमे, अढाई द्वीप हैं; ऊपर बारह देवलोक, नव ग्रैवेयक, पाँच अनुत्तर विमान और उनके ऊपर अनंत सुखमय पवित्र सिद्धगतिकी पडोसी सिद्धशिला है। यह लोकालोक प्रकाशक, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और निरुपम केवलज्ञानियोंने कहा है। संक्षेपमें लोकस्वरूप भावनाको कहा।

इस दर्शनमें पाप-प्रनालिकाको रोकनेके लिये आश्रवभावना और सवरभावना, तप महाफलके लिये निर्जराभावना, और लोकस्वरूपके कुछ तत्त्वोंके जाननेके लिये लोकस्वरूपभावनाये इन चार चित्रोंमें पूर्ण हुईं।

दशम चित्र समाप्त.

पुष्पमाला आदिके विशिष्ट शब्दोंकी सूची

संशोधन और परिवर्तन

अशुद्ध	शुद्ध
पृष्ठ लाइन	
४–१३ पहले	=आगे
८–५ वीर	=भाई
८–८ धर्मविना राजा लोग ठगाये जाते हैं (?)	=यदि राजाके पास ठाटबाट न हो तो वह उस कमीके कारण ठगा नहीं जाता, किन्तु धर्मकी कमीके कारण वह ठगाया जाता है।
८–९ धुरधता	=धुरंधरता.
९–४ प्रतिष्ठा	=बुद्धिमत्ता
९–४ धर्मके बिना किसीभी वचनका	=सभीका कथन है कि धर्मके बिना
११–२८ महावीरकी	=महावीरनी
१३–१६ निकाल	=निकल
२२–१८ प्रवेश मार्गमें	=मार्गमें प्रवेश
२३–२ चलाई	=उठाई
२६–२५ स्वरूपकी	=स्वरूपको
२६–२५ विनाशका	=विनाश
३८–१३ व्यावस्था	=व्यवस्था
५६–९ जीवोंका क्षमाकर	=जीवोंसे क्षमा माँगकर
६०–१२ इतनेमें	=इतने
६७–२ इस बातकी......करना।	=मुझे तो उसकी दया आती है। उसको परवस्तुमें मत जकड़ रक्खो। परवस्तुके छोड़नेके लिये यह सिद्धान्त ध्यानमें रक्खो कि
७१–६ उज्ज्वलको	=उज्ज्वल
७२–१२ भगवानमें	=भगवानने
७४–८ समाणेमि	=सम्माणेमि
७९–१० होने	=होते
८०–४ तत्पर्य	=तात्पर्य
८४–२१ उत्पत्ति व्ययरूपसे......तो	=उत्पत्ति व्ययरूपसे मानें तो पाप पुण्य आदिका अभाव हो जानेसे
८५–१ नहीं, अर्थात् कभी	=नहीं हुआ, अतः संभव है।
८५–२ जानकर	=जानकार
८५–२० जावग	=जावेंगे
९५–१४ पहले	=उन
१०३–३ शरीरमें	=शरीरमा
१०७–१ ककर्णोंको	=कंकर्णोंके
११५–६ जिसके	=जिसकी
११५–२६ रोज	=रोझ
११९–४ मामकी	=नामकी
११९–३२ चारों	=चोरों

श्रीरायचन्द्रजैनशास्त्रमालाके प्रकाशित
ग्रन्थोंकी सूची।

१ **पुरुषार्थसिद्ध्युपाय**—श्रीअमृतचन्द्रसूरिकृत मूल और प० नाथूरामजी प्रेमीकृत सरल और विस्तृत भाषाटीका। इसमें श्रावकाचार और अहिंसाके स्वरूपका विशद वर्णन है। मूल्य सजिल्दका १।)

२ **पंचास्तिकाय**—श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत मूल गाथायें, अमृतचन्द्राचार्यकृत तत्त्वदीपिका, जयसेनाचार्यकृत तात्पर्यवृत्ति ये दो संस्कृतटीकायें, और स्व० प० पन्नालालजी बाकलीवालकृत भाषाटीका मूल्य सजिल्दका २)

३ **ज्ञानार्णव**—श्रीशुभचन्द्राचार्यकृत मूल स्व० पं० जयचन्द्रजीकृत भाषाटीका, योगके विषयका अपूर्व ग्रंथ है। मूल्य सजिल्दका ४)

४ **सप्तभंगीतरंगिणी**—श्रीविमलदासकृत मूल और स्व० प० ठाकुरप्रसाद व्याकरणाचार्यकृत भाषाटीका। नव्य-न्यायका महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। मूल्य १)

५ **बृहद्द्रव्यसंग्रह**—श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीकृत गाथायें, श्रीब्रह्मदेवकृत संस्कृतटीका, प० जवाहरलाल शास्त्रीकृत भाषाटीका सजिल्दका, मूल्य २।)

६ **गोम्मटसार-कर्मकांड**—श्रीनेमिचन्द्राचार्यकृत गाथायें, और स्व० प० मनोहरलालजी शास्त्रीकृत संस्कृत छाया और भाषाटीका सहित। मूल्य सजिल्दका २॥)

७ **गोम्मटसार—जीवकांड**-श्रीनेमिचन्द्राचार्यकृत मूल गाथायें, और पं० खूबचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीकृत संस्कृत छाया भाषाटीका सहित। मू० सजिल्दका २॥)

८ **लब्धिसार**—श्रीनेमिचन्द्राचार्यकृत मूल गाथायें, और स्व० पं० मनोहरलालजी शास्त्रीकृत संस्कृत छाया और हिन्दी टीकासहित। मूल्य सजिल्दका १॥)

९ **प्रवचनसार**-श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत। अमृतचन्द्र जयसेनकी दो संस्कृत टीकायें, पांडे हेमराजकी हिन्दीटीका प्रो० ए० एन० उपाध्यायकी अंग्रेजी टीका और अंग्रेजीकी महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना साहितका मू०मूल्य५)

१० **परमात्मप्रकाश और योगसार**—श्रीयोगीन्द्रदेवकृत दोहे, ब्रह्मदेवकृत संस्कृतटीका, स्व० पं० दौलतरामजीकृत भाषाटीका है। प्रो० ए० एन्० उपाध्यायकी लिखी महत्त्वपूर्ण अंग्रेजी प्रस्तावना है, अंग्रेजी प्रस्तावनाका हिन्दी सार भी है। मूल्य सजिल्दका ४॥).

११ **समयसार**—श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकृत गाथायें, अमृतचन्द्राचार्य जयसेनाचार्यकृत दो संस्कृत टीकायें और स्व० प० जयचन्द्रजीकृत हिन्दीटीका सहित। मूल्य सजिल्दका ४॥)

१२ **द्रव्यानुयोगतर्कणा**—श्रीभोजसागरकृत, अप्राप्य है।

१३ **स्याद्वादमंजरी**-श्रीमल्लिषेणसूरिकृत मूल और पं० जगदीशचन्द्जी शास्त्री एम०ए०कृत हिन्दी अनुवादसहित। न्यायका अपूर्व ग्रथ है। बड़ी खोजसे लिखे हुए १३ परिशिष्ट हैं। मूल्य सजिल्दका ४॥).

१४ **सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र**—श्रीमत् उमास्वामिकृत मूल सूत्र और सस्कृत भाष्य, पं० खूबचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीकृत विस्तृत भाषाटीका, मूल्य सजिल्दका ३)

१५ **पुष्पमाला मोक्षमाला भावनाबोध**—श्रीमद्राजचन्द्रकृत। मू. ।॥)

१६ **उपदेशछाया-आत्मसिद्धि**—श्रीमद्राजचन्द्र प्रणीत। मू० ॥)

१७ **योगसार**—श्रीयोगीन्द्रदेवकृत दोहा, प०'जगदीशचन्द्रजी एम०ए० कृत भाषानुवाद मू. ।)

गुजराती ग्रंथ—

१ **श्रीमद्राजचन्द्र**—तत्त्वज्ञानपूर्ण महान् ग्रन्थ, महात्मा गांधीजीकी लिखी महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना सहितका मूल्य सिर्फ ५) है। इसका हिन्दी अनुवाद भी बहुत जल्दी प्रकाशित होगा-छप रहा है।

२ **भावनाबोध**—श्रीमद्राजचन्द्रकी अपूर्व रचना, मूल्य सजिल्दका सिर्फ ।)

नोट—सभी ग्रंथोंका मूल्य बहुत सस्ता-लागतके लगभग रखा गया है।

विशेष विवरण बड़े सूचीपत्रसे जानिये।

मिलनेका पता—**श्रीपरमश्रुतप्रभावकमंडल** (रायचन्द्र जैनशास्त्रमाला)

खाराकुवा जौहरीबाजार बम्बई न. २